इकाई 1 हिन्दी साहित्य का आदिकालः उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आदिकाल की अवधारण और सीमा निर्धारण
1.3.1 आदि काल या वीरगाथा काल
1.3.2 नामकरण वैविध्य
1.3.3 आदिकालः सीमा निर्धारण
1.4 आदिकाल आधारभूत समाग्री
1.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री
1.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 सहायक पाठ्य सामग्री
1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य से प्रथम काल खण्ड आदिकाल के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत आप यह भी जानेंगे की हिन्दी साहित्येतिहासकारों को आदिकाल से सम्बंधित कौन - कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ा है । आदिकालीन कविता के उदय की पृष्ठभूमि तथा आदिकालीन कविता के नामकरण तथा सीमांकन का अध्ययन भी इस इकाई में किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- काल निर्धारण की आधार सामग्री पर विद्वानों का मतान्तर क्यों रहा है, इसे समझ सकेंगे।
- आदिकाल की पृष्ठभूमि क्या थी, यह जान सकेंगे ।
- आदिकालीन सामान्य प्रवृत्तियों को जान पायेंगे तथा साथ हि साथ यह भी जान सकेंगे कि आदिकाल के विकास का स्वरूप क्या है।
- विभिन्न साहित्येतिहासकारों के मत-मतान्तरों की समीक्षा कर सकेंगे।

1.3 आदिकाल की अवधारणा और सीमा निर्धारण

1.3.1 आदिकाल या वीरगाथा काल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन में प्रथम काल -खण्ड को वर्गीकृत करते हुए नाम दिया गया था - वीरगाथा काल (आदिकाल- सं0 1050-1350) । विकल्प रूप में उन्होंने वीरगाथा काल को आदिकाल भी कहा क्योंकि बारह आधार ग्रन्थों में से चार अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ थी। उन्होंने बताया कि जयचन्द्र प्रकाश, जयमंयक जसचंद्रिका (भट्ट केदार और मधुकर कवि) सूचना (नोटिस) मात्र है। हम्मीर रम्सो (शारंगधर कवि) का आधार प्राकृत-पैगंलम् में आगत कुछ पद्य हैं और वह काव्य आधा ही प्राप्त है। विजयपाल रासो के सौ छन्द ही प्राप्त हुए है, इस प्रकार यह ग्रन्थ भी अधूरा और वीसलदेव रासो की भाँति प्रेमगाथा काव्य है। वीरगाथा नहीं। अमीर खुसरो की पहे लियाँ भी वीरगाथा के अंतर्गत ग्राह्य नहीं है। पृथ्वीराज रासों की प्रामाणिकता जितनी संदिग्ध है उतनी ही परमाल रासो की क्योंकि वह लोक (श्रुत) काव्य आल्हा है। मूल पाठ का निर्धारण असंभव है।

आचार्य शुक्ल के पास जो अन्य सामग्री स्त्रोत उपलब्ध होते थे, वे उन्होनें धार्मिक एवं सांप्रदायिक मूलक बताए थे, पर परवर्ती शोध कार्यो से यह विदित होता है कि ये धार्मिक और सम्प्रदाय मूलक ग्रन्थ साहित्यिक उदारता से शून्य नहीं थे। तभी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि - धार्मिक प्रेरणा या आध्यत्मिक उपदेश होना काव्य का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए अन्यथा हमें रामायण, महाभारत, भागवत एवं हिन्दी के रामचरित मानस, सूरसागर आदि साहित्यिक सौन्दर्य संवलित अनुपम ग्रंथ-रत्नों को भी साहित्य की परिधि से बाहर रखना पड़ जाएगा। (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, प्रथम व्याख्यान,पृष्ठ 49)साहित्य का इतिहास न तो इतिहास के वृत्ति प्रस्तुति का निरूपण है और न प्रशस्ति मूलक सम्वेदना । उसमें साहित्येतिहासकार के भीतर साहित्यकार की सम्वेदना का समाहार अनिवार्य है । तभी वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की संरचना से ही काल विशेष की संज्ञा प्राप्त कर सकता है।

1.3.2 नामकरण वैविध्य और आधार

हिन्दी साहित्य के इस आदिकाल विकल्प की उपेक्षा करते हुए रामचन्द्र शुक्ल से पूर्ववर्ती मिश्रबन्धु (मिश्रबन्धु विनोद) ने उसे प्रारम्भिक काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे बीजवपन काल, रामकुमार वर्मा ने उसे संधिकाल एवं चारण काल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वीरकाल एवं बच्चन सिहं ने अपभ्रंशकाल नाम दिया है । काल

विभाजन और नामकरण प्रवृत्तिपरक होता है। यह आप समझ चुके हैं, पर यह भी समझना उचित होगा कि ये दो अलग प्रश्न नहीं है, मूलतः एक ही है। जिस प्रकार रचना की प्रवृत्ति काल-विभाजन का आधार है, उसी प्रकार वह नामकरण का भी महत्वपूर्ण आधार है। नामकरण के निर्मिति में तद्विषयक रचना कृतियों की बहुलता है और उन रचनाओं में प्रवृत्ति मूलक प्रतिशत निकालकर काल खण्ड विशेष का नामकरण किया जाता है। परिवर्ती हिन्दी साहित्येतिहाकारों में सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वमान्य है . कुछ मूल प्रश्नों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण ढांचा लगभग सर्वमान्य है .

1.3.3 आदिकाल: सीमा निर्धारण

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल पर विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। इस के मूल में महत्वपूर्ण कारण अपभ्रंश भाषा की हिन्दी में स्वीकृति या हिन्दी से बहिष्कृति की मानसिकता है। पूर्व खण्ड के अध्ययन के बाद आप यह अवश्य ही जान गए हैं कि सम्पूर्ण भारतीय वाङमय में अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। उसमें कौन से परिवर्तनकारी बिंब कब आरंभ हुए इसको सहज रूप में कह पाना संभव नहीं है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में ये परविर्तन सहज ही उभरते गए है। वास्तव में अपभ्रंश भाषा जब परिनिष्ठित और साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई, तब तक वह जनभाषा से दूर हो गई और उस अपभ्रंश से इतर जनभाषा से ही हिन्दी का विकास होता है। उस समय यह अपभ्रंश ही एक नई भाषा (या पुरानी हिन्दी) के रूप में विकसित हो रही थी। हिन्दी के आरंभिक रूप का परिचय बौद्ध तांत्रिकों की रचनाओं में मिलता है। तभी गुलेरी ने लिखा है कि "अपभ्रंश या प्राकृतभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिकों और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

जार्ज ग्रियर्सन आदिकाल को 'चारण काल' कहते हैं और इसका आरंभ 643 ई0 से मानते हैं जबकि चारण काव्य परम्परा का विकास तब नहीं हुआ था क्योंकि वह काल-खण्ड नाथों-सिद्धों का सर्जन काल था। चारण काल एवं साहित्य का आविर्भाव दसवीं शताब्दी के बाद ही होता है। इसलिए ग्रियर्सन के विचार त्याज्य है। मिश्रबंधुओं ने आदिकाल का नामकरण करते हुए प्रवृत्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। डॉ.रामकुमार वर्मा ने इस काल खण्ड को 'संधिकाल' और 'चारण काल' कहा है।

अभ्यास प्रश्न 1

---

1. वीरगाथाकाल नामकरण क्यों अस्वीकार है ?
2. आदिकाल के विकल्प का चयन क्यों आवश्यक समझा गया ?

1.4 आदिकाल की आधारभूत सामग्री

1.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री

अभी तक के अध्ययन के उपरान्त आज यह भली भाँति जान चुके हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा आदिकाल के लिए गृहीत बारह पुस्तकों की विषय-सामग्री वीरगाथा काल के नाम की सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाती कुछ मात्र नोटिस या सूचना मात्र थीं कुछ वीर गाथात्मक प्रवृत्तिमूलक नहीं थीं, कुछ अपूर्ण और प्रेमपरक थी। अतः विकल्प के रूप में आदिकाल को ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समर्थन दिया है । इस प्रकार आदिकाल नामकरण के निर्धारण में आधारभूत सामग्री निम्नांकित है ।

1. स्वयंभू - पउम चरिउ (पद्म चरित-रामचरित) रिट्णेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित)
2. पुष्पदन्त - पाय कुमार चरिउ (नागकुमार चरित)
3. हरिभद्र सूरि - णेमिनाथ चरिउ (नेमिनाथ चरित)

4. धनपाल - भविष्यतकथा, करकंड चरिउ, जसहर चरिउ
5. जोइन्दु - परमात्मा प्रकाश
6. रामसिंह - पाहुड़ दोहा
7. सरहपा - दोहाकोश
8. अद्दहमाण - संदेश रासक
9. हेमचन्द्र - प्राकृत व्याकरण (दोहा काव्य)
10. दलपति विजय - बीसलदेव रासो
11. चन्दबरदाई - पृथ्वीराज रासो
12. कुशल शर्मा - ढोला मारूरा दूहा (लोककाव्य)
13. अज्ञात - वसंत विलास फागु
14. विद्यापति - कीर्तिलता, कीर्ति पताका
15. अमीर खुसरो - पहेलियां

1.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं

अभी तक आप आदिकाल की उपलब्ध नव्य सामग्री से परिचित हो चुके हैं। इकाई के इस भाग में आप आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाओं से परिचित हो सकेंगे। इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इस युग में शौर्य युक्त प्रवृत्तियों ही नहीं थी अपितु अन्य अनेक प्रवृत्तियों भी एक साथ उभरी थीं। परिणाम स्वरूप वीररसात्मक काव्य धारा के साथ श्रंगार रस सिक्त रचनाओं का प्रणयन भी हुआ। लोक कथाओं पर आधारित प्रेमकथाएं भी लिखी गई। लौकिक काव्य (पहेली और मुकरी) की भी रचना हुई। यही नहीं इस काल खण्ड में अगर अपभ्रंश भाषा कृतियों प्राप्त हुई हैं तो ब्रज- राजस्थानी मिश्रित भाषा और मैथिली में साहित्य सर्जना हुई थी साथ ही साथ खड़ी बोली में रचनाएँ प्राप्त हुई हैं.

1. पृथ्वीराज रासो
2. बीसलदेव रास
3. ढोल मारू रा देहा
4. विद्यापति काव्य
5. अमीर खुसरो की पहेलियाँ
6. प्राकृत व्याकरण
7. सन्देश रासक
8. भाविसत्त कहा
9. पाहुड़ दोहा

पृथ्वीराज रासो - रासोकाव्य परम्परा में अनेकशः रचनाएँ हुई हैं और इनमें स्वरूप वैविध्य भी हैं. पृथ्वीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि कृति है। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द बरदाई पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था तथा दरबारी काव्य परम्परा की प्रशस्ति मूलक रूढियों से भरे अपने आश्रय दाता के यशगान है तु रासो की रचना की है।जैसा कि अभी संकेत किया जा चुका है कि पृथ्वीराज रासो प्रशस्ति काव्य है। कविचंदबरदाई ने अपने आश्रय दाता का प्रशस्ति परक वर्णन किया है तथा उसे ईश्वर तक कहा है और तत्कालीन राजनीति , धर्म,योग, कामशास्त्र, शकुन, नगर ,युद्ध ,सेना की सज्जा, विवाह, संगीत,नृत्य, फल,फूल, पशु,पक्षी, ऋतु-वर्णन, संयोग, वियोग, श्रंगार, बसंतोत्स्व इत्यादी सभी का वर्णन भारतीय काव्य शास्त्रीरय परम्परा के अनुरूप किया है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिकता अनैतिहसिकता प्रामाणिकता अप्रमाणिकता के अनेक प्रश्नों के रहते हुए पृथ्वीराज रासो साहित्य और

तत्कालीन समाज दोनों की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब हैं।पृथ्वीराज रासो के वर्ण्य-विषय पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रस,भय,अलंकार, युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु-पराजय था।

बीसलदेव रासो –

काल खण्ड के नाम के विकल्प - आदिकाल- के चयन और वीरगाथाकाल नाम के व्याज्य के निकर्ष पर देखा जाए तो पृथ्वीराज रासो में जहाँ वीर एवं श्रृंगार की प्रधानता है वहीं वीसल देव रास मूलतः श्रृंगार रस प्रधान ;विशेषकर वियोग श्रृगांर काव्य है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह है और रचनाकाल 1155 ईस्वी माना जाता है।

वीसलदेव रास एक विरह काव्य है। जिसमें वीसल देव की रानी का विरह वर्णन किया गया है . भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह के तुरन्त बाद राजमती की गर्वोक्ति सुनकर वीसलदेव उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती वियोग की ज्वाला में जलती रहती है। इसके बाद राजमती अपने राज पुरोहित से अपने पति के लिए सन्देश भिजवाती है। जब तक राजा लौटता है तब तक राजमती अपने पिता के घर जा चुकी होती है। बीसलदेव उड़ीसा से लौटकर अपनी ससुराल जाकर अपनी पत्नी को घर ले आता है।

ढोला मारू रा दूहा - अभी तक आपने आदिकाल की दो महत्वपूर्ण कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया है जो अपभ्रंश भाषा से इतर आदिकाल की तत्कालीन भाषा प्रवाह का परिनिष्ठित भाषा रूप लेकर रची गई है जो राजस्थान एवं ब्रज भाषा के साथ विविध भाषाओं की शब्दावली से युक्त हैं . इस बार आप लोकाश्रित एवं तत्कालीन लोक भाषा काव्य का परिचय पायेंगे। यह ढोला मारू रा दूहा नाम से प्रसिद्ध लोक गाथा काव्य है। लोक कथा या लोक गाथा का रचयिता व्यक्ति न होकर लोक ही होता हो और उसके पाठ में समयानुसार भिन्नता की सम्भवना होती है। ढोला मारू रा दूहा का रचयिता कुशल शर्मा कहै जाते हैं तथा इसका रचना काल ग्याहरवीं शताब्दी है।

विद्यापति काव्य - विद्यापति हिन्दी और आदिकाल के प्रमुख कवि हैं चौदहवी-पंद्रहवी शताब्दी के मध्य विद्यापति तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह के दरबारी कवि थे और उनकी शौर्यता का चित्रण ही कवि ने अपनी कीर्तिलता नामक पुस्तक में किया है। दूसरी ऐसी ही प्रशस्ति कथा कीर्तिपताका में है। इन दोनों काव्यों की भाषा को उन्होंने अवहटठ् ,अपभ्रंशद्ध कहा है

अमीर खुसरो पहे लियाँ - अमीर खुसरो आदिकाल के ऐसे प्रमुख कवि हैं जो अपने समय से आगे की खड़ी बोली के सूत्र-प्रसारक कहै जा सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र के अनुसार उनका लेखन 1293 ई के आसपास आरम्भ हो गया था। उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली भाषा में कविता की। लेकिन आप यह भी जान लीजिए कि अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लेखन किया था पर उस पर खड़ी बोली का स्पष्ट प्रभाव था यथा- **उज्जवल बरन अधीन तन एक चित्र दो ध्यान।**

देखत में साधु है निकट पाप की खान।।
खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।
तन मोरो मन पीउ को दोउ भए एकरंग।।
गारी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपनै रैन भई यह देस ।।

अमीर खुसरो ने पहे लियों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि ये आठ से आठ सौ से अधिक वर्ष पूर्व लिखी गई होंगी । यथा- **एक थात मोती भरा सबके सिर आँधा धरा।**
चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे। अमीर खुसरो अरबी फारसी,तुर्की,ब्रज और हिन्दी के विद्वान कवि थे। साथ ही उन्हें संस्कृत भाषा का भी थोड़ा ज्ञान था। सूचना के

स्तर पर आपको बताया जा सकता है कि उन्होंने 99 पुस्तकें लिखी थी। लेकिन इनके बीस,बाईस ग्रन्थ ही प्राप्त होते हैं।

प्राकृत व्याकरण - आदिकाल के अपभ्रंश काव्य के रूप में अब आप ऐसी कृति का परिचय पाऐंगे जो दसवीं शताब्दी में रचित सिद्ध है मचन्द्र शब्दानुशासन के नाम से प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है और उसके रचयिता है मचन्द्र हैं। इस कृति में है मचन्द्र ने संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का समावेश किया है किन्तु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते हुए उन्होंने पूरा दोहा ही उद्धृत किया है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में कोई संकेत नहीं किया है हे मचन्द्र के इस प्राकृत व्याकरण को आदिकाल की निर्णायक कृतियों के रूप में उल्लेख किया जाना आपको सहज ही आश्चर्य में डाल सकता है क्योंकि यह शब्दानुशासन यानी व्याकरण की पुस्तक ही प्रतीत होती लेकिन व्याकरण कृति होते हुए भी इसमें प्रयुक्त दोहों का चयन है मचन्द्र ने पूर्ववर्ती या तद्युगीन रचनाकारों की रचनाओं से किया है। ये दोहै व्याकरण से अधिक तत्कालीन समय एवं परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं क्योंकि ये दोहै उस काल की लोक भावनाओं से परिपूर्ण है।

सन्देश रासक - संदेशरासक अहद्द्माण या अब्दुर्रहमान रचित खण्ड काव्य है। अहद्दमाण कबीर की भाँति जुलाहा परिवार से थे तथा मुल्तान निवासी थे। उन्होंन स्वयं लिखा है - मैं मलेच्छ देशवासी तंतुवाय भीर सेन का पुत्र हूँ। उनकी कृति सन्देश रासक जो एक सन्देश काव्य है . इसके रचना काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है अतः इसे ग्यारहवी से चौदहवीं के मध्य की रचना माना जाता है।सन्देश रासक वियोग, विरह, श्रृंगार की रचना है। इसकी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रिय के परेदश जाने और वहाँ से लौटने में विलम्ब होने के कारण प्रियतमा पत्नी-नायिका का हृदय विरहकातर हो उठता है। अहद्द्माण ने इस कृति के बीच-बीच में प्राकृत गाथाएं संजोयी हैं। इसमें विरहिणी नायिका एक पथिक से पति को सन्देश भिजवाती है। कवि ने दो सौ तेईस छन्दों में कथा प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक छन्द को स्वयं में स्वतंत्र रखा है क्योंकि कवि को विरहाभिव्यक्ति का उल्लेख करना है कथा कहना मात्र उसका उद्देश्य नहीं है . सन्देश रासक तीन प्रक्रमों में विभाजित और 223 छन्दों में रचित ऐसा सन्देश काव्य है जिसका अध्ययन करके आप यह विधिवत् जान पायेंगे कि इसका प्रथम प्रक्रम मंगलाचरण, कवि का व्यक्तिगत परिचय , ग्रन्थ रचना का उद्देश्य तथा आत्मनिवेदन से अनुपूरित है। दूसरे प्रक्रम से मूल कथा आरंभ होती है पर कथा सूत्र इतना ही है कि विजय नगर की एक प्रोषितपतिका अपने प्रिय के वियोग में रोती हुई एक दिन राजमार्ग से जाते हुए एक बटोही को देखती है और दौड़कर उसे रोकती है। उसे जब यह पता चलता है कि वह बटोही साभांर से आ रहा है और स्तंभ तीर्थ को जा रहा है तो वह पथिक से निवेदन करती है कि अर्थलोभ के कारण उसका प्रिय उसे छोड़ कर स्तम्भ तीर्थ चला गया है इसीलिए कृपा करके मेरा सन्देश को ले जाओ पथिक को संदेश देकर नायिका ज्यों ही उसे विदा करती है कि दक्षिण दिशा से उसका प्रिय आता हुआ दिखाई देता है। तीसरे प्रक्रम में अब्दुर्रहमान कृतिका समापन करता है जिसे पढ़कर निश्चित आप जान पायेंगे कि नायिका का कार्य अचानक सिद्ध हो जाता है .उसी प्रकार पाठकों को भी यह अनुभव होता है कि कवि को कथा से कोई भी मतलब नहीं था उसका उद्देश्य साम्भर नगर के जीवन, पेड़-पौधों तथा ऋतु वर्णन के साथ प्रोषितपतिका की विरह भावना का वर्णन करना था .काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सन्देश रासक अपभ्रंश साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

भविस्यत्त कहा –

जैन कवि धनपाल रचित भविस्यत्त कहा अपभ्रश में लिखित दसवीं शती की ऐसी काव्य कृति है जिसमें तीन प्रकार की कथाएँ बाईस संधियों में जुडी़ हुई है। अभी तक आप यही जानते रहै हैं कि जैन काव्य धार्मिक है और आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के निमित्त आधार ग्रंथ के रूप में गणनीय तक नहीं माना था। यद्यपि

जैन साहित्य में धर्म से विलग साहित्यिक कृतियों का अभाव नहीं था। उन्ही में से एक कृति भविस्यत्त कहा है। यह वर्णन हृदयग्राही है जिसमें श्रृंगार एवं वीररस के साथ शान्त रस का परिपाक होता है।

आपके ज्ञानवर्द्धन के लिए यह उल्लेखनीय है कि कवि धनपाल का यह काव्य शुद्ध घरेलू ढंग की कहानी पर आधारित है जिसमें दो विवाहों का दुःखद पक्ष उभरता है। कणिक पुत्र भविष्यदत्त की कथा अपने सौतेले भाई बंधुदत्त द्वारा कई बार छले जाने ,जिन महिमा ,जैन चिन्तन के कारण सुखद परिणति तक पहुंचती है। यह प्रमुख कथा चौदह सन्धियों तक विस्तार पाती है।

पाहुड़ दोहा - राजस्थान के रामसिंह द्वारा लिखित दो सो बाईस दोहो ,छन्दों में लिखित लघुकाव्य पाहुड़ दोहा का संपादन परवर्ती काल में हीरालाल जैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार जैनियों में पाहुड शब्द का प्रयोग किसी विजय के प्रतिपादन के लिए किया जाता है। अब आप यह जान लीजिए कि इस कृति का रचना काल में वास्तव में ऐसा युग था जिसमें प्रत्येक धर्म के भीतर इसके उदारमना चिन्तक कवि पैदा हुए थे जो अपने मत और समाज की रूढियों का विरोध करते हुए मानवता की सामान्य भावभूमि पर एक साथ खडे थे। इसका अन्य मतों से कोई विरोध नहीं था। वे सबके प्रति सहिष्णु थे और उनका विश्वास था कि सभी मत एक ही दिशा की ओर ले जाते हैं और एक ही परमतत्व को विविध नामो से पुकारते हैं।

बोध प्रश्न . 2

1. आदिकाल की आधारभूत सामग्री क्या है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए
2. **सुमेलित कीजिए**

पृथ्वीराज रासो	अब्दुर्रहमान
ढोला मारू रा दूहा	धनपाल
वीसलदेव रास	है मचन्द्र
विद्यापति का काव्य	रामसिंह
पहै लियाँ	कुशलशर्मा
प्राकृतव्याकरण	चंद्रबरदाई
सन्देशरासक	नरपति नाल्ह
भविस्यत्त कहा	विद्यापति
पाहुड़ दोहा	अमीर खुसरो

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

- हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-निर्धारण की प्रक्रिया को जान चुके होंगे
- आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं उसकी सामान्य प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- आदिकाल के उद्भव एवं क्रमिक विकास को समझ चुके होंगे
- आदिकाल की प्रमुख पुस्तकों से परिचित हो चुके होंगे

1.6 शब्दावली

वैविध्य	-	विविधतापूर्ण , भिन्न-भिन्न
परवर्ती	-	बाद के समय का

वाङमय	-	साहित्य
आविर्भाव	-	पैदा होना
रस सिक्त	-	रस से भरा हुआ
इतर	-	अलग
सहिष्णु	-	उदार

1.7 सहायक पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

(4) सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव एवं विकास पर एक विस्तृत निबंध लिखिए
2. आदिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए आदिकाल की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए

इकाई 2हिंदी साहित्य का आदिकाल : स्वरूप और प्रक्रिया

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 आदिकाल:अर्थ एवं स्वरूप
2.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ
2.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ
2.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
2.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
2.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
2.5 आदिकाल:प्रमुख प्रवृत्तियां
2.5.1 धर्म संबंधी साहित्य
2.5.2 सिद्ध काव्य
2.5.3 नाथ काव्य
2.5.4 जैन काव्य
2.5.5 चारण काव्य
2.5.6 लौकिक काव्य
2.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव और विकास के संबंध अध्ययन कर चुके हैं। जिससे आप यह भी जान चुके हैं कि हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास लिखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकास क्रम की व्याख्या करते हुए साहित्येतिहास का काल विभाजन करते हुए प्रारंभिक काल का नाम वीरगाथा काल (आदिकाल) किया था और जनता की चित्तवृत्तियों के साथ जोड़कर नामकरण का प्रयास करते हुए आधार ग्रंथों या सामग्री के आधार पर अपना संशय भी व्यक्त किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के संशय का निराकरण करते हुए उनके दृष्टिकोण के समानांतर अपना नवीन दृष्टिकोण स्थापित कर युगीन परिस्थितियों के सम्यक मूल्यांकन के पश्चात हिन्दी साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल के नाम से अभिहित किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य के प्रथम कालखण्ड आदिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षों के आधार पर किये गए विश्लेषणों का सार पढ़ेंगे . इस इकाई में आप आदिकाल के उद्भव एवं विकास , उस कालखंड की सम्पूर्ण प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन करेंगे

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप बता सकेंगे कि -

- आदिकाल का सामान्य अर्थ क्या है ?
- आदिकाल का स्वरूप क्या है ?
- आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियाँ किस प्रकार आदिकाल का स्वरूप निर्माण करने में सहयोगी रही हैं।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रमुख प्रवृतियाँ एवं प्रक्रिया क्या रही हैं ?

2.3 आदिकाल : अर्थ एवं स्वरूप

अब तक के अध्ययन के पश्चात आप भली-भांति समझ चुके हैं कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अर्थ साहित्य का प्रारंभिक काल ही है जिसे विभिन्न विद्वानों के मत-मतांतर के बाद आदिकाल के रूप में स्वीकार किया जा चुका है, यथा –

1.	जार्ज ग्रियर्सन	-	चारणकाल
2.	मिश्रबंधु	-	आरंभिक काल
3.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	-	आदिकाल
4.	राहुल सांकृत्यायन	-	सिद्ध सांमत युग
5.	महावरी प्रसाद द्विवेदी	-	बीज-वपन काल
6.	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	-	वीर काल
7.	रामकुमार वर्मा	-	संधिकाल-चारण काल
8.	गणपति चंद्र गुप्त	-	संक्रमण काल
9.	हरिश्चन्द्र वर्मा	-	प्रारंभिक काल

आज हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन र्स्वमान्य हो चुका है। अत: आप भी एक बार पुन: दुहरा लीजिए –

(क) आदिकाल	(दसवीं-चौदवीं शती)
(ख) पूर्वमध्यकाल	(चौदहवीं- सत्रहवीं शती)
(ग) उत्तर मध्य काल	(सत्रहवीं-उन्नीसवीं शती)
(घ) आधुनिक काल	(उन्नीसवीं – वर्तमान काल तक)

हिन्दी साहित्य के आदिकाल को यदि आप स्मरण कर पायें तो स्वयं यह अनुभव करेंगे कि उस समय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्थिरता थी। आदिकाल की राजनीतिक अस्थिरता का सीधा प्रतिफलन वीरगाथाएं ही थी, क्योंकि भारतीय राजा आपस में लड़ते रहते थे विदेशी आक्रमण हो रहे थे या भारतीय राजाओं द्वारा अपने प्रतिपक्षी को पदावनत कराने के लिए भारत से वाह्य शासकों को आमंत्रण भी दिए जाते थे। देखा जाए तो भारतीय राजाओं का अधिकांश समय युद्ध क्षेत्र में ही बीतता था।

यही नहीं, आप यह भी पायेंगे कि बड़े भारतीय राज्यों को अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने तथा प्रतिस्पर्धात्मक रूप में अपनी प्रशंसा और प्रशस्ति के विस्तार हेतु शायद यही एकमात्र उपाय रह गया था। उस आकांक्षा को उनके दरबारी कवियों ने भली प्रकार पहचाना था और देशी राजा दरबार में अनेकानेक अवसरों पर अपने आश्रय प्राप्त कवियों से विरुदावली (प्रशस्ति गायन) सुनने का सुख पाते थे। युद्धारंभ में उन्हीं आश्रय प्राप्त राजाओं की अपने प्राण देकर अपने आश्रयदाता के प्राणों की रक्षा के लिए प्रेरणा भी देते थे। पृथ्वीराज रासो में संयम्राव द्वारा घायल पृथ्वीराज की प्राणरक्षार्थ हेतु अपने घायल अंगों को काट-काटकर गिद्धों को खिलाने का उल्लेख चंद बरदाई द्वारा स्वामिभक्ति के व्यापक प्रभाव का संकेत करता है।

दरबारी कवि अथवा कवियों द्वारा जहां अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता और शौर्य का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन भी व्यापक प्रवृत्ति थी वही वीर रस के संचरण के समानांतर श्रृंगार रस का व्यापक काव्यशास्त्रीय निरूपण करने और उस स्थिति में अपने-अपने आश्रयदाता के श्रृंगारिक उत्प्रेरण का चित्रण ही उन कवियों का एकमात्र उद्देश्य था। लेकिन इनमें कई ऐसी गाथाएं भी है, जहां आश्रय प्राप्त दरबारी कवि केवल लेखनी का ही कमाल नहीं दिखाते थे, युद्ध क्षेत्र में वे तलवार का हस्त कौशल भी दिखाने में पीछे नहीं थे।

आपको यह भी जान लेना क्यों उचित होगा कि इस काल को वीर गाथा काल का नाम देना क्यों अनुपयुक्त था ? पिछली इकाई के अध्ययन में आप यह जान चुके हैं कि इस काल विशेष में वीसलदेवरास और विजयपालरासो जैसे काव्य भी उपलब्ध होते हैं जिनका विषय वीर गाथा परक नहीं है, अपितु प्रेमगाथा काव्य परक है, विजयपाल रासो अभी तक अपूर्ण है तथा वीसलदेवरास विरहकाव्य है। जिसे अब्दुल रहमान कृत **सन्देश रासक** की परम्परा की प्रतिनिधि कृति कहा जा सकता है। पिछली इकाई में आप यह भी पढ़ चुके हैं कि आदिकाल की आधार सामग्री में जहाँ अपभ्रंश भाषा की रचनाएं भी सम्मिलित हैं, वही विद्यापति पदावली की भाषा मैथिली है और अमीर खुसरो की भाषा खड़ी बोली हिन्दी का प्रारंभिक रूप तो लिए ही है, उसके साथ उक्त कालखण्ड में **ढोला मारु रा दूहा** जैसा लोककाव्य भी रचा गया था। यद्यपि उसे आदिकाल की आधार सामग्री के रूप में अग्राहय मान लिया गया था। आप पिछली इकाई में यह भी भली प्रकार जान चुके हैं कि उल्लिखित अपभ्रंश की कतिपय महत्वपूर्ण काव्य रचनाओं को भी इस काल के नाम निर्धारण के निमित्त ग्रहण किया जाना एक महत्त्वपूर्ण कदम है । जिनमें अपभ्रंश भाषा में रचित जैन संतों द्वारा चरित काव्य जसहर चरिउ , करकंडु चरिउ , णायकुमार चरित (नागकुमार चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित), पाहुडा दोहा आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार आचार्य शुक्ल द्वारा धार्मिक अथवा संप्रदायगत रचनाएं

कहकर नाथो-सिद्धों और बौद्ध सम्प्रदायों की कृतियाँ भी स्वीकार नहीं की थी। कालान्तर में साहित्येतिहासकारों ने इन रचनाओं को तत्कालीन समाज की चित्तवृत्तियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति माना है।

2.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ

आदिकालीन परिस्थितियों की चर्चा करने से पूर्व आपको आदिकाल के स्वरूप को समझने का संकेत ऊपर किया जा चुका है। जिससे आप भलीभॉति जान चुके हैं कि आदिकालीन साहित्य सर्जना के लिए किस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं जो तत्कालीन दरबारी कवियों को काव्य रचना के लिए बाध्य करती थी। आपके समक्ष इन परिस्थितियों की निमांकित चार वर्गों में रखा जा रहा है।

2.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का यह प्रथम काल खण्ड तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था, गृह-कलह और पराजय और आंतरिक हताशा का कालखण्ड था। दूसरी ओर विदेशी आक्रमण राज्यों की स्वतंत्रता पर हावी हो रहे थे। सम्राट हर्ष वर्धन (सन् 606-643) के निधन के बाद उत्तर भारत में केन्द्रीय शक्ति का क्षय और राजसत्ता अस्थिर हो गई थी, दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। मुहम्मद बिन कासिम के सिंध पर आक्रमण पर वहां का राजा दाहिर की पराजय का कारण वहां के जाट और ब्राहमण राजाओं के सहयोग का अभाव रहा है। आप इतिहास पर दृष्टि डालें तो इस कालखण्ड में अनेक छोटे-छाटे राज वंश-गुर्जर, तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य, चंदेल, परमार, गाहड़वार आदि सत्ता प्राप्ति के लिए पारस्परिक युद्ध, गृह कलह और विघटन के कारण सामन्तवाद को प्रोत्साहित कर रहे थे तथा देश एकतंत्र-व्यवस्था में न रहकर अनेक राज्यों में बट गया था। राष्ट्रीयता या देशभक्ति की भावना सर्वथा लुप्त थी। राज-भक्ति, आश्रयदाता का शौर्य-गान एवं प्रशंसा तथा अनुचित कार्यो के समर्थन का प्रचलन बढ़ चला था।

सन् 800 से 1020 ई० तक के पाल शासकों ने गजनवी के तुर्कों का सामाना केवल व्यक्तिगत वीरता, शौर्य, आत्मबल और देश-हित में प्राणोत्सर्ग करने के लिए ही रहा, सामूहिक रूप से गजनी के आक्रमणों से लोहा लेना नहीं। आपसी फूट, कलह तथा विलासिता के कारण भारतीय शक्ति ध्वस्त होती रही और इस्लाम का आगमन, उनकी बढ़ती सत्ता-भूख के सामने दोषपूर्ण राजनीति अपनी चेतना खो चुकी थी। दसवीं से 1026 की अवधि में महमूद गजनवी ने सत्रह बार भारत पर आक्रमण क्रिया और अनेक भारतीय शक्तिशाली राजपूतों को अपने बीच कर लिया। मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत के पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र पर राज्य स्थापित किया ।

अधिकांश आदिकालीन साहित्य में हिंदु शासकों के या तो पारस्परिक युद्धों का या फिर तुर्क-अफगानों से किए गए युद्धों अव्यवस्थाओं, लूट-मार तथा भारतीय राजतंत्र के पराजय के वातावरण में दरबारी कवियों द्वारा अपने आश्रयदाताओं के यश-प्रशस्त शौर्यका गान उपलब्ध होता है लेकिन उससे अधिक पराजित हिन्दुओं को जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्य के माध्यम से चित्रित किया गया है। चंद बरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो, स्वयंभू, पुष्पदंत, हरिभ्रदसूरि, रामसिंह के अतिरिक्त कण्हपा सरहपा ने तत्कालीन परिवेश को शब्द दिए हैं।

2.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अस्थिर, एक दूसरे को प्रभावित करने तथा परिस्परिक आदान-प्रदान का था। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आठवीं से लेकर बारहवीं शती तक भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त लगभग अपरिवर्तनीय हैं, किन्तु उनका बाह्य आकार परिवर्तित होता हुआ प्रतीत होता है। आपके समक्ष धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का पृथक रूप से उल्लेख अधिक उपयुक्त है।

धार्मिक परिस्थितियां :- ईसा की सातवीं शती यानी हर्षवर्धन के समय में ब्राहमण और बौद्ध धर्मों में समान आदर भाव था। हर्ष स्वयं बौद्ध मतावलंबी थे और बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार काफी मात्रा में था फिर भी उदार एवं धार्मिक सहिष्णुता के परिणाम स्वरूप विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सौहार्द्र था तथा समन्वय की प्रवृत्ति की झलक भी मिलती थी। हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत केन्द्रीय सत्ता के अभाव से देश खण्ड राज्यों में विभाजन हुआ तो धार्मिक अराजकता के विस्तार के साथ वैदिक विधि-विधान और कर्मकाण्ड के चलते ब्राहमण और बौद्ध धर्म संप्रदाय अपनी पवित्रता खो चुके थे। आम जन सिद्धियों की दिग्भ्रांतता का शिकार हो रहा था। हीनयान-वज्रयान, महायान, सहजयान में बिखरा बौद्ध धर्म तंद्ध-मंत्र, हठयोग जैसे पंचमकारों (मांस, मैथुन, मत्स्य, मद्य तथा मुद्रा) को भी विशेष स्थान प्राप्त होता जा रहा था। इनके बिना साधना अधूरी मानी जाती थी। वास्तव में बौद्धमत वाममार्गी हो चुका था। दूसरी ओर धर्म-नियम संयम और हठयोग द्वारा साधना के कठिन मार्ग से बढ़ने वाले नाथसिद्ध के रूप में जाने गए । डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है- ‘’इस काल के हिन्दी प्रदेश और उसकी सीमाओं के आस-पास जैन धर्म, बौद्ध धर्म के वज्रयानी रूप, तांत्रिक मत, रसेश्वर-साधना, उमा-महेश्वर-योग साधना, सोम सिद्धांत, वामाचार, सिद्ध और नाथ-पंथ शैवमत, वैष्णवमत, शाक्त मत आदि विभिन्न मत प्रचलित थे। जैन-वैष्णव, शैव , शक्ति आदि संप्रदायों की प्रतिद्वन्द्विता राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास कर रही थी। भीतरी विद्वेष से जर्जर देश में इतिहास से टकराने वाला संकल्प न रह गय। दुर्भाग्यवश ये धर्म मनुष्य की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति के साधन बनने के स्थान पर विच्छेद-भाव उत्पन्न करने के साधन बने।

काल में वैदिक,बौद्ध एवं जैन धर्मसाथ-साथ प्रचलित थे और वैदिक धर्मका कभी-कभी बौद्ध या जैन धर्म से संघर्ष भी हो जाता था, पर धीरे-धीरे वैदिक या ब्रहमण धर्म बल पकड़ता गया तथा बौद्ध एवं जैन धर्म कमजोर पड़ते गए। इसका प्रमुख कारण यह है कि युद्धों के उस काल में अहिंसा पर आधारित बौद्ध-जैन धर्म सीमाओं की मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे, इसलिए शैव मत का प्रभाव भी बढ़ता गया। निस्संदेह इस काल खंड में अनेक मत-मतांतरों से परिपूर्ण प्रतिद्वन्द्वी धार्मिकदल, इस्लाम की बढ़ती शक्ति, ब्राहमणविरोध , वैदिक और बौद्ध धर्मो का अत: संघर्ष तथा सांप्रदायिक विद्वेष कई रूपों में देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ – सम्राट हर्षवर्धन के समय तक भारत सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से सम्पन्न और संगठित था। उस समय की सांस्कृतिक उत्वर्ष को संगीत, चित्र , मूर्ति तथा स्थापत्य आदि कलाओं के रूप में आंका जा सकता था। जातीय एवं राष्ट्रीय गौरव का यह भाव सर्वत्र देखा जा सकता था। हिन्दी साहित्य यह काल दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ह्रास-विकास का काल था जिसके एक छोर पर भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष था तो दूसरे छोर पर आदिकाल के समापन काल में मुस्लिम संस्कृति की संस्थापना थी। तभी तो कहा गया है कि – भारत में मुस्लिम संस्कृति के समय में दीर्घ काल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुँच रही थी। (हिंदी साहित्य का इतिहास-सं. नगेन्द्र,)

ईसा की ग्यारवीं शती में इस्लामिक संस्कृति के प्रवेश से भारत की दोनों संस्कृतियों (हिंदू-मुस्लिम) का एक दूसरे से प्रभावित होना सहज-स्वाभाविक था। प्रारंभ में ये दोनों संस्कृतियाँ परस्पर प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आमने-सामने थी, पर सत्ता में बढ़ते मस्लिम प्रभाव के कारण मुस्लिम संस्कृति एवं कला का प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ने लगा था। इस्लाम मूर्ति-विरोध सर्वविदित है। लेकिन इसमें दो मत नहीं है कि दोनों संस्कृतियाँ परस्पर किसी न किसी रूप में एक समान प्रभाव ग्रहण करती है।

2.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से समाज विभिन्न वर्णों तथा जातियों में विभाजित तथा असंगठित समाज-व्यवस्था का शिकार था। भारतीय राजसत्ता समाज के हित को भूलकर आपसी फूट और झगड़ों में डूबी थी। यद्यपि वीसल देव व राणा सांगा जैसे राष्ट्रीय भावना युक्त क्षत्रिय भी इस समाज का अंग थे, पर अधिसंख्य लोगों में इस भावना का अभाव था। आप इसे दो स्तर पर भली प्रकार समझ सकते हैं –

सामाजिक परिस्थितियाँ - आदिकाल में समाजिक रीतिरिवाजों और विधि विधान की कट्टरता का प्रचलन पहले से ही विद्यमान था तथा जनता शासनऔर धर्म दोनों ही ओर से निराश्रित और निरतंर युद्धों के झेलने के कारण बुरी तरह त्रस्त थी। ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव विकसित हो रहा था। समाज का उच्चवर्ण भोग विलासिता में लीन था और निर्धन या निम्न वर्ण शोषण का शिकार था। नारी भोग की वस्तु रह गई थी। सती प्रथा तथा अंधविश्वासों के अभिशाप से पूरा समाज ग्रस्त था। साधु-सन्यासी शाप और वरदानों के बीच जनसामान्य पर आतंक जमाए थे। आदिकालीन कवियों ने अपने परिवेश और वातावरण से ही अपनी काव्य रचनाओं की सामग्री जुटायी है।

सामाजिक संकीर्णता अपने अनेक प्रतिबन्धों के रूप में आम व्यक्ति को सता रही थी। तभी लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि ,इस काल के समाज में विभिन्न वर्गों के विविध प्रकार के उत्सव और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। अरिवेट, मज्ज युद्ध, घुड़सवारी, द्यूत-क्रीड़ा, संगीत-नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था....शक्ति और शैवों को छोड़कर शेष लोग खान-पान में सात्त्विकता बरतते थे। (हिन्दी साहित्य का इतिहास,)

आर्थिक परिस्थितियाँ – आदिकाल के इस काल खण्ड में समाज अपनी आर्थिक परिस्थितियों से भी जूझ रहा था, आर्थिक परिस्थितियों की अस्थिरता का मूल कारण तद्युगीन युद्ध ही कहे जा सकते हैं। विदेशी आक्रांताओं का मुख्य उद्देश्य भारतीय संपत्ति को क्षति पहुँचाना या फिर धन, स्वर्ण आदि लूट कर अपने देश ले जाना था. यही नहीं, समय-समय पर यवन आक्रमणकारी देश में प्रविष्ट होकर हमारे खेतों में खड़ी फसलों को रौंद कर, जलाकर नष्ट कर देते थे। नगरों, गांवों , मंदिरों तथा संग्रहांलयों को तोड़कर लूट कर के हमारी ज्ञान संपदा भी नष्ट करते थे। लगातार युद्धों एवं आक्रमणों का दुष्परिणाम अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था पर व्यापक रूप से पड़ा। जनता निर्धनता और लूटमार से आक्रांत एवं त्रस्त हो चुकी थी और उसको जीवन यापन के साधन जुटाना भी दुर्लभ हो गया था। साहूकारों और सामंत आम निर्धन जनता को ऋण ग्रस्त कर बेहाल किए हुए थे। सत्ता जनता के प्रति गहरी निरपेक्ष थी वह उनके कल्याण और आर्थिक उद्धार करने के स्थान पर उनका शोषण ही कर रही थी। यह स्पष्ट है कि यह काल खण्ड सामाजिक एवं आर्थिक अराजकता का ही था। जमींदार, सेना नायक, शासक जागरूक थे. कर्तव्य-पालन के प्रति उदास थे। अत: आर्थिक अनुदारता के सत्ता पक्ष के इस स्वरूप से जनता निर्धन, आश्रयहीन एवं कमजोरअर्थ साधनों के कारण उच्च वर्गीय शोषण का भी शिकार थी।

2.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ

त्रिभाषात्मक साहित्यिक सर्जना - आदिकालीन हिन्दी साहित्य का विवेचन करते हुए आपके सामने यह प्रस्तुत किया जा चुका है कि तत्कालीन समय में परंपरागत संस्कृत साहित्य धारा में प्राकृत और अपभ्रंश की साहित्य सर्जना मूलकधारणा और जुड़ गई थी। इसीलिए आदिकाल की साहित्यिक परिस्थिति, साहित्य एवं भाषा के स्वरूप तथा स्थिति विशेष के अध्ययन की अपेक्षा रखती है। आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों की अस्थिरता और अराजकताका अध्ययन अभी तक आप कर ही चुके हैं। अब आप आदिकालीन साहित्य एवं भाषा की परिस्थितियाँ कैसी थीं यह भी जान लीजिए। नवीं से ग्यारहवी शती ईस्वी तक कन्नौज और

कश्मीर संस्कृत साहित्य के मुख्य केन्द्र थे और इस काल खण्ड में एक ओर संस्कृत साहित्य धारा के आनन्दवर्धन, अमिनव गुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, मम्मट, राजशेखर तथा विश्वनाथ जैसे काव्यशास्त्री तो दूसरी ओर शंकर, कुमारिल भट्ट, एवं रामानुज जैसे दर्शनिकों और भवभूति , श्री हर्ष ,जयदेव जैसे साहित्यकारों का सर्जनात्मक सहयोग था।

इसी काल खण्ड में प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की साहित्य सर्जना भी हो रही थी। स्वयंभू, पुष्पदंत तथा धनपाल जैसे जैन कवियों ने अपनी प्राकृत एवं अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी की मिश्रित रचनाएं भी प्रस्तुत की थीं। सरहपा, शबरपा, कणहपा, गोरखनाथ, गोपीचंद जैसे नाथ सिद्धों ने अपभ्रंश तथा लोकभाषा हिंदी में अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। राजशेखर की कर्पूरमंजरी, अमरूक का अमरूशतक तथा हाल की आर्यासप्तशती, अपभ्रंश की उत्तम कृतियों इसी कालखण्ड की देन हैं। वास्तव में यह काल मीमांसा-साहित्य सर्जना की प्रवृत्तियों का रहा हैं। आप ये जान लें कि संस्कृत भाषी साहित्य तत्कालीन राज प्रवृत्ति सूचक है तो प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य धर्म ग्रंथ मूलक भाषा की प्रवृत्ति का परिचालक है और हिंदी जन मानस की प्रवृत्ति की रचनात्मक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

आदिकालीन साहित्य का विशिष्ट स्वरूप –सामान्यत: इसमें अतिश्योक्ति ही है कि आदिकाल वीरगाथात्मक काव्य में आश्रयदाताओं के शौर्य गान, प्रशस्ति प्रकाशन और अतिरंजना पूर्ण अमिसिकतताका काल है। भावगत इकाई में यह अध्ययन कर चुके हैं कि इसी भ्रम के कारण इस काल खण्ड को वीरगाथा काल कहने के लिए आचार्य शुक्ल को दुविधा में डाला था। अब आप अध्ययन कर यह अवश्य ही अनुभव करेंगे कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी ईस्वीं का यह काल खण्ड साहित्य और भाषा की दृष्टि से विकास का काल था। युद्धों की निरंतरता और वैदेशिक आक्रांताओं द्वारा इस देश को तहस-नहस करने के बीच भी आश्रयदाताओं की साहित्यिक अभिरूचि की सशक्तता के परिणाम स्वरूप इस काल में निम्न प्रकार से भाषा एवं साहित्य के स्वरुप का अववाहन किया जा सकता है-

आदिकालीन भाषा एवं साहित्य

क .संस्कृत साहित्य 1 . वैदिक संस्कृत साहित्य 2 .लौकिक संस्कृत साहित्य

ख . प्राकृत साहित्य 1 . संस्कृतेतर साहित्य 2. अपभ्रंश साहित्य 3 . देशभाषा साहित्य

ग . धर्म संप्रदाय गत साहित्य - स्फुट साहित्य **,** बौद्ध साहित्य , जैन साहित्य

घ . देश भाषा साहित्य

विषम परिस्थितियों में भी आदिकाल में वीरगाथा, भक्ति एवं श्रंगार के साथ धार्मिक, लौकिक और नीतिपरक आध्यात्मिक रचनाएं लिखी गई हैं। संकेत रूप में आप पुन: जान लीजिए कि इस युग और परिवेश में चंद बरदाई,विद्यापति, अमीर खुसरों, स्वयंभू, पुष्पदंत, रामसिंह, सरहपा, कण्हपा, गोरखनाथ, अब्दुर्रहमान, नरपति नाल्ह तथा जगनिक आदि ने राष्ट्रीय भावना से दूर रहकर आश्रयदाताओं के प्रशस्ति-गायन, शौर्य-वर्णन की अतिशयता, ऐतिहासिक विसंगतियों के बीच विकसित काव्यधारा में भक्ति, नीति और प्रकृति का चित्रण भी किया गया है। उक्त साहित्य सर्जना के आधार पर आचार्य शुक्ल का यह कथन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है – ''आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण-स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है (रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, भूमिका,)

बोध प्रश्न 1 :-

1. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थी ?
2. आदिकालीन धार्मिकएवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की समीक्षा कीजिए।
3. आदिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन कीजिए।
4. आदिकालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ कैसी है ?

2.5 आदिकाल : प्रमुख प्रकृतियाँ

आप अभी आदिकालीन परिस्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं और निश्चित ही आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि इन परिस्थितियों में किस प्रकार के साहित्य की रचना हुई। अत: इकाई के इस अंश में आपको इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में विस्तृत जानकारी देंगे। आपकी सुविधा के लिए प्रमुख आदिकालीन प्रवृत्तियों का वर्गीकरण तीन स्तर पर किया जा रहा है- धर्म संबंधी साहित्य, चारण काव्य और लौकिक साहित्य। अब क्रमश: हम इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख करेंगे -

2.5.1 धर्म संबंधी साहित्य

धर्म संबंधी साहित्य के अंतर्गत उस साहित्य का उल्लेख किया जा रहा है जो किसी मत विशेष के प्रचार-प्रसार करने हेतु लिखा गया जैसे – सिद्ध संप्रदाय, नाथ संप्रदाय, जैन संप्रदाय आदि। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन्हें साहित्यिक रचनाओं के रूप में स्वीकार नहीं किया था। लेकिन आप जान सकते हैं कि ये धर्मसंबंधी रचनाएं केवल धर्म प्रचार मात्र नहीं थी, अपितु इन्हें उत्तम काव्य की कोटि में रखा जा सकता है । इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि , इधर जैन, अपभ्रंश चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है, वह सिर्फ धार्मिक संप्रदाय के मुहर लगने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है, अपभ्रंश की कई रचनाएं, जो मूलत: जैन धर्म भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं, निस्संदेह उत्तम काव्य हैं। यह बात बौद्ध सिद्धों की कुछ रचनाओं के बारे में भी कहीं जा सकती हैं। (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 1)

2.5.2 सिद्ध काव्य

सिद्ध संप्रदाय को बौद्ध धर्म की परंपरा का हिन्दू धर्म से प्रभावित एवं धार्मिक आन्दोलन माना जाता है। तांत्रिक क्रियाओं में आस्था तथा मंत्र द्वारा सिद्धि चाहने के कारण इन्हें सिद्ध कहा जाने लगा। इन सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। राहुल सांकृत्यायन ने तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनमें सरहया, शबरपा , कण्हपा, लुइपा, डोम्मिपा, कुक्कुरिपा आदि प्रमुख हैं। केवल चौदह सिद्धों की रचनाएं ही अभी तक उपलब्ध हैं ।

सिद्धों द्वारा जनभाषा में लिखित साहित्य को सिद्ध साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य वस्तुत: बौद्धधर्म के वज्रयान का प्रचार करने हेतु रचा गया। अनुमानत: इस साहित्य का रचनाकाल सातवीं से तेरहवीं शती के मध्य है। इन सिद्ध कवियों की रचनाएं दोहाकोश और चर्यापद के रूप में उपलब्ध होती है सिद्ध साहित्य में स्वाभाविक सुख-भोगों की स्वीकृति और गृहस्थ जीवन पर बल दिया गया है तथा पाखण्ड एवं बाह्य अनुष्ठानों का विरोध तथा स्व-शरीर में परमात्मा का निवास माना है। यही नहीं गुरू का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। आचार्य द्विवेदी का

कथन है कि इन रचनाओं में प्रधान रूप से नैराश्य भावना, काया योग, सहज शून्य की साधना और भिन्न प्रकार की समाधि आदि अन्य अवस्थाओं का वर्णन है।

यद्यपि सिद्ध सम्प्रदाय का अभीष्ट काव्य लेखन नहीं था। वो तो केवल अपने विचारों एवं सिद्धांतों की अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा में साहित्य रचते थे और उनकी भाषा शैली में जो अक्खड़पन और प्रतीकात्मकता है उसकी प्रभाव परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ा है। आप देखेंगे कि वे सिद्ध कवि अपनी बात सीधे ढंग से न कहकर तंत्र-मंत्र के अंतर्गत प्रयोग किए जाने वाले विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ही प्रकट करते थे। राहुल सांकृत्यायन ने परवर्ती हिंदी कवियों पर उनके प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि ‘’यही कवि हिंदी काव्य धारा के प्रथम सृष्टा थे। नये-नये छन्दों की सृष्टि करना इनका ही कार्य था उन्होंने दोहा, सोरणा, चौपाई, छप्पय आदि कई छन्दों की सृष्टि की जिन्हें हिंदी कवियों ने बराबर अपनाया है। (हिंदी काव्य धारा, पृ०-36)

सरहपा या राहुलभ्रद का समय 769 ई० के लगभग माना जाता है। इनके ग्रंथों की संख्या 32 है। जिनमें कायावाश, दोहाकाश, सरहपाद गीतिका को प्रमुख माना जाता है। वे कहते हैं –

पडित सअल सत्य वक्टवाण्अ।

देहहिं बुद्ध बसन्त या जाणअ।।

अर्थात पडित सभी शास्त्रों का व्याख्यान करते हैं, किन्तु देह बसने वाले बुद्ध (ब्रहम) को नहीं जानते। सरहपा के अतिरिक्त शबरपा ,लुइप , कण्इपा आदि हैं। जिनके ग्रंथों की अनुमानित: संख्या 16 है । कण्हपा की रचनाओं की संख्या 74 मानी जाती है, पर कण्हपा गीतिका तथा दोहाकांश प्रमुख है। आप जान पायेंगे कि इन ग्रंथों में दर्शन तथा तम-विद्या है। उन्होंने मनुष्य के जीवन का मूल उद्देश्य सहजानंद की प्राप्ति को माना है,जो मात्र मोह के त्यागने पर शरीर के अंदर ही प्राप्य है जिसका मार्गदर्शक गुरू है। यही साधना मार्ग परवर्ती कवियों के लिए भी मार्ग दर्शक है।

2.5.3 नाथ काव्य

नाथ संप्रदाय को सिद्धों की परंपरा का विकसित रूप माना जाता है। नाथ संप्रदाय में नाथ शब्द का अर्थ मुक्ति देनेवाला है। यह मुक्ति सांसारिक आकर्षण एवं भाग विलास से होती है तथा निवृत्ति मार्ग का दर्शक गुरू होता है। दीक्षा के उपरांत गुरू वैराग्य की शिक्षा देकर इन्द्रिय निग्रह, कुण्डलिनी जागरण, प्राण-साधना, नारी विरति के साथ हठयोग की प्रक्रिया अपनाता है। इनके साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक सूर्य, चंद्र, गगन, कमल आदि है जो सूर्य 'ह' और चन्द्र ‘ठ’ के प्रतीक है और इनका मिलन हठ योग कहा गया है। आचार्य शुक्ल ने इन ग्रंथों की भाषा देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश या पुरानी हिंदी मानी है।

नाथ योगियों की संख्या नौ मानी गई है – नागार्जुन, जडभरत, हरिशचन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ और मलयार्जुन है। इस संप्रदाय का आचार्य गोरखनाथ को माना जाता है तथा मत्स्येन्द्रनाथ उनके गुरू थे। गोरखनाथ के ग्रंथों की संख्या चालीस मानी जाती है, परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा पीताम्बरदत्त बडथ्वाल आदि ने प्रमुखत: चार ग्रंथ ही माने हैं – सदी, पद, प्राण-संकल्पी, शिष्यादर्शन । इनमें संयम, साधना तथा ब्रहमचर्य पर जोर दिया गया है तथा गुरू की महत्ता का बखान किया गया है। गोरख नाथ कहते हैं –

जाणि के अजाणि होय बात तूं ले पशाणि।

चेलेहोइआं लाभ होइगा गुद होइआं हागि।।

अर्थात् तू जानबूझकर अनजान मत बन और यह बात पहचान ले या जान ले कि शिष्य बनने में लाभ ही लाभ है और गुरू बनने में हानि है।

नाथ योगियों ने आचरण-शुद्धि और चरित क्षमता पर बहुत जोर दिया है। उनके योग में संयम और सदाचार का बड़ा महत्व था। कबीर तथा अन्य भक्ति कालीन संत कवियों के साहित्य में प्राप्त कुंडलिनी जागृत करने की क्रिया का आधार भी नाथ योगियों का हठयोग है। आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि नाथपंथ ने ही अनजाने परवर्ती संतों के लिए श्रृद्धाचारण प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। (हिंदी साहित्य की भूमिका)

2.5.4 जैन काव्य

जैन का अर्थ होता है सांसारिक विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त करने वाला। यह शब्द 'जिन' से बना है यानी विजय पाने वाला। जो सांसारिक आकर्षण पर प्राप्त की जाती है। बौद्ध संप्रदाय से पूर्व ही जैन संप्रदाय का अम्युदय हो चुका था और उसके प्रवर्त्तक भी महावीर स्वामी थे जिनका अविर्भाव भी महात्मा बुद्ध से पहले आया था। जैन संप्रदाय में दया, करूणा, त्याग तथा अहिंसा, इंद्रिया निग्रह, सहिष्णुता, व्रतोपवास आदि को महत्व दिया गया है। जैन कवियों एवं मुनियों ने अपने धर्म-प्रचार के लिए लोकभाषा ही अपनाई जो अपभ्रंश से प्रभावित हिंदी है। इनकी अधिसंख्य रचनाएँ धार्मिक हैं जिनमें जैन संप्रदाय की नीतियों, अध्यात्म और आगमों का विवेचन है और कुछ चरितकाव्य हैं। इनकी कृतियाँ रास, फागु, चरित, चउपई आदि काव्यरूपों में उपलब्ध है तथा अधिकतर उपदेशात्मक है। रस काव्यों में प्रेम-विरह एवं युद्ध आदि का वर्णन है। लौकिककाव्य होने के कारण इनमें धार्मिक तत्वों का समावेश भी हो गया है। अपभ्रंश काव्य परंपरा में प्रथम जैन कवि स्वयंभू हैं जिनका आविर्भाव सातवीं शती में हुआ था। इनकी प्रमुख कृतियाँ है – रिट्ठनेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित) तथा स्वयं भूछन्दस। इनमें से पउम चरिउ में राम कथा है जो जैन धर्मानुसार रूप ग्रहण करती है तथा पांच खण्डों में विभक्त है। अरिष्टनेभि चरित में महाभारत और कृष्ण कथा चारकाण्डों में वर्णितहैतथा कौरव-पाण्डव युद्ध का वर्णन भी मिलता है लेकिन वह भी जैन धर्म की रीतिके अनुसार कृष्ण चरित में उभरते परिवर्तन के रूप में ही है।

दूसरे महत्वपूर्ण कवि पुष्पदंत हैं जिनका आदिर्भाव दसवीं शती के आरंभ माना जाता है। पुष्पुदंत पहले शैव थे, बाद में जैन दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी कृतियाँ हैं – तिसट्ठि मही , पुरिसगुणालंकार, महापुराण और णायकुमार चरिउ इसमें से प्रथम कृति दो भागों- आदि पुराण एवं उत्तर पुराण जो तीन खण्डों में विभक्त हैं तथा तेईस तीर्थंकरों एवं भरत का चरितोल्लेख लिए हुए है। नागकुमार चरित में नौ संधियों में विभक्त चरितकाव्य है जो मूलत: श्रुत पंचमी के व्रत की महिमा लिए हुए है तथा अपभ्रंश भाषा में लिखी गई है। यह व्रतानुष्ठानिक कथा है। नागकुमार ने व्रतानुष्ठान के आधार पर 24 कामदेवों में से एक के रूप में जन्म लिया था। यह अपभ्रंश भाषा में लिखित नागकुमार के अलौकिक एवं चमत्कारिक कार्यों का वर्णन है। यही नहीं, आदिकालीन आधार सामग्री हेतु इसके अतिरिक्त मेरूतुंग की 'प्रबंध चिंतामणि, मुनि रामसिंह की पाहुड़ दोहा, धनपाल की **भविसयत्तकहा** भी जैन साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

2.5.5 चारण काव्य

आदिकाल की विशेष प्रवृत्ति रही हैं कि कवियों आश्रयदाता राजा के राज्याश्रित कवियों द्वारा उनकी प्रशस्ति एवं वीरता तथा शौर्य का गायन किया है तथा युद्धों का सजीव चित्रण भी। ऐसे कवियों को चारण कवि या दरबारी कवि कहा जाता था। ये चारण कवि अपने आश्रयदाता के यश, शौर्य, गुण में और वीरता की अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने में कुशल स्वामी भक्ति कवि थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि , निरन्तर युद्धों के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। उनका कार्य ही था हर प्रसंग से आश्रयदाता के

युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटनाओं का अविष्कार (हिंदी साहित्य की भूमिका) चारण कवियों ने अपने काव्य का प्रणयन अधिकतर डिंगल भाषा (राजस्थानी) में ही किया है : बोलचाल की राजस्थानी भाषा के साहित्यिक रूप को डिंगल कहा जाता है जो वीरगाथात्मक काव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। चारण काव्यकारों में चंद बरदाई, दलपति विजय, जगनिक, नरपतिनाल्ह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें प्राय: सभी ने रासो काव्य परंपरा में अपनी काव्य कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। चंद बरदाई ने पृथ्वीराजरासो , नरपति नाल्ह ने वीसलदेवरास , दलपति विजय ने खुमाणरासो तथा जगनिक ने परमालरासो (आल्हा खण्ड) की रचनाएं की .जगनिक ने परमात्मा रासों में क्षत्रिय जीवन का युद्ध के लिए ही अभीष्ट माना है –

बारह बरस लौ कूकर जिए औ तेरह लै जिए सियार।

बरस अठारह सभी जीये, आगे जीवन को धिक्कार।।

नरपति नाल्ह ने विग्रह राज (बीसल देव) का चरित वर्णन किया ।

यहीं पर आपको यह बताना भी अधिक उपयुक्त होगा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल वीरगाथा काल की आधार सामग्री में गृहीत पुस्तक भट्ट केदारकृत जयचंद प्रकाश तथा मधुकर कवि रचित जयमयंकजस चंद्रिका आज भी अनुपलब्ध हैं और उनका उल्लेख दयालदास कृत **राठौड री ख्यात** में ही मिलता है। अनुमान किया जा सकता कि ये दोनों कृतियाँ महाराजा जयचंद के प्रताप और पराक्रम की गाथा से परिपूर्ण हो सकती हैं ।

2.5.6 लौकिक काव्य

जनता की चित्तवृत्तियों का सर्वाधिक सटीक वर्णन लौकिक या लोक साहित्य परक कृतियों में मिलता हैं। ये प्रमुख रचनाएं ऐसी होती हैं जो कभी कवि विशेष द्वारा रची गई होती हैं, पर कालान्तर में वे लोक कंठाश्रित हो जाती हैं और जो उनका गायन वाचन करते हैं उनकी अपनी काव्यात्मक सम्वेदना कब कितना योगदान करती हैं, उसकी कोई पहचान संभव नहीं होती है। दूसरी ओर ऐसी भी लौकिक परंपरा की काव्य कृतियाँ सामने आती हैं जिसमें विशेष विषयों से संबंध जुड़ा होता है जिसका साहित्येतर प्रवृत्ति के रूप में जनता के मनोरंजन हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अमीर खुसरों द्वारा मुकारियों तथा पहेलियों का सृजन किया गया है। दूसरी ओर भक्ति एवं श्रृंगार की प्रकृति को लेकर विद्यापति ने साहित्य (पदावली) की रचना की धनपाल जैसे जैन कवि ने सामान्य व्यक्ति को नायक बनाकर काव्य सृजन की नई प्रवृत्ति आरंभ की।

अमीर खुसरों का आविर्भाव तेरहवीं शती (सन् 1255 ई.) में हुआ और उन्होंने लगभग सौ ग्रंथ की रचना की। उनमें से बीस ग्रंथ ही उपलब्ध होते हैं। उनकी काव्य कृति में पहेलियाँ, दो सुखन, मुकरियाँ, ढकोसला आदि संग्रहित हैं । उनकी रचनाएं प्राय: खड़ी बोली हिंदी का प्रारम्भिक किंतु ऐतिहासिक रूप है। कुछ उद्धाहरण द्रष्टव्य है –

एक थाल मोती से भरा।

सब के सिर औंधा धरा।

चारों ओर वह थाल फिरे

मोती उससे एक न गिरे (पहेली उत्तर : तारों भरा आकाश)

मुकरी का उदाहरण –

मेरा मोसे सिंगार करावत

आगे बैठ के मान बढावत

वासं चिक्कन ना कोउ हीसा

ऐ सखि सजन ना सखि सीसा

विद्यापति बिहार (दरभंगा) निवासी कवि हैं जिन्होंने मैथिली भाषा में श्री कृष्ण एवं राधा विषयक प्रेम विरह भावों को अभिव्यक्ति दी है। विद्यापति के प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्ति सिंह और बाद में मैथिली नरेश शिव सिंह थे। विद्यापति ने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना संस्कृत में की। इनमें शैव सर्वस्वसार, प्रमाणभूत पुराण संग्रह ,भू-परिक्रमा, पुरूष परीक्षा, लिखनवली, गंगा वाक्यावली, दान वाक्यावली, विभागसार, दुर्गाभक्ति तरंगिनी प्रमुख हैं। हिंदी साहित्य के अंतर्गत विद्यापति के तीन ग्रंथ उल्लेखनीय हैं – कीर्तिलता, कीर्तिपताका तथा पदावली. कीर्तिलता और कीर्तिपताका चरित काव्य है, पदावली श्रृंगारिक एवं भक्ति परक रचना है। कीर्तिलता राजा कीर्ति सिंह चरित विषयक रचना है जो कवि द्वारा अवहट्ठ (अपभ्रंश) की प्रथम रचना है और जिसे सुनने से पुण्य प्राप्ति होती है। भृंग-भृंगी संवाद द्वारा कहानी आगे बढ़ाई गई है। पृथ्वीराज रासो में शुक-शुकी सम्वाद है। इस रूप में दोनों कृतियों में साम्य है। पदावली पद संग्रह है जो मैथिली (भाषा) में रची गई है। वस्तुत: इस विद्यापति पदावली के गीतों का सर्वाधिक प्रचार चैतन्य महाप्रभु ने किया है। वे भाव विभोर इन नीतियों का गायन करते थे। इन पदों (82) में राधाकृष्ण प्रेम का श्रंगारिक चित्रण है। राधा के अप्रतिम सौन्दर्य का चित्रण विद्यापति करते है-

लोल कपोल ललित मनि-कुण्डल

अधर बिम्ब अध आई।

भौह भमर नासा पुट सुन्दर

देखि कीर लजाई

विद्यापति के इस गीत काव्य के नायक राधा-कृष्ण हैं, परन्तु यह केवल भक्ति रचना नहीं है। वास्तव में विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला से सम्बद्ध पदों की रचना श्रृंगार चित्रणको ध्यान में रखकर की है। डॉ रामकुमार वर्मा कहते हैं कि, उन्होंने (विद्यापति ने) श्रृंगार पर ऐसी लेखनी उठाई है जिससे राधा और कृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के सिवाय कुछ नहीं रह गया है। ‘’(हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास) **भविष्यत्त कहा** यह अपभ्रंश में रचित कथा काव्य है जो श्रुतपंचमी के महात्मय का वर्णन है। इसके रचयिता जैन संप्रदाय में दीक्षित कवि (दसवीं शती) है। यह कृति बाईस संधियों में रचित दम्पत्ति धनपाल और कमलश्री के पुत्र भविष्यदत्त की कथा है जिसे उसका सौतेला भाई बंधुदत्त धोखा देकर सारी संपत्ति हड़प कर लेता है। भविष्यदत्त की सच्चरित्रता तथा वीरता के कारण राजपुर के राजा बंधुदत्त को दंडित कर भविष्यदत्त से अपनी बेटी का विवाह कर देते हैं। विवाह के उपरांत भविष्यदत्त को मनि विमल बुद्धि उपदेश देते हैं तथा उन्हीं के माध्यम से उसे अपने पूर्वजन्म की कथा का पता चलता है। अंत में भविष्यदत्त तपस्या करके निवार्ण की प्राप्ति करते हैं। यह काव्य कडवकबद्ध शैली में रचित प्रकृति, रूप, नखशिख वर्णनों का श्रेष्ठ आंकलन है जिसमें वीर श्रृंगार तथा शांत तीन रसों का समावेश है तथा इसकी भाषा अपभ्रंश या पुरानी हिंदी है। ढोलामारू रा दूहा , सन्देशरासक की परंपरा में रचा गया लोककाव्य है और वीसलदेवरासो की भांति सन्देश काव्य है। इसमें बचपन में हुए विवाह के उपरांत मारू अपने पति ढोला को कई सन्देश भेजती है। अंत में मारर (मारवणी) लोकगीतों के गायक ढोढी का दायित्व सौंपती हैं और वह अपने उद्देश्य में सफल होती है और उन दोनों का मिलन सम्भव हो जाता है। यद्यपि परदेश में ढोला का प्रेम मालवाणी के साथ विकसित हो जाता है। इधर-मारवणी की मृत्यु के बाद मालवणी और ढोला का पुनर्मिलन हो जाता है।

ढोलाकाव्य सौष्ठव से परिपूर्ण अनुपम लोकगाथा है। जिसमें श्रृंगार का संयोग कालीन वर्णन मर्यादित एवं अलौकिक है। नख-शिव परंपरा युक्त वियोग वर्णन में ह्रदय की सच्चाई का स्वाभाविक एवं प्रभावशाली वर्णन है। मारवणी ढोढी के समक्ष अपने सन्देश में नारी ह्रदय को खोल कर रख देती है –

ढाढी एक संदेसड़उ ,प्रीतम कहिया जाइ।

सा घण बलि कुइला भई भसम ढँढोलिसि आइ।

ढाढ़ी जे प्रीतम मिलइ, यूं कहि दाखनियाह।

ऊँजर नहिं छई प्रणिय था दिस झल रहियाह।

अर्थात् घनि (पत्नी) जलकर कोयला हो गई है। अब आकर उसकी भस्म ढूंढना । अब उसके पंजर में प्राण नहीं है केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर झुककर जल रही हैं, मारवणी का वह निवेदन जहाँ एक ओर चारण काव्यों के प्रणयन की व्यापकता बढ़ाता है, वही जन साधारण के कवि की स्वान्त:सुखाय लोक भावनाओं को जीवंत रूप में सहज ही प्रस्तुत करता है।

बोधप्रश्न 2

1. सिद्धकाव्य किसे कहते हैं ?
2. नाथ कवियों की विशेष प्रवृत्ति पर प्रकाश डालिए।
3. जैन काव्य का महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. चारणकाव्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
5. लोकाश्रित ढोला मारू रा दूहा का महत्व स्पष्ट कीजिए।

2.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया

अब तक के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि आदिकाल की परिस्थितियाँ कैसी बन पड़ी थी जिन्होंने तत्कालीन कवियों में काव्य रचना की विशेष प्रवृत्तियों को जन्म दिया था। आप इस इकाई से यह जान ही चुके हैं कि परिस्थितियाँ कवि को उत्प्रेरित करती हैं और अवसर भी देती हैं कि वह अपने समय की यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति काव्य सर्जना में करें। परिस्थितियाँ और प्रवृतियाँ परस्पर परिपूरक दायित्व से जुड़ी रहती हैं, इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता है। ये दोनों ही कवि की रचना-प्रक्रिया का मूलाधार बनती हैं।

ऐतिहासिक काव्य – आदिकाल की संक्रमणशील परिस्थितियों और तत्कालीन राजा-महाराजाओं तथा विदेशी आक्रामकों के कारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा के कुल गौरव एवं शौर्य-गाथा का चित्रणयुगीन आवश्यकता के रूप में किया है। पराजय और हताषा के युग में अपने पूर्व-पुरूषों के शौर्य एवं गौरव को दुहराने के लिए उन्हें इतिहास का सहारा लेना ही अनिवार्य था, पर इतिहास को अपने राजा और उसकी प्रशास्ति के अनुरूप मोड़ लेना भी अनिवार्य था। यही कारण है कि उसमें इतिहास एवं कल्पना (फैक्टस और फिक्शन) का आश्रय लेकर उन्होंने अतीत को वर्तमान में देखने की सफल प्रयास किया है।

काव्य रचना इतिहास नहीं होती है, पर इतिहास का आश्रय काव्य की सम-सामयिक उपदेयता बढ़ा देता है। कवि इतिहासकार भी नहीं होता जो घटनाओं का यथाक्रम विवरण दें, वह तो काव्य-प्रयोजन सिद्ध घटनाक्रमों का आश्रय लेता है और कल्पना से उसमें काव्यात्मक ऊर्जा का मिश्रण कर उसे श्रवणीय (दरबारी वातावरण में) और पठनीय (लिखित कृति रूप में) बना देता है। पृथ्वीराज रासो का प्रथम संपादन जब कर्नल जेम्स टाड ने उदयपुर से

पच्चीस किलोमीटर दूर एकांत में निर्मित एजेण्ट के बंगले में पशु चराने वालों से सुनकरकिया तो प्रो व्हूलर में उसे जाली करार दे दिया था क्योंकि जगनिक द्वारा संस्कृत की हस्तलिखित प्रति **पृथ्वीराज विजय** में उल्लिखित सन् सम्वतों का साम्य विविध शिलालेखों से हो जाता था, पर पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित ऐतिहासिक घटना क्रम से साम्य नहीं रखता था। ऐसे ही किसी भी काव्य ग्रंथ में इतिहास सप्रसंग सांकेतिकता तो ले सकता है पर कल्पना ही अधिक व्यापकता ग्रहण करती है तभी कवि अपने काव्य प्रयोजन की सिद्धि में सफल हो पाता है। इस संदर्भ में यह कहा जाना भी कि पृथ्वी राज रासो ही नहीं अनेक अन्य रचनाएं ऐसी हैं, जो इतिहास का संस्पर्श लेकर ही चली हैं, उनमें सन् सम्वत का वह दखल नहीं हैं जो इतिहास में होता है, पर काव्यात्मक दृष्टि से वे अपने चरित नायक को ऐतिहासिक सिद्ध कर देती है, शेष कथा का विकास कवि कल्पना का विस्तार लिए है (रासो काव्यधारा)

उक्त विवरण के साथ आप यह भी जान सकते हैं कि आदिकाल के हिंदी ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया। उसने कल्पना का ही अधिक सहारा लिया और काव्य-निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा बाद में खूब चली।........परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना अधिक , तथ्यनिरूपण कम ,संभावनाओं की ओर अधिक रूचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लासित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, तथ्यावली की ओर कम।............ पृथ्वीराज रासो में चंद बदराई ने कल्पना और तथ्य का सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया है, पर इसमें भी कल्पना तथ्य पर हावी हो गई है। (हिंदी साहित्य का आदिकाल) आदिकाल की आधार सामग्री में और नई खोजों से प्राप्त तद्युगीन अन्य काव्यकृतियों का मूल्यांकन किए जाने के उपरांत आपके समक्ष यह तथ्य बहुत ही स्पष्ट रूप में रखा जा सकता है कि युद्ध सामंती परिवेश की अनिवार्यता है और उसके लिए प्रतिपक्ष से शत्रुता ही अनिवार्य नहीं है क्योंकि आल्हाखण्ड (परमाल रासो) में कवि एक स्थान पर कहता है-

''जेहि कि कन्या सुन्दर देखी
तेहीं घर जाय धरै हथियार''

यानी जिस किसी परिवार में सुन्दर कन्या देखी, वहीं वीर योद्धा ने उसकी प्राप्ति के लिए उसके परिवार के समक्ष तलवार दिखाकर विवाह के लिए बाध्य कर दिया।

इस प्रकार के उल्लेख से आप समझ सकते हैं कि राजाओं द्वारा किस प्रकार अन्य राजाओं को युद्ध अथवा बेटी से विवाह के विकल्प दिए थे क्योकि हारकर या बेटी देकर दोनों की रूपों में उक्त राजा की अधीनता या आश्रय ही उनकी नियति रह गई थी। प्रश्न यह भी है कि आदिकाल में लिखित काव्यों में श्रृंगार का निरूपण किस रूप में हुआ है। प्रथम रूप में वीरगाथात्मक काव्यों के स्तर पर प्रेम और युद्ध के साथ-साथ श्रृंगार का चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज रासो इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। पृथ्वीराज रासो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसमें प्रेम का वर्णन युद्ध के फलक पर हुआ है। लेकिन आदिकाल के अन्यकाव्यों में ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनमें अलग से नायक-नायिका के प्रेम और विरह (संयोग और वियोग) का चित्रण किया गया है। वीसलदेव रास, विद्यापति पदावली, ढोलामारू दूहा के उदाहरण इसके साक्षी हैं। विजयपाल रासो की खण्डित सामग्री में भी श्रृंगार और प्रेम का ही निरूपण मिलता है। इस रासो के 43 छन्द मिले हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहना आप के लिए अधिक सहज है कि आदिकाल के काव्यों में अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के लिए शौर्य एवं प्रशस्ति गायन (यानी वीर रस) के अतिरिक्त श्रृंगार (संयोग-वियोग) के चित्र ही उनके काव्य कौशल को प्रशंसा दिला सकते थे।

2.6.3 लौकिक काव्य - अब इकाई के इस अंश में आदिकाल में लिखत काव्य प्रक्रिया का यह स्वरूप आपकेसामने प्रस्तुत है जिसे कहा जाता है-लौकिक काव्य। यद्यपि खुसरोकी पहेलियोंका उल्लेख आधार सामग्री के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कर ही चुके थे। अन्य और परवर्ती सामग्री उन्हें बीसवीं शती के दूसरे दशक तक उपलब्ध हो गई होतीतो यह संभव था कि इस प्रक्रिया में वह भी आपके अध्ययन के लिए उपलब्ध करा दी गई होती। पर शुक्ल जी के समय में जब हिंदी शब्द सागर की भूमिका को वे इतिहास का रूप दे रहे थे, तब साधनों के अभाव और लेखक की सीमाओं के कारण ऐसा संभव नहीं हो सकता था।

परवर्ती काल में हिंदी साहित्येतिहासकारों के प्रतिस्पर्धात्मक इतिहास लेखन ने गर्भगृहों, मंदिरों-उपासरों, निजी पुस्तकालयों के द्वार खटखटाए और सामग्री की खोज में लगे तो आदिकाल की इस प्रवृति-प्रक्रियाका क्षेत्र विस्तार हुआ और अब इस क्षेत्र में ढोलामारूदा दूहाका उल्लेख अनिवार्यहोगया है। 'वसंतविलास', जयचंद्र प्रकाश और जयमंयकजसचिद्रका, को भी लौकिककाव्य के रूप में स्वीकार कियाजाने लगा है। यद्यपि हम पिछली इकाई में (पांचवीं में) आपकोयहबता चुके हैं कि 'जयचंद्र प्रकाश' और जयमयंकजस चंद्रिका का उल्लेख ही हैं,वह भी राठौढा री ख्यात में उल्लेखकार ने स्वयं इन कृतियों के संबंध में कुछ भी विवरण नहीं दिया है।

आप यह जान कर अपना ज्ञान-वर्द्धन करेंगे कि इन लौकिक काव्यों की वर्ण्य-वस्तु श्रृंगार रस प्रधान है। वीर रस का उसमें योगदान नहीं है। वीर और श्रृंगार रस एक दूसरे के पूरक होते हैं पर यह नितान्त श्रृंगारिक रचनाएं हैं। 'ढोला मारू रा दूहा' प्रेमकाव्य है, वसंत विलास में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलास पूर्ण प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है। उसका ही एक उदाहरण दृष्टव्य है –

इणिपरि कोइलि कूजइ, पूजइ यूवति मणोर।

विधुर वियोगिनि धूजइ, कूजइ मयण किशोर।

अर्थात एक ओर आम्रवृक्षों पर कोयल कूकती है, दूसरी ओर पति युक्त युवतियाँ विलास मग्न होकर मनोरंजन करती हैं। इसे देखकर विधुर जन और वियोगिन नारियाँ कांपने लगती हैं, क्योकि मदन किशोर(कामदेव) का कूजन उनके मन में प्रिय के अभाव का आभास देता रहता है। आदिकाल के स्तर पर लौकिक काव्य में ऐसी रचनाएं हैं जो इस काल खण्ड में लिखी गई हैं, पर उनकी वर्ण्य-वस्तु रीतिकालीन है।

बोध प्रश्न 3

1. आदिकाल की काव्य प्रक्रिया समझाइए।
2. आदिकाल के ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिकता क्यों नहीं है ?
3. आदिकाल में श्रृंगारिक रचनाओं का अंबार क्यो रहा है ?
4. आदिकाल के लौकिक काव्य की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिए।

2.7 सारांश

इस संपूर्ण इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान चुके होंगे कि आपको आदिकाल के विविध स्वरूपों का अच्छा परिचय हो गया है कि आदिकाल में मात्र वीरगाथाएं ही नहीं लिखी जा रही थीं और जो वीरगाथाएं थी

उनके ऐतिहासिकता नामोल्लेख भर रही है, क्योंकि कवि का उद्देश्य इतिहास निर्माण करने के स्थान पर अपने आश्रयदाता को प्रोत्साहित एवं उद्बोधित करने के लिए ही कल्पना प्रसूत काव्य रचना प्रस्तुत करना था। इसीलिए तत्कालीन विषम राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थितियों के बीच अपने आश्रयदाता का मनोबल बनाए रखने के लिए कवि तथ्य एवं कल्पना के आश्रय में मनोरंजक एवं श्रृंगारिक काव्य प्रस्तुत करता था। इसी कारण इस काल खण्ड में इतिहास न लिखकर ऐतिहासिक (रस ग्राह्य), श्रृंगारिक एवं लौकिक काव्य रचनाओं की सृष्टि हुई हैं।

2.8 शब्दावली

आगम : जैन विद्या में वेद निरूपण

आक्रांता : भयभीत करने वाला

चरितकाव्य : ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चरित चित्रण प्रमुख हो

पदावली : पद शैली में रचित काव्य। इसका मूल स्रोत लोकगीत है। पद में प्राय: किसीन किसी राजा का निर्देश होता है

रास : रास एक गेय रूपक

रासो : रासक शब्द से निर्मित। व्यापक रूप से ऐसा चरित्र काव्य जो जीवन का समग्र चित्रण लिए हो।

चारण : राजाश्रय प्राप्त कवि जिनका काम राजा की प्रशस्ति करना होता था .

2.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल , हिंदी साहित्य की भूमिका
2. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास
3. राहुल सांकृत्यायन : हिंदी काव्यधारा
4. विजय कुलश्रेष्ठ : रासो काव्यधारा
5. शिवकुमार शर्मा : हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ
6. हरिश्चन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य का इतिहास
7. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकाल की परिस्थितियों पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
2. आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या थी, उनका विवेचन कीजिए।
3. आदिकालकी सर्जनात्मक प्रक्रिया पर अपना सटीक निबंध लिखिए।

इकाई 3 आदिकालीन नाथ साहित्य : परिचय एवं स्वरूप

3.1 प्रस्तावना

3.2 उददेश्य

3.3 नाथ सम्प्रदाय

3.4 आदिकालीन नाथ साहित्य

3.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु

3.4.2 भाषा-शैली

3.4.3 प्रमुख नाथ कवि

3.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से संबंधित यह तीसरी इकाई है। इसके पहले की दो इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं एवं उनके साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं।

नाथ पंथ या सम्प्रदाय को सिद्धों की परम्परा का ही संशोधित रूप माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में नाथों की साधना पद्वति और मान्यताओं का परिचय देते हुए आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं और प्रमुख नाथ कवियों का परिचय दिया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं से नाथ सम्प्रदाय की भिन्नता, नाथ साहित्य की प्रवृत्तिगत एवं भाषागत विशेषताओं तथा परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को जान सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि नाथ सम्प्रदाय की क्या-क्या विशेषताएँ हैं।
- आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- परवर्ती भक्तिकालीन हिंदी साहित्य (निर्गुण या संत काव्य) पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव की पहचान कर सकेंगे।

3.3 नाथ सम्प्रदाय

इससे पहले की इकाइयों में आपने आदिकालीन सिद्ध साहित्य का परिचय प्राप्त किया है। नाथों का समय इन सिद्धों से थोड़ा बाद का है। चौरासी सिद्धों की सूची में कुछ नाथों के नाम भी मिलते हैं। इसीलिए नाथों का संबंध इन बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों से माना जाता है। हालाँकि सिद्ध कवि देश के पूर्वी हिस्से में रह रहे थे, जबकि नाथों का निवास स्थान देश के पश्चिमोत्तर हिस्से में (राजपूताना और पंजाब) में बताया जाता है। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को ‘सिद्धमत’, ‘सिद्धमार्ग’, ‘योगमार्ग’, ‘योग सम्प्रदाय’ तथा ‘अवधूत मत’ भी कहा गया है। डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार -“सिद्धों की विचारधारा और उनके रूप को लेकर ही नाथ-वर्ग ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में उनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण किया।”

नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। इन्हें ‘‘नवनाथ’’ के नाम से जाना जाता है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं-आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ। नाथपंथी अपनी गुरू परंपरा शंकर (शिव) से आंरभ करते हैं। शंकर इस प्रकार आदिनाथ कहलाए। एक जनश्रुति के अनुसार शंकर ने सर्वप्रथम पार्वती को योग का रहस्य बतलाया था। मत्स्येन्द्रनाथ या मच्छंदरनाथ ने नदी की मछली का रूप धारण कर यह संवाद सुन लिया। इस कारण शंकर ने उन्हें इन्द्रिय-सुख में बँध जाने का श्राप दे

दिया। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ के ही शिष्य गोरखनाथ ने अपने गुरू का उद्धार किया। वास्तव में इस जनश्रुति से हमें गोरखनाथ द्वारा अश्लील तांत्रिकता का विरोध कर उसके स्थान पर ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय संयम पर आधारित योगमार्ग को प्रतिष्ठित करने का संकेत मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिनाथ शिव से शरू हुई परम्परा को मत्स्येन्द्रनाथ ने आगे बढ़ाया और उनके शिष्य गोरखनाथ ने इसे एक सम्प्रदाय या पंथ के रूप में प्रतिष्ठित किया।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के नाम सिद्धों की सूची में भी मिलते हैं। लेकिन गोरखनाथ सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान साधना-पद्वति के विरोधी थे। नाथ सम्प्रराय दार्शनिकता की दृष्टि से शैवमत के अंतर्गत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के योग से संबंधित है। गोरखनाथ ने इनके मेल से ‘‘हठयोग’’ रूपी साधना-पद्धति का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक पवित्रता को अपनाने तथा मांस-मदिरा का त्याग करने की शिक्षा दी। उनका मानना था- ‘‘जोई-जोई पिंडे सोई ब्रहमांडे’’, अर्थात जो शरीर में है वहीं ब्रहमांड है। इस प्रकार गोरखनाथ नाथ मत या सम्प्रदाय के प्राणदाता कहे जा सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- ‘‘शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शाक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।’’

नाथ सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय की रूढ़ियों का खंडन करते हुए ही अपनी साधना पद्धति विकसित की। नाथों ने सदाचार का आश्रय लेकर काया (शरीर) में ही तीर्थ की अनुभूति की। गोरखनाथ ने पाखंडों का खंडन किया और मंत्रों को व्यर्थ बताया। योग द्वारा शरीर का कायाकल्प करना नाथों की साधना का आवश्यक अंग रहा है। क्योंकि जब तक शरीर चैतन्य और तेजयुक्त नहीं होगा, तब तक अविरत साधना नहीं हो सकती है। ‘‘नाथ’’ का अर्थ ‘‘मुक्तिदान करने वाला’’ माना गया है। जो स्वयं ‘‘मुक्त’’ होगा वही मुक्ति का दान कर पाएगा। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में संसार के बंधनों से मुक्त होने की विधि बताई गई है। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब मन में वैराग्य की भावना स्थिर हो। यह वैराग्य- भाव गुरू की सहायता से ही उत्पन्न हो सकता है। इसके बाद योगी इन्द्रिय-निग्रह, प्राण-साधना और मन-साधना की ओर अग्रसर होता है। गोरखनाथ ने इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण ‘‘नारी‘ को बताया और अपने अनुयायियों के लिए नारी से दूर रहने का कड़ा नियम बनाया। इसके बाद प्राण- साधना का स्थान है, अर्थात प्राण- वायु के नियमित संचालन का अभ्यास । मन-साधना का अर्थ है संसार के विभिन्न आकर्षणों की ओर से मन को खींचकर अपने अन्तः करण की ओर उन्मुख कर लेना। इन सब की सिद्धि के बाद योगी में नाड़ी- संचालन और कुंडलिनी-जागरण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों और नाथों में अंतर था । सिद्ध निरीश्वरवादी थे, जबकि नाथ ईश्वरवादी थे। हालाँकि नाथों के ईश्वर सगुण न होकर निर्गुण निरंजन थे। नाथों ने जाति-पांति का भेद नहीं माना। गोरखनाथ स्वयं ब्राहमण थे, लेकिन उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को नहीं माना। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। ऐसे जाति-परिवर्तित गरीब मुसलमानों में बहुत से लोगों ने नाथ पंथ को अपना लिया। इस तरह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की नई और अनोखी जाति बन गई, जिसके सदस्य न

तो हिन्दू थे, न ही मुसलमान। इस युगीन प्रक्रिया ने धार्मिक सामाजिक भेदभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाथों ने वर्णगत ऊँच-नीच, जातिगत भेदभाव और धर्मगत विभेद को अस्वीकार किया।

नाथ मत के व्यापक प्रचार-प्रसार होने का कारण यह भी था कि नाथों ने वज्रयानी सिद्धों के तंत्र में मौजूद वीभत्स आचारों को नहीं अपनाया। उन्होंने तंत्र जन्य वीभत्स चमत्कारों से विचलित जनता को ब्रहमचर्य और योगाभ्यास रूपी नए विकल्प दिए। इसके अलावा, नाथों के ईश्वर भले ही निर्गुण या निरंजन थे, लेकिन उनमें एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति आस्था थी। इस कारण भी देश के पारंपरिक रूप से आस्थावान लोगों का झुकाव नाथ सम्प्रदाय की ओर हुआ। नाथ ईश्वर की स्थिति घट(शरीर) में मानते थे। वे भक्ति विरोधी थे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा- "गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।" लेकिन कबीरदास ने गोरखनाथ के प्रति आदर व्यक्त किया है। इससे पता चलता है कि नाथों की मान्यताओं की विरासत आगे चलकर कबीर आदि निर्गुण संतो के पास गई। डा. रामकुमार वर्मा ने नाथ मत के प्रचार-प्रसार में गोरखनाथ की भूमिका के विषय में लिखा है-''गोरखनाथ ने नाथ-सम्प्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहॉ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहाँ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।''

नाथ पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी 'कनफटे' कहलाते है, क्योंकि ये अपने कानों के मध्य भाग को फाड़कर उसमें बड़ा छेद कर लेते है। वे इसमें स्फटिक का कुंडल धारण करते है। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की दो शाखाएँ हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में रहने वाले अनुयायी गोरखनाथ को अपना गुरू मानते है और पश्चिमी भारत मे रहने वाले अनुयायी स्वयं को गोरखनाथ के ही शिष्य धर्मनाथ की परम्परा में मानते हैं।

यह पहले बताया जा चुका है कि नाथ सम्प्रदाय के उपदेशों का प्रभाव हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों पर भी पड़ा था। नाथपंथ के इस प्रभाव की निरंतरता के बारे में आचार्य रामचंद शुक्ल ने लिखा है - "अब भी इस प्रदेश में बहुत से मुसलमान जोगी गेरूआ वस्त्र पहने, गुदड़ी की लंबी झोली लटकाऐं, सारंगी बाजा बजाकर 'कलि में अमर राजा भरथरी' के गीत गाते फिरते हैं और पूछने पर गोरखनाथ को अपना आदि गुरू बताते हैं। ये राजा गोपीचंद के भी गीत गाते है जो बंगाल में चटिगांव के राजा थे और जिनकी माता मैनावती कहीं गोरख की शिष्या और कहीं जलंधर की शिष्या कही गई हैं।"

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए-

(क) नाथों की संख्या.......................................मानी जाती है।

(ख) नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने का श्रेय.............................को है।

(ग) नाथ योगी ....कहलाते हैं।

2 सत्य/असत्य बताइए-

(क) नाथ कवि मुख्यतः देश के पूर्वी भागों में रहते थे।

(ख) गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम पर अधिक जोर नहीं दिया।

(ग) नाथ ईश्वरवादी थे।

3 बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) सिद्धों की सूची में किसका नाम मिलता है-

(क) चौरंगीनाथ (ख) चर्पटनाथ

(ग) भर्तृनाथ (घ) गोरखनाथ

(ब) 'हठयोग' का प्रवर्त्तन किसने किया-

(क) आदिनाथ (ख) मत्स्येन्द्रनाथ

(ग) गाहिणीनाथ (घ) गोरखनाथ

(स) नाथ योगियों की साधना पद्वति का अंग नहीं है-

(क) इंद्रिय -संयम (ख) उपवास

(ग) प्राण-साधना (घ) मन-साधना

3.4 आदिकालीन नाथ साहित्य

इससे पूर्व के खंड में आपने नाथ सम्प्रदाय की विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया। आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप् से परिचित होने के लिए इसे जानना आवश्यक है। इस खंड में नाथ साहित्य के वर्ण्य विषयों या काव्यवस्तु, भाषा-शैली तथा प्रमुख नाथ कवियों से आपका परिचय कराया जाएगा।

3.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु

आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतो का परिचय मिलता है। यह स्वाभाविक है कि योग साधना में रत् नाथ योगियों के लिए शुद्ध साहित्य या साहित्य-संस्कार का कोई मतलब नहीं था। इसीलिए उनके साहित्य को इस दृष्टि से देखना उचित नहीं। नाथों ने तीन बातों पर जोर दिया है- (1) योगमार्ग (2) गुरू महिमा (9) पिंड ब्रह्मांडवाद। बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की साधना लोकबाह्य और अमांगलिक है जबकि नाथ योगियों का हठयोग आंतरिक है। गुरू के बिना हठयोग की जटिल प्रक्रिया संभव नहीं, इसलिए नाथ साहित्य में गुरू की महिमा गायी गई है। नाथ साहित्य में गुरू महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना, कुंडलिनी

जागरण, शून्य समाधि आदि की चर्चा मिलती है। इसमें ईश्वरोंपासना के बाहरी तौर-तरीकों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है और घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके शून्य-समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करना नाथों का परम लक्ष्य था। गोरखनाथ के अनुसार योगी का चित्त विकार के साधन होने पर भी विकृत नहीं होता- नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।

ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।

नाथ साहित्य मे साधना-पद्धति के निरूपण के अलावा उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी है, जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। नाथों की कविता में किसी एक सम्प्रदाय या धर्म और जाति की जगह मानव-मात्र की बात की गई है। साथ ही, इसमें वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को व्यर्थ तथा तीर्थाटन आदि को निष्फल बताया गया है। नाथ साहित्य की इन विभिन्न प्रवृतियों का परिचय देने वाले पाठों का अध्ययन आप अगली इकाई में करेंगे।

3.4.2. भाषा-शैली

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नाथ पंथ का अधिक प्रचार-प्रसार देश के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् राजपूताना और पंजाब की ओर अधिक हुआ। इसीलिए जब मत के प्रचार के लिए देशी भाषा में रचनाएँ की गई तो उस क्षेत्र में प्रचलित भाषा का ही व्यवहार किया गया। साथ ही, नाथ कवि अपनी बात कहने के क्रम में मुसलमानों को भी ध्यान में रखते थे जिनकी बोली दिल्ली के आसपास प्रचलित खड़ी बोली थी। इसके कारण नाथ कवियों की बानी पर इस बोली का भी असर मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है- "इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परंपरा साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से, जिसका ढ़ाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक 'सधुक्कड़ी' भाषा का सहारा लिया जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी था।"

यहाँ 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा नहीं है, बल्कि मिश्रित भाषा है। आप जानते हैं कि साधु-संत प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। इसीलिए उनकी भाषा पर विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों की भाषा की रंगत चढ़ जाती है। इसी कारण ऐसी भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहते हैं। आगे चलकर कबीर की भाषा का स्वरूप भी कुछ ऐसा ही मिलता हैं। इसके अलावा, नाथपंथी योगी तथा अनुयायी जहाँ-जहाँ गए वहाँ के लोगो के बीच नाथ गुरूओं के उपदेशों का प्रचार करने के क्रम में उन्होंने स्थानीय शब्दों और भाषिक प्रयोगों का भी सहारा लिया। डा0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने बताया है कि गोरखनाथ की रचनाएँ आज जिस रूप में मिलती हैं, उनमें इसी कारण गुजराती, मराठी जैसी अन्य भाषाओं के भी प्रभाव मौजूद हैं।

नाथ कवियों ने प्रायः दोहा छन्द में अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है। उन्होंने राग-आधारित गेय पद भी रचे, जिन्हें 'शब्द' या 'सबदी' कहा जाता है। सैद्धांतिक निरूपण के लिए नाथों की कविता में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। नाथ कवियों ने अपनी अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए अचरज और विसंगतियों से युक्त कथन-शैली अर्थात् उलटबाँसी का भी प्रयोग किया। जो कुछ लोक या जनसामान्य में विश्वसनीय ढंग से कहा जाता है, उसे उलटकर कहना ही उलटबाँसी है। उलटबाँसियों में असामान्य प्रतीकों का प्रयोग होता है, जिनका अर्थ खुलने पर ही ये समझी जा सकती हैं।

3.4.3 प्रमुख नाथ कवि

गोरखनाथ ही नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक माने गए हैं। नाथ सम्प्रदाय के अन्य कवियों का भी साहित्य मिलता है, लेकिन उनमें ज्यादातर गोरखनाथ की बातों का ही दुहराव मिलता है। गोरखनाथ के अलावा कुछ अन्य नाथ कवियों के नाम हैं- मत्स्येन्द्रनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचंदनाथ आदि। यहाँ कुछ नाथ कवियों का परिचय दिया जा रहा है-

मत्स्येन्द्रनाथ - मत्स्येन्द्रनाथ को मीननाथ और मछंदरनाथ भी कहा गया है। इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ (शिव) से प्राप्त की थी। कहा जाता है कि शिवजी योग-विद्या का रहस्य पार्वती को सुना रहे थे तो इन्होंने मछली का रूप धारण करके इसे सुन लिया। इसी कारण उनका यह नामकरण हुआ। ये गोरखनाथ के गुरू थे। यह भी कहा जाता है कि चोरी से योग-विद्या का रहस्य जान लेने के कारण शिवजी ने इन्हें मोहपाश में बंध जाने का शाप दिया था, जिससे इनके शिष्य गोरखनाथ ने ही उन्हें मुक्त किया। गोरखनाथ ने श्रद्धा और आस्था से अपने गुरू की भक्ति की थी, इसलिए गुरू ने उन्हें योग के प्रथम अधिकारी और आचार्य माने जाने का आशीर्वाद दिया था। इनकी कविता का उदाहरण है-

यों स्वारथ को जीवड़ो, स्वारथ छाड़ि न जाय।
जब गोरख किरपा करी, म्हारो मनवो समझायो आय।।

जोगी सोई जोगी रे, जुगत रहै उदास।
तात नीरं जण पाइया, यो कहे मत्स्येन्द्रनाथ।।

गोरखनाथ - गोरखनाथ की जन्मतिथि और जन्मस्थान के विषय में विद्धानों की अलग-अलग राय है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 845 ई. माना है और हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इन्हें नवीं सदी का ही मानते हैं। डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ को ग्यारहवीं सदी के मध्य का माना है। डॉ0 रामकुमार वर्मा का भी मानना है कि गोरखनाथ तेरहवीं सदी के मध्य में हुए। इसी प्रकार कुछ विद्वान गोरख को दक्षिण देश का निवासी बताते हैं, कुछ नेपाल का और कुछ पंजाब का। समान्यतः उन्हें कांगड़ा-निवासी माना जाता है, जहाँ पर उनके प्रभाव अब भी मौजूद हैं।

डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार गोरखनाथ का उत्तराखंड से भी संबध रहा है। उन्होंने दक्षिण गढ़वाल के 'घौल्या उढ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में तपस्या कर सिद्दि प्राप्त की थी। इसलिए गढ़वाल के मंत्र-साहित्य पर भी गुरू गोरखनाथ का काफी प्रभाव रहा है। प्राचीन जनश्रुतियों में गोरखनाथ को सर्वशक्तिशाली मानते हुए उनमें देवत्व की स्थापना की गई है। उन्हें गोरखा राज्य का संरक्षक भी माना जाता है। गोरखनाथ ने सिद्धों की पूर्वप्रचलित भोगप्रधान साधना-पद्दति का विरोध कर संयम पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति को प्रतिष्ठित किया था। उस युग के साधु-संतों में भ्रमण या देशाटन की प्रवृत्ति रही थी। गोरखनाथ ने भी पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरप्रदेश, नेपाल, असम, उड़ीसा आदि की यात्रा करके अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने यात्राएँ ही नहीं की, बल्कि विभिन्न मतों के विद्वानों-आचार्यों से शास्त्रार्थ भी किया। उस युग में उत्तर भारत की स्थिति विषम थी।

यह पूरा क्षेत्र राजनीतिक रूप से तो कई टुकड़ों में बँटा ही था, धार्मिक दृष्टि से भी अनेक मत-सम्प्रदायों में विभक्त था। इन मतभेदों के परिदृश्य में गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के माध्यम से धार्मिक एकसूत्रता लाने का प्रयास किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे एक लोकप्रिय धार्मिक नेता हो सके। गोरखनाथ नाथ साहित्य के सर्वप्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने संस्कृत और देशभाषा (हिंदी) दोनों में रचनाएँ कीं । मिश्र बंधुओं के अनुसार गोरखनाथ के नौ संस्कृत ग्रंथ हैं, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अट्ठाईस पुस्तकों का उल्लेख किया है । उनकी कई संस्कृत रचनाएँ आज उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें से कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। गोरख की कुछ संस्कृत रचनाओं के नाम है- 'सिद्ध सिद्वांत पद्वति', 'गोरक्ष संहिता' 'अमरौध-शासनम' 'विवेकमार्तण्ड', 'निंरजन पुराण', 'वैराट पुराण', 'योगचिंतामणि', 'चतुरशीत्यासन',। इनकी देश भाषा की रचनाएँ भी मिलती है। डॉ.पीतांबर दत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ की इन रचनाओं का संकलन और संपादन करके 'गोरखबानी' शीर्षक से प्रकाशित करवाया है। उन्होने निम्नलिखित रचनाओं को प्रामाणिक माना है- 'सबदी', 'पद', 'सिष्या दरसन', 'प्राण संकली', 'नरवै बोध', 'अभैमात्रा जोग', 'आतम बोध', 'पन्द्रह तिथि' 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यानतिलक', 'ग्यान चौंतीसा' एवं 'पंचमात्रा'।

विद्वानों ने गोरख द्वारा रचित बताई जाने वाली कुछ अन्य पुस्तकों को उनके शिष्यों द्वारा रचित बताया है, जैसे कि 'गोरखनाथजी के पद' और 'दत्तगोरख संवाद'। इसके अलावा कुछ रचनाएँ उनकी ही संस्कृत रचनाओं का अनुवाद हैं। उदाहरण के लिए, 'विराट पुराण' को स्वयं गोरख की ही संस्कृत रचना 'वैराट पुराण' का अनुवाद माना जाता है। गोरखनाथ के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने संस्कृत में सिद्वांत-ग्रंथो की रचना करने के साथ-साथ अपने मत के व्यापक प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा को अपनाया। इनकी कविता का उदाहरण है-

यंद्री का लड़बड़ा, जिम्भा का फूहड़ा।

गोरस कहै ते परतसि चूहड़ा।।

काछ का जती मुख का सती।

सो सत पुरूष उतमो कथी।।

बालानाथ:-पंजाब में इनके नाम पर 'बालानाथ का टीला' प्रसिद्ध रहा था। जायसी ने भी उसका उल्लेख किया है। इससे यह पता चलता है कि बालानाथ अपने समय के महत्वपूर्ण योगी रहे होंगे। इनकी कविता का उदाहरण है-

पहलै पहरै सब कोई जागै, दूजै पहरै भोगी।
तीजै पहरै तसकरि जागै, चौथे पहरै जोगी।।

चर्पटनाथ:- ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथ के शिष्य बताए गए हैं। ये राजपूताना के रहने वाले थे। इन्हें संस्कृत ग्रंथ 'चर्पटमंजरी' का लेखक भी बताया जाता है। इनकी कविता का उदाहरण है-

किसका बेटा किसकी बहू,
आप सवारंथ मिलिया सहू।।
जेता पूला तेती आल,

चरपट कहै सब आल जंजाल।।

चौरंगीनाथ:- चौरंगीनाथ 'पूरन भगत' के नाम से भी प्रसिद्ध रहे थे। ये गोरखनाथ के शिष्य थे। इनके विषय में यह किंवदन्ति है कि अपनी विमाता के प्रणय की अवहेलना करने के कारण इनकी आँखें फोड़ दी गईं और हाथ-पैर काटकर कुएँ में डाल दिया गया। बाद में गोरखनाथ ने उन्हें सुंदर शरीर से सम्पन्न (चौरंगी) बनाकर किसी कुँवारी की बटी हुई रस्सी के सहारे कुएँ से बाहर निकाला। इनकी कविता का उदाहरण है-

मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिबा पवन भंडारं।
साधबा तौ पंच तत सधिबा, सेइबा तौ निरंजन निराकारं।।

इन कवियों के अलावा भी कई नाथ कवियों के नाम से रचनाएँ मिलती हैं। भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ राजा होते हुए भी योगी बन गए थे। भर्तृनाथ ही भर्तृहरि या भरथरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। भरथरी और गोपीचंद के नाम से आज भी कई लोकगीत प्रचलित हैं।

1. अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान भरिए

(क) उलटबाँसी में ....का प्रयोग होता है।

(ख) गोरखनाथ के गुरू .... थे।

(ग) नाथ कवियों की भाषा को ....भाषा कहा जाता है।

(2) सत्य/असत्य बताइए

(क) गोरखनाथ को नाथ साहित्य का प्रवर्त्तक माना जाता है।

(ख) नाथ कवियों ने वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को आवश्यक बताया है।

(ग) 'सघुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा है।

(घ) डा. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' नामक ग्रंथ में गोरखनाथ की रचनाओं का संकलन किया है।

(9) बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) नाथ साहित्य में किसकी चर्चा नहीं मिलती है-

(क) नारी साहचर्य (ख) गुरू महिमा

(ग) बाह्याचारों का विरोध (घ) वैराग्य

(ब) नाथ साहित्य में क्या नहीं मिलता है-

(क) साखी (ख) उलटबाँसी

(ग) सबदी (घ) सोहर

(स) गोरखनाथ की रचना नहीं है-

(क) सिद्ध-सिद्धांत पद्धति (ख) बीजक

(ग) सबदी (घ) वैराट पुराण

3.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

आदिकालीन नाथ साहित्य का प्रभाव बाद के भक्तिकालीन संत साहित्य पर देखा जा सकता है। नाथ साहित्य ने परवर्ती ज्ञानमार्गी संतकाव्य को विषयतत्त्व के साथ-साथ काव्यशिल्प या काव्यपद्वति की दृष्टि से भी प्रभावित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-‘‘ यदि कबीर आदि निर्गुणमतवादी संतो की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह संपूर्णतः भारतीय है और बौद्व धर्म के अंतिम सिद्वों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबध है। वे ही पद, वे ही राग-रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं, जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती संतों ने की थीं। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द, सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं।’’

नाथ सम्प्रदाय के हठयोग पर निश्चय ही कबीर की आस्था दिखती है। उनके काव्य में नाथपंथियों की अंतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, नाद, बिंदु, कुंडलिनी, षटचक्रभेदन आदि का वर्णन मिलता है। उन्होंने इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि के जरिए ‘अनहद’ नाद सुनने की रीति बताई है। इसके अलावा उन्होंने उलटबाँसियों का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में डॉ0 पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने लिखा है-‘‘हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-धारा की दो शाखाओं के दर्शन कराए हैं- एक निर्गुण शाखा और दूसरी सगुण शाखा। निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है। भक्ति-धारा का जल पहले योग के घाट पर बहा था।’’ नाथ सम्प्रदाय में माया की अवहेलना की गई है जो आगे चलकर संतों के यहाँ भी चेतावनी के रूप में आती है। कबीर की कविता में यत्र-तत्र नारी की निंदा मिलती है। इसे भी नाथों के इन्द्रिय-निग्रह और निवृत्तिमूलक दर्शन के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन संतकाव्य में धार्मिक रूढ़ियों और बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर जो बल दिया गया है उसे आदिकालीन सिद्ध नाथ कवियों के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रभाव को काव्य पद्धति की दृष्टि से भी लक्ष्य किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, दोहा छंद में यदि सिद्धों की रहस्यवादी भावनाएं व्यक्त हुई थीं तो गोरखनाथ जैसे अलख जगाने वाले नाथ योगियों की बानियाँ भी कही गई। वास्तव में, नाथपंथियों और कबीर पंथियों के ‘धर्म निरूपणपरक’ दोहे ही ‘साखी’ कहे जाते हैं। ‘साखी’ नाथपंथ के साहित्य में मिलती है और भक्तिकालीन संतो के साहित्य में भी। ‘साखी’ का अर्थ है- साक्षी देना, अर्थात् पूर्ववर्ती साधकों या गुरूओं द्वारा बताए गए सत्य का स्वयं अनुभव कर उसकी गवाही देना। धीरे-धीरे गुरू के वचनों को ‘साखी’ कहा जाने लगा होगा। गुरू के ऐसे वचन या उपदेश जनप्रचलित दोहा छंद में बद्ध थे।

इसलिए कुछ दिनों बाद 'दोहा' और 'साखी' समानार्थक शब्द मान लिए गए होंगे। कबीर-साहित्य में तो दोहे का अर्थ ही साखी हो जाता है। इसके अलावा अन्य निर्गुण संतो के सम्प्रदाय में भी इस काव्यरूप का प्रचलन मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है- ''कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले, उसी प्रकार 'साखी' और 'बानी' के लिए बहुत कुछ सामग्री और 'सधुक्कडी' भाषा भी"। सिद्दों और नाथों में 'शब्द' काव्यरूप भी प्रचलित था। 'शब्द' गेय पदों को कहा जाता है जो किसी-न-किसी राग में निर्दिष्ट होते हैं। भक्तिकालीन संतों ने भी इस पूर्व प्रचलित काव्यरूप को अपनाया। 'गोरखबानी' में उद्धृत ऐसे पदों को 'सबदी' कहा गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है-''जान पड़ता है, बीजक का 'शब्द' नाथपंथी योगियों का है और कबीरपंथ में वह सीधे वहीं से आया है।"

भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों के कई शब्द, पद, दोहे और उलटबाँसियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया था। हालाँकि उनमें कहीं-कहीं थोड़ा बहुत परिवर्तन भी दिखता है। उदाहरण के तौर पर नाथ योगियों के पद और भक्तिकालीन संत दादू के पद में समानता देखी जा सकती है . नाथयोगियों का पद-

उठ्या सारन् बैठ्या सारन् सारन् जागत सूता ।

तिन भुवनें बिछाइना जाल कोइ जाबि रे पूता।।

दादू का पद-

उठ्या सारं बैठ विचारं संभारं जागता सूता।

तीन लोक तत जाल विडारन कहाँ जाइगा पूता।।

इसी प्रकार गोरखनाथ की एक उलटबाँसी है- 'नाथ बोलै अमृत बाणी। बरिसैगी कंबली भीजैगा पाणी। 'यह रोचक है कि कबीरदास के नाम पर यही उलटबाँसी इस प्रकार मिलती है- 'बरसै कंबल भीजै पानी।' इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं। हालाँकि यह सही है कि कबीर आदि भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किए हैं, लेकिन उनकी साधना का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। इसलिए भक्तिकालीन संतकाव्य में उपस्थित भक्ति का रस सिद्धों-नाथों की कविता में नहीं मिलता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की मान्यताओं और साधना पद्धति में संशोधन करके नाथपंथी योगियों ने भक्तिकालीन संतों के लिए विचारधारात्मक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। नाथ सम्प्रदाय को वास्तव में सिद्धों और संतों के बीच की कड़ी माना जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा की राय में -''संत साहित्य का आदि इन्हीं सिद्धों को, मध्य नाथपंथियों को और पूर्ण विकास कबीर से प्रारंभ होने वाली संत-परम्परा में नानक, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास आदि को मानना चाहिए।"

3. अभ्यास प्रश्न

(1) भक्तिकालीन संतकाव्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव के विषय में क्या असत्य है-

(क) माया की अवहेलना

(ख) अंतस्साधनात्मक रहस्यवाद

(ग) उलटबाँसियो का प्रयोग

(घ) भक्ति का तत्त्व

3.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की भोगप्रधान तांत्रिक साधना पद्धति तथा मान्यताओं में संशोधन करके गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम तथा सदाचार पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति का प्रसार-प्रचार किया। आदिकालीन नाथ साहित्य में नाथ सम्प्रदाय की इस साधना पद्धति के निरूपण के साथ-साथ बाह्याचार तथा रूढ़ियों का खंडन भी किया गया है। नाथ साहित्य ने परवर्ती भक्तिकालीन संत साहित्य को विषयवस्तु तथा शैली, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप और महत्त्व से परिचित हो चुके हैं।

3.7 शब्दावली

हठयोग- 'सिद्ध-सिद्धांत पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। सूर्य और चंद्र क्रमशः दक्षिण और वाम स्वर के प्रतीक हैं। हठयोग में देह स्थित 'ह' अर्थात् ज्ञान, प्रकाश और शक्ति के वाचक सूर्य तथा 'ठ' अर्थात् आनंद, रस तथा शीतलता के वाचक चंद्र की संयुक्त साधना की जाती है। इस साधना का स्वरूप आंतरिक होता है।

अंतस्साधना- हृदय और मन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की आंतरिक साधना पद्धति।

इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना- मेरूदंड में प्राण-वायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं। इनमें योग की दृष्टि से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना महत्त्वपूर्ण हैं। इड़ा नाड़ी बाईं ओर तथा पिंगला नाड़ी दाहिनीं ओर स्थित होती है। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इसलिए योग साधना में सुषुम्ना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाड़ी मानी जाती है। इड़ा के लिए चंद्र, गंगा आदि प्रतीकों का; पिंगला के लिए सूर्य, यमुना आदि प्रतीकों का तथा सुषुम्ना के लिए अवधूती, सरस्वती, बंकनालि आदि प्रतीकों का भी प्रयोग किया जाता है।

षट्चक्र-भेदन- कुंडलिनी द्वारा मेरूदंड के मूल से लेकर त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) तक क्रमशः स्थित छह चक्रों- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामक चक्र - का भेदन करना। इसके बाद कुंडलिनी शून्य चक्र स्थित ब्रह्मरंध्र मे पहुँच जाती है।

अनाहत नाद- अखिल ब्रह्मांड में अखंड भाव से व्याप्त नाद।

नाद- योगी की देह में स्थित कुंडलिनी जब सक्रिय होकर ऊर्ध्वगमन करती हुई शीर्षस्थ चक्र में पहुँचती है तो उससे स्फोट होता है, जिसे नाद कहते हैं।

बिंदु - नाद से जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे बिंदु कहते हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नाथ सम्प्रदाय

1 (क) नौ (ख) गोरखनाथ (ग) कनफटा

2 (क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

3 (घ) गोरखनाथ (घ) गोरखनाथ (ख) उपवास

2 आदिकालीन नाथ साहित्य

1 (क) असामान्य प्रतीकों (ख) मत्स्येन्द्रनाथ (ग) सघुक्कड़ी

2 (क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य

(घ) सत्य

3 (क) नारी साहचर्य (घ) सोहर (ख) बीजक

परवर्ती हिंदी साहित्य पर प्रभाव

1 (घ) भक्ति का तत्त्व

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,2002

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सम्वत्,2058 वि0

4. डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, (सं0) डॉ0 गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली,1995

5. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ल, 2006

6. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,2010

3.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली,1995

2. हिन्दी काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद,1945

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने में गोरखनाथ की भूमिका पर प्रकाश डालें।
2. आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं का परिचय दें।
3. परवर्ती हिन्दी साहित्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट करें।

इकाई 4आदिकालीन सिद्ध साहित्यः परिचय एवं स्वरुप

इकाई का स्वरूप

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठगत विशेषताएँ
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इसके पहले की इकाई में आपने सिद्धो की परम्परा और मान्यताओं के विषय में जाना। इसके अलावा आप आदिकालीन सिद्ध साहित्य और प्रमुख सिद्ध कवियों से परिचित हो चुके है। प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन सिद्ध साहित्य की पाठगत विशेषताओ से आपका परिचय कराया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सिद्ध साहित्य में व्यक्त विचारों को जान सकेंगें और परवर्ती हिंदी साहित्य की प्रवृतियों से इसके संबंध की पहचान कर सकेंगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आदिकालीन सिद्ध कवियों की कविता में उपस्थित सैद्धांतिक मान्यताओं और रुढि-विरोधी विचारो से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन सिद्ध कवियो की रचनाओ की भाषा एवं शिल्प संबंधी विशेषताओ को जान सकेंगे।

4.3 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठगत विशेषताएँ

जैसा कि आप जानते हैं कि सिद्धों की संख्या 84 मानी गयी है। इन 84 सिद्धों में भी सरहपा, कण्हण्पा, लुइपा, डोम्बिपा आदि की रचनाएँ ही साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इससे पहले की इकाई में आप यह पढ़ चुके हैं कि आदिकालीन सिद्ध साहित्य में रहस्यवाद संबंधी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ वाह्याचारों, कर्मकांडों, पाखण्डों तथा धार्मिक रूढ़ियों का विरोध भी किया गया है एवं उन्होंने सहज जीवन पर बल दिया है। सिद्ध साहित्य में तत्कालीन समाज में धर्म के नाम पर प्रचलित वाह्याडम्बरों, कर्मकाण्डो आदि का विरोध मिलता है। वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर ऊंच-नीच तथा छुआ-छूत का भी उन्होंने विरोध किया और जीवन में निवृति के स्थान पर प्रवृति के महत्व का प्रतिपादन किया। सहज जीवन जीते हुये महासुख को प्राप्त करना उनकी साधना का लक्ष्य था, यद्यपि स्वयं सिद्ध साहित्य की शब्दावली में षटचक्र, नाड़ीविधान, शून्य गगन, सुरति-निरति जैसे रहस्यवादी प्रतीक भी मिलते हैं । साहित्यिक प्रवृतियों,भाषागत विशेषताओ तथा काव्य रुप की दृष्टि से सिद्ध साहित्य महत्वपूर्ण है। क्योंकि भक्तिकालीन निर्गुण संतो की अनेक काव्य प्रवृतियों की आधारभूमि सिद्ध साहित्य प्रदान करता है । इस प्रकार सिद्ध कवियो की रचनाओं को सैद्धांतिक और गैर-सैंद्धांतिक कोटियो में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जा सकता है।

सिद्धों का साहित्य दोहो और चौपाइयों के रुप में उपलब्ध होता है। दोहो में सिद्धो ने महासुख का वर्णन , वर्णाश्रम व्यवस्था आदि का विरोध किया और अपनी साधनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त किया। वहीं चर्यापद वे गीत होते थे जो सामान्यतः अनुष्ठानों के समय गाये जाते थे। चर्यापद संध्याभाषा के कूटपदो में लिखी गयी है और उनमें भी सिद्धों की रहस्यात्मक अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। भाषा की दृष्टि से भी दोहों और चर्यागीतों की भाषा में पर्याप्त भेद दिखता है। दोहों की रचना परिनिष्ठित अपभ्रंश में हुई है जबकि चर्यापदों की अवहट्ठ में या कहें कि चर्यापदों में

अपभ्रंश भाषा का वह रुप मिलता है जो देशभाषा मिश्रित है अर्थात हिन्दी की तरफ विकसित होती हुई अपभ्रंश। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि यही भेद आगे चलकर कबीर की 'साखी' और 'रमैनी' (गीत) की भाषा में मिलता है। साखी की भाषा तो खड़ी बोली राजस्थानी मिश्रित सामान्य 'सधुक्कड़ी' है पर रमैनी के पदो की भाषा में काब्य की भाषा ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली है। इस इकाई के अगले दो खण्डो में आपका परिचय आदिकालीन सिद्धसाहित्य के सैद्धांतिक और गैर-सैद्धांतिक पाठो से करवाया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न -

(1) सिद्ध कवियों ने किस पर बल नहीं दिया है-

(क) काया तीर्थ (ख) सहज जीवन (ग) पाखंड खण्डन (घ) ब्रह्मचर्य

4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि आदिकालीन सिद्ध साहित्य में वर्णाश्रम व्यवस्था का खंडन वाह्याचारो तथा धर्मकांडो का विरोध,सहज जीवन और प्रवृति मार्ग का प्रतिपादन तथा महासुख आदि का वर्णन किया गया है। सिद्ध कवियो के दोहो और चर्यागीतो में प्रयुक्त भाषा में अंतर है। इस इकाई को पढने के बाद आप आदिकालीन सिद्ध साहित्य की विषयवस्तु और भाषा के स्वरुप को परिचित हो सकेंगे।

4.7 शब्दावली

लवणों	-	नमक
तरुफल	-	वृक्ष पर लगे फल
कूव	-	कुँआ
नावड़ि	-	नाव
सुरसरि	-	गंगा
रअणी	-	रात

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

आदिकालीन सिद्ध साहित्य की पाठगत विशेषतायें।

(1) (घ) ब्रह्मचर्य

आदिकालीन सिद्ध साहित्यय सैद्धान्तिक पाठ।

(1) (ग) सरहपा

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) हिन्द काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1945

(2) हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, डॉ.नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971।

4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) दोहा एवं चर्या गीतों में क्या अन्तर है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

(2) आदिकालीन सिद्ध साहित्य की विषयगत तथा भाषागत विशेषताओं का उदाहरण सहित परिचय दें?

इकाई 5 आदिकालीन जैन साहित्य: परिचय एव स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्धेश्य
5.3 आदिकालीन जैन साहित्य
5.3.1 प्रबंधात्मक साहित्य
5.3.2 मुक्तक साहित्य
5.4 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
5.4.1 काव्यवस्तु संबंधी प्रभाव
5.4.2 काव्यरूप संबंधी प्रभाव
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से सम्बन्धित यह इकाई जैन काव्य साहित्य से सम्बंधित है। इसके पूर्व की इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्ध और नाथ साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। सिद्ध-नाथ साहित्य के समान आदिकालीन जैन साहित्य भी आदिकालीन हिन्दी साहित्य का महत्त्व पूर्ण अंग है।

प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन जैन साहित्य की विशेषतओं का परिचय देते हुए परवर्ती हिन्दी साहित्य पर इसके प्रभाव को स्पष्ट किया गया है।

5.2 उद्देश्य

आदिकालीन जैन साहित्य अपभ्रंश भाषा में रचा गया है। पुष्पदंत, स्वयंभू जैसे महाकवियों ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम अपभ्रंश को बनाया। स्थानभेद की विशेषताओं के आधार पर अपभ्रंश के दो रूप किए गए हैं-पूर्वी अपभ्रंश और पश्चिमी अपभ्रंश । जैन कवियों की रचनाएँ पश्चिमी अपभ्रंश का उदाहरण है। आदिकालीन जैन साहित्य का अधिकांश देश के पश्चिमी भागों- गुजरात, राजस्थान आदि- से प्राप्त हुआ है। जैन साहित्य की प्रामाणिकता और महत्व पर प्रकाश डालते हुए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- दसवीं शताब्दी से पहले की जो रचनाएँ निस्संदिग्ध रूप से 'हिन्दी रचनाएँ मानी जाती है, उनमें प्रायः सबकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। और यदि किसी प्रकार उनके मूल रूप का पता लग भी जाए तो भी वे मध्यप्रदेश के किनारे पर पड़े हुए प्रदेशों की रचनाएँ हैं। परन्तु इन जैन आचार्यों और कवियों की रचनाएँ निसंदेह मूल रूप में और प्रमाणिक रूप में सुरक्षित हैं। उनके अध्ययन से तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति पर जो भी प्रकाश पड़ता है वह वास्तविक और विश्वसनीय है।'' जैन साहित्य में प्रबन्धात्मक ओर मुक्तक काव्यधाराएँ मिलती है। प्रबन्धकार कवियों में स्वयंभू, पुष्पदन्त, हरिभद्रसूरि, विनयचन्द्र सूरि, कनकामर मुनि, धनपाल आदि प्रमुख हैं। मुक्तक काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं- जाइन्दू, रामसिंह और देवसेन। जैन प्रबन्धात्मक काव्यों की तीन काटियॉं हैं - पुराणकाव्य, चरित्रकाव्य और कथाकाव्यं

पुराण काव्य - ब्राह्मणों ने जिस प्रकार पुराणों की रचना की उसी प्रकार जैनों का भी अपना पुराण साहित्य है। सामान्य तौर पर दिगंबर जैनों के धार्मिक साहित्य का चार भागों में बांटा जाता है-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और दुव्यानुयोग। प्रथमानुयोग में तीर्थकारों के चरित्र का वर्णन किया जाता है। यही महापुराण है। महापुराण या पुराण साहित्य में जैन तीर्थकारों, बलदेव, वासुदेवों, प्रतिवासुदेवों आदि तिरेसठ महापुरूषों की जीवनगाथाओं को लेकर विशाल साहित्य सृजन हुआ है।जैन साहित्य में पुष्पदन्त कवि का महापुराण अथवा ति-सठि महापुराण काव्य का उदाहरण है, जिसमें 24 तीर्थकारों, 12 चक्रवतियों, 9 बलदेवों, 9 नारायणों और 9 प्रतिनारायणों का जीवनचरित्र काव्यात्मक ढंग से वर्णित है। 'महापुराण' दो भागों में विभाजित है- आदिपुराण और उत्तर पुराण में राम और कृष्ण की कथा भी वर्णित है जो हिन्दी साहित्य में रामकाव्य, और कृष्णकाव्य की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण है।

चरितकाव्य-पौराणिक चरित्रों के अतिरिक्त आदिकालीन जैन साहित्य में कुछ ऐसे चरित्र काव्य हैं जसे जैन परम्परा के लोकप्रिय चरित्रों को आधार बनाकर लिखे गए हैं। पुष्पदन्त का 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) और 'जसहर चरिए' तथा कनकामर मुनि का 'करकडु चरिउ' जैन परम्परा में लिखे गए इसी प्रकार के चरितकाव्य हैं।

कथाकाव्य - पुराण और चरित काव्यों में जहाँ पौराणिक चरित्रों और जनश्रुतियों में प्रसिद्ध राजकुमारों के चरित्रों का काव्यात्मक वर्णन हुआ है वहीं कथाकाव्य में कथा कवि की कल्पना से जन्मी है या फिर किसी लोककथा को आधार बनाकर कवि ने अपनी कल्पना को परवान चढ़ाया है। ऐसे कथाकाव्यों का चरितनायक कोई सामान्य वणिक-

पुत्र होता है। उदाहरण के तौर पर धनपाल द्वारा रचित 'भविस्सत कहा' (भविष्यस्त कथा) में वणिक-पुत्र भविष्यस्त की कथा कही गई है।प्रबन्धात्मक श्रेणी की उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त जैन मतावलम्बी कवियों की मुक्तक रचनाएँ भी मिलती है। इनमें जोइन्दु कवि की ' परम्म पयासु' (परमात्म प्रकाश) और योगसार और मुनिरा सिंह की 'पाहुड़ दोहा' महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में सामान्य ढंग से रूढ़ियों का खंडन, रहस्यवाद और नीति एवं आचार विषयक शिक्षा दी गई है। आदिकालीन जैर साहित्य की विपुल सामग्री आज उपलब्ध है। अगले दो उपखंडों में आप प्रमुख जैन कवियों की प्रबन्धात्मक एवं मुक्तक रचनाओं की विशेषताओं से परिचित होंगे।

अभ्यास प्रश्नः-

1- सत्य असत्य बताएं

क- आदिकालीन जैन साहित्य अधिकांशतः पश्चिमी अपभ्रंश में रचित हैं।

ख- जैन साहित्य प्रामाणिक रूप में उपलब्ध नहीं होता ।

ग- आदिकालीन जैन कवियों ने मुक्तक काव्य रूप नहीं अपनाया।

5.3 आदिकालीन जैन साहित्य

5.3.1 प्रबन्धात्मक साहित्य-

पुराण काव्य - जैन कवियों ने पौराणिक कथानकों को लेकर काफी मात्रा में रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं में यद्यपि पौराणिक परम्परा के जैन तीर्थकारों के अतिरिक्त राम-कृष्ण आदि नायकों को लेकर भी प्रबन्ध रचनाएँ हुई हैं। किन्तु राम, कृष्ण आदि की कथाओं को जैन मत के अनुसार रूपांतरित करने का प्रयत्न भी जैन कवियों ने किया है। इन रचनाओं में धर्म, उपदेश और साहित्यिकता का समावेश मिलता है। प्रबंधात्मक जैन साहित्य के पुराण काव्य की विशेषतओं से परिचित होने के लिए स्वयंभू और पुष्पदन्त के काव्य का प्रतिनिधिक उदाहरण लिया जा सकता है।

स्वयंभू का काव्य - स्वयंभू को अपभ्रंश का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इन्हें 'अपभ्रंश का वाल्मीकि' कहा गया है। इनका समय आठवीं शताब्दी है। स्वयंभू मूलतः उत्तर के निवासी थे, परन्तु बाद में वे अपने संरक्षक रथडा धनंजय के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट राज्य में चले गए। स्वयंभू द्वारा रचित चार ग्रन्थ बताए जाते हैं- 'पउम चरिउ' (पद्मचरित अथवा रामचरित),'रिठ्ठनेमिचरिउ' (अरिष्टनेमि चरित या हरिवंशपुराण), ' पंचमिचरिउ' (नागकुमार चरित) और 'स्वयंभू छन्द'. स्वयंभू की ख्याति का आधार उनका 'परउमचरिउ' अथवा 'रामचरित' नामक काव्यग्रन्थ है। पॉच कांडों और तिरासी संधियों में विभक्त यह रचना अपभ्रंश का आदिकाव्य मानी जाती है। अपने इस महाकाव्य के आरम्भ में स्वयंभू ने पंडितों से निवेदन करते हुए लिखा है-' मेरे समान कुकवि कोई दूसरा न होगा, न तो मैं , कुछ व्याकरण जानता हूँ और न वृत्तिकासूत्र की व्याख्या ही कर सकता हूँ, न मैंने पाँचों महाकव्यों को सुना है न पिंगल प्रस्तार आदि छन्द लक्षण ही जानात हूँ। भामह, दन्डी आदि के अलंकारशास्त्र से भी मैं परिचित नहीं हूँ फिर भी मैं काव्यरचना का व्यवसाय छोड़ने में असमर्थ हूँ।' स्वयंभू का यह कथन उनकी विनम्रता का प्रदर्शन है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मैं 'गामेल्ल भास' अर्थात् जनता की भाषा में जनता के लिए काव्य का निर्माण कर रहा हूँ। स्वयंभू के राम तुलसी के राम की तरह परब्रह्म के अवतार नहीं हैं, अपनी सम्पूर्ण मानवीय दुर्बलताओं के साथ मानवीय शक्ति के प्रतिनिधि हैं। स्वयंभू ने राम को एक सामान्य मनुष्य के रूप में चित्रित किया है जो आपदाओं के विरूद्ध लड़ते हुए पौरूष के प्रतिमा है तो दसूरी ओर लक्ष्मण को शक्ति लगने पर एक साधारण मनुष्य की तरह रोते-बिलखते भी हैं। वे

कर्मयोद्धा हैं। अपनी पत्नी को वापस पाने के लिए वे समुद्र पार करके रावण से युद्ध करते हैं और जब अपनी पत्नी को रावण के चंगुल से छुडा़ने में सफल हो जाते हैं तो एक सामन्य पुरूष की भांति उसके चरित्र पर शक करते हैं, उसकी अग्निपरीक्षा लेते हैं।बड़े कवि को प्रबन्धकाव्य में मार्मिक प्रसंगों का ज्ञान होना चाहिए। इन मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में उसका मन रमना चाहिए। स्वयंभू अपभ्रंश के बड़े कवि हैं। 'पउमचरिउ' के मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में वे रमते हैं। अपने वाक्कौशल एवं कल्पना-कौशल के द्वारा उन्होंने कई मार्मिक प्रसंगों का अद्भुत संवेदनशील चित्रण किया है। नारी के प्रति पुरूष के दृष्टिकोण को राम के चरित्र के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए स्वयंभू लिखते हैं-

''पुक्क-विमाणे चडिए अणुराएं परिमिय विज्जाहर- संधाएं

कोशल-ण्यरि पराइय जावहिं दिणमणि गउ अत्थ वण होतावटिं

जत्थ हो पियगमेण णिरवासिम। ''

अर्थात्- सीता पुष्पक विमान पर चढ़कर बड़े अनुराग से अयोध्या आती है, विद्वानों का समूह उन्हें घेरे हुए है। लकिन सीता को कोशल नगरी पराई लगने लगती है क्योंकि सूर्यास्त के बाद भी उन्हें महल में जगह नहीं दी जाती है पति महल में है और पत्नी उपवन में रात गुजार रही है। नारी के प्रति पुरूष का दृष्टिकोण निम्न पंक्तियों में और अधिक उभरता है- 'कंतहि तणिय कंति पेक्खेप्पिणु

पभणइ पोम जाहु विहसेप्पिणु

जइ कि कुलग्गयाउ णिरवज्जहु

महिलउ होंति असुद्ध णिलज्जउ।'

राम और सीता एक-दूसरे को देखते हैं। दोनों की ऑखों में मिलन की आकांक्षा दिखती है, पर राम व्यंग्य से मुस्कराते हुए धिक्कार भरे स्वर में कहते हैं- नारी अशुद्ध होती है, निर्लज्ज होती है और मलिनमति होती है। वह त्रिभुवन में अपने कुल को अशुद्ध कर अपयश फैलाती है।जैसा कि बताया जा चुका है, स्वयंभू के राम और सीता परब्रह्त या शिव-शक्ति के अवतार नहीं हैं। वे साधारण स्त्री-पुरूष के रूप में चित्रित हुए हैं। हालांकि स्वयंभू की सीता पुरूष का अनुकरण करने वाली सीधी-सादी स्त्री के रूप में नहीं आती, बल्कि वह पुरूष के आचारण एवं नैतिकता पर प्रश्न उठाने वाली तेजस्वी नारी के रूप में चित्रित हुई है. राम की मलिन वाणी सुनकर भी सीता भयभीत नहीं होतीं वह कहती हैं कि पुरूष गुणवान होकर भी विहीन होते हैं, वे मरती हुई स्त्री का भी विश्वास नहीं करते। वे उस रत्नाकर की तरह होते हैं जो क्षर देकर भी नदियों से नहीं विरमता। स्त्री-पुरूष के अन्तर को उदाहरण द्वारा समभाती हुई सीता कहती है कि दोनों में अन्तर इतना ही है कि मरने पर भी लता तरूवर को नहीं छोडती। स्त्री-हृदय की पीडा़ की अभिव्यक्ति इससे बढ़कर और क्या होगी, जब सीता कहती है कि इस दोष से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि कुछ ऐसा किया जाय जिससे स्त्री योनि में फिर से जन्म न लेना पड़े -

'एमहि तिह करोमि पुणु रहुवइ

जिह ण होमि पडि वार तिय भई।'

स्वयंभू ऐसे संवेदनशील कवि थे जो विभिन्न परिस्थितियों के मध्य पड़े मनुष्य के भावों, विचारों और किकारों की सच्ची परख रखते थे। स्वयंभू के रामकाव्य में आहत लक्ष्मण के लिए राम का विलाप और मृत रावण के लिए

विभीषण का विलाप जैसे कई प्रसंग है जहाँ उनकी लेखनी पाठक को भाव-मग्न कर देती है।'रिठ्ठनेमिचरउि' या 'हरिवंशपुराण' में स्वयंभू ने जैन परम्परा के बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि और कृष्ण की कथा का वर्णन किया है।

पुष्पदन्त का काव्य - पुष्पदन्त अपभ्रंश के दूसरे बड़े कवि हैं। इनका समय दसवीं शताब्दी का है। ये ब्राहमण थे और रौव मतानुयायी थे। बाद में इन्होंने जैन धर्म की दीक्षा ली। इनका अधिकांश समय राष्ट्रकूट राज्य की राजधानी मान्यरवेत में व्यतीत हुआ था। पुष्पदन्त स्वभाव से अक्खड़, स्वाभिमानी और स्पष्टवादी थे। उन्होंने बड़े गर्व से स्वयं को 'अभिमान मेरू' कहा है। पुष्पदन्त की रचनाओं में 'महापुराण' तथा 'णायकुमार चरिउ' महत्त्वपूर्ण हैं। वैसे पुष्पदन्त की ख्याति का आधार 'महापुराण' ही है। इसमें उन्होंने रामकथा, कृष्णकथा और जैन तीर्थकारों की जीवनगाथाओं का वर्णन किया है। कट्टर जैन धर्मावलम्बी होने के कारण उन्होंने जैन तीर्थकारों को राम-कृष्ण से अधिक महत्त्व दिया है।

पुष्पदन्त की रामकथा ब्राहमण परम्परा के विरूद्ध जैन परम्परा की रामकथा को स्थापित करने का प्रयास है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है- ''वाल्मीकि और व्यास के वचनों ने सबको प्रवंचित किया है........... इन्हीं भ्रमों के दूर करने के लिए गौतम राम की कथा कहते हैं। .... श्रेणिक गौतम के समान ये शंकाएं रखते हैं कि दशमुख दस मुखों के साथ कैसे पैदा हुआ? वह राक्षस था या मानुष? क्या सचमुख उसके बीस हाथ और बीस आँखें थी?..........क्या विभीषण आज भी जीवित है? क्या कुंभकर्ण छह महीने की घोर निद्रा में सोता था? इन्हीं शंकाओं के निवारण के लिए पुष्पदन्त ने अपनी रामकथा रची है। स्वाभाविक है कि उनकी रामकथा में अतार्किक और अलौकिक बातों से बचने का प्रयास हुआ है।पुष्पदन्त की रामकथा तथ्यात्मक रूप से भी वाल्मीकि और तुलसी की परम्परा से भिन्न है। पुष्पदन्त की रामकथा में राम कौशल्या के नहीं, सुबला के पुत्र हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण सुमित्रा के नहीं, कैकेयी के पुत्र हैं। सीता के अतिरिक्त राम की सात पत्नियॉ और थीं। सीता जनक की पुत्री नहीं, बल्कि रावण की पुत्री थी। वानरादि वास्तव में वानर नहीं, बल्कि विद्याधर थे। हनुमान रूद्र के नहीं, कामदेव के अवतार थे, आदि-आदि. हालांकि पुष्पदन्त ने राम की कथा में अलौकिक प्रसंगों से बचने का प्रयास किया है, लेकिन उनमें स्वयंभू के समान मार्मिक प्रसंगों में रमने की प्रवृत्ति नहीं मिलती। रामकथा में उनका कवित्व उतना नहीं उभरता जितना कृष्णकथा में। 'महापुराण' के उत्तरार्ध में ही उन्होंने कृष्णकथा भी कही है। कृष्ण की बाल-लीला के वर्णन में उन्हें सफलता मिलती है। उदाहरण के तौर पर-

'धूलि धूसरेण वर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा

कीला रस वसेण गोवालय-गोवी हियय हारिणा

रंगतेण रमत रमंते

मंथउ धरिउ भमंत अणंते।'

अर्थात् - धूल से सना वह कृष्ण ब्रज की गोपियों के हृदय को हरने वाला है। वही क्रीडा़ करता है, गोपियाँ उसकी क्रीडाएं देखकर मुग्ध होती हैं। वह आंगन में दौड़ता फिरता कमी मथानी उठाता है, कभी दही की हांडी तोड़ देता है। स्वयंभू काव्यरचना के क्रम में अपने धार्मिक आग्रहों की बीच में आने नहीं देते। उनमें धार्मिक उदाहरण मिलती है, जबकि पुष्पदन्त में जैन धर्म के प्रति पूर्वाग्रह दिखता है। अपने 'महापुराण' में उन्होंने रामकथा और कृष्णकाव्य की अपेक्षा ऋषभदेव की कथा को अधिक विस्तार दिया है। इन सबके बावजूद पुष्पदन्त की काव्यप्रतिभा उन्हें अपभ्रंश का दूसरा बडा़ कवि बनाती है। डा.नामवर सिंह के शब्दों में '' स्वयंभू और पुष्पदन्त दानों ही कवि अपभ्रंश साहित्य के सिरमौर हैं। यदि स्वयंभू में भावों का सहज सौंदर्य है तो पुष्पदन्त में बंकिम भंगिमा है। स्वयंभू की भाषा में प्रच्छन्न

प्रवाह है तो पुष्पदन्त की भाषा में अर्थगौरव की अलंकृत भांकी। एक सादगी का अवतार है तो दूसरा अलंकरण का उदाहरण।''जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि आदिकालीन जैन कवियों का प्रबंन्धात्मक साहित्य तीन प्रकार का है- पुराण काव्य, चरित्रकाव्य और कथाकाव्य। आपने पुराणकाव्य की विशेषताओं को जाना। अब हम चरित्रकाव्य और कथा-काव्य पर विचार करेंगे ।

चरितकाव्य - जैन कवियों ने लोकप्रसिद्ध चरित्रों को केंन्द्र में रखकर कई काव्यों की रचना की । नेमिनाथ, यशोधर, करकंहु आदि कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्ति है जिनके चरित्र को आधार बनाकर जैन कवियों ने चरितकाव्यों की रचना की है। नेमिनाथ को लेकर हरिभद्र सूरि (11139 ई.) की लिखी - नेमिनाथ चरिउ' और विनयचन्द्र सूरि (1200ई.) की लिखी 'नेमिनाथ चरिपई' ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'नेमिनाथ चरिउ'में बारहमासा वर्णन मिलता है। आगे चलकर हिन्दी में बारहमासा वर्णन अधिक प्रचलित हुआ।

जैन चरितकाव्यों में पुष्पदन्त का 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) और ' जसहर चरिउ' (यशोधर चरित) तथा कनकामर मुनि का ' करकंडु चरिउ' अधिक महत्त्व पूर्ण है।नागकुमार चरित पुष्पदन्त की दसरी रचना है। यह नौ संधियों का छोटा-सा प्रंबधकाव्य है। इसकी रचना श्रुत पंचमी के माहात्म्य को दर्शाने के लिए की गई है। इस रचना में राजकुमार नागकुमार के जन्म, विवाहों, सौतेले भाई से संघर्ष और वीरता का वर्णन मिलता है।'जसहर चरिउ' चार संधियों का छोटा प्रबंधकाव्य है। इसमें कापालिक मत के ऊपर जैन धर्म की विजय की कहानी प्रभावपूर्ण ढंग से कहीं गई है।करकंडु के जीवनचरित पर कनकामर मुनि (10613ई.) का 'करकंडु चरिउ' प्राप्त होता है। जैन पररम्परा के अनुसार करकुडु ईसा से लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व हुए थे और इनका बडा सम्मान था। दस संधियों के इस प्रबन्धकाव्य में तीन-चौथाई में थरकुंड का जीवनचरित्र एव महत्त्वपूर्ण घटनायें वर्णित हैं शेष में अन्य कथाएं कहीं गई है। इन कथाओं का उद्धेश्य जैन धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना करना है।

कथाकाव्य - कथाकाव्य वह काव्य है जहॉ मुख्य चरित्र या तो पूर्णतः कविकल्पना की उपज होता है या फिर वही लोक कथाओं का कोई पात्र होता है। इस दृष्टि से आदिकालीन जैन साहित्य में कवि धनपाल (10वीं सदी) द्वारा रचित ' भविस्सत कहा' (भविष्यदत्त कथा) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।'भविस्सत कहा' बाइस संधियों का प्रबंधकाव्य है जो एक लोकप्रचलित कथा पर आधारित है। इसमें वणिक- पुत्र भविष्यदत्त की करूण गाथा है जो अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के द्वारा कई बार धोखे का शिकार होता है और अन्त में जिन महिमा के कारण सुख पाता है।आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों में विभिन्न रसों की अवतारण की गई है। डा.नामवर सिंह ने इन काव्यों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है- '' इतने संधि, कुलक, चउपई, आराधाना, रास, चॉचर, फाग, स्तुति, स्तोत्र, कथा, चरित, पुराण आदि प्रकार के काव्यों में मानव जीवन और जगत की अनेक भावनाओं और विचरों की वाणी मिली है। -- यदि एक ओर धार्मिक आदर्शो का व्याख्यान है तो दूसरी ओर लोकजीवन से उत्पन्न होने वाले ऐहिक रस का रागरंजित अनुकथन है । यदि यह साहित्य नाना शलाका पुरूषों के उदार जीवन चरित से संपन्न परिपूर्ण है। ''

अब हम आदिकालीन जैन साहित्य की मुक्तक काव्यधारा की विशेषताओं से परिचित होंगे।

5.3.2 मुक्तक साहित्य-

जैन कवियों ने प्रबंधकाव्य तो लिख ही , साथ ही उन्होंने दोहों के माध्यम से मुक्तक-काव्य की रचना भी की। प्रबंधकाव्यों में जैन कवियों ने कथा को जैन सिद्धान्तों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन मुक्तक रचनाएँ इस प्रकार के सम्प्रदायगत आग्रहों से मुक्त हैं। इन कवियों की कविता का मूल स्वर रहस्यवादी है। ऐसी रचनाओं में ब्राह्मण एव जैन धर्म की रूढ़ियों, बाह्याचारों और आडम्बरों का विरोध करते हुए लोकसामान्य के लिए सरला ढंग

से जीव-मुक्ति का संदेश प्रतिपादित हुआ है। पं.हजारी प्रसाद द्विवदी ने इन मुक्तक काव्यों की साम्प्रदायिकता-मुक्त दृष्टि की प्रशंसा करते हुए लिखा है- '' इन दोहों का स्वर नाथ योगियों के स्वर से इतना अधिक मिलता है कि इनमें से अधिकांश पर से यदि जैन विशेषण हटा दिया जाय तो समझना कठिना हो जाएगा कि ये निर्गुणमार्गियों के दोहे नहीं हैं। भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से ये दोहे निर्गुणिया साधकों की श्रेणी में ही आते हैं। ''

अपभ्रंश में निर्गुण मुक्तक काव्य लिखने वाले कवियों में जोइन्दु (10वीं शताब्दी ई.) और मुनिराम सिंह (1100 ई. के आस पास) प्रमुख हैं। जोइन्दु की रचनाएँ हैं परम्म पयासु' (परमात्म प्रकाश) और 'योगसार' तथा मुनिराम सिंह की काव्यकृति 'पाहुड़ दोहा' नाम से प्राप्त होती है।'परमात्म प्रकाश' दो अधिकारों में विभक्त 337 छन्दों में लिखी गई रचना है। इसमें आत्मा, परमात्मा, द्रव्य, गुण कर्म, सम्यक दृष्टि, मोक्ष, मोक्ष के फल आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। जैन कवियों ने उदार दृष्टि से रूढ़ियों, पाखंडों, बाह्याचारों आदि का खंडन करते हुए उस परम तत्व की साधना और उपासना पर बल दिया है जिसे भिन्न-भिन्न मत भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते है। जोइन्दु कहते हैं-

''जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बंभु वि बुद्ध।
परम-पयासु भणंति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्ध।।

जोइन्दु ने शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा स्वयं संवेध ज्ञान पर बल दिया। उनका मानना था कि अक्षरज्ञान या शास्त्रज्ञान से ही मुक्ति सम्भव नहीं है। शास्त्र मिथ्या भेद पैदा करने का कारण है। इसलिए ध्यान के द्वारा ही ज्ञानमय, परमात्मामय हुआ जा सकता है। इन्द्रियों को वश में करके ही परमतत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है।

जो जाया झाणग्गिए, कम्म कलंक ऽहेवि।

णिच्य-णिरंजण-जाणमय, ते परमप्प णवेवि।।

अर्थात्,जो ध्यान की अग्नि से कर्मकलंकों को जलाकर नित्य निरंजन ज्ञानमय हो गए हैं, उन परमात्म को मैं नमन करता हूँ ।'योगसार' अपेक्षाकृत सरल और मुक्त रचना है। इसमें कुल 108 छंद हैं। जोइन्दु की दानों कृतियॅा दोहा छन्द में रचित हैं। 'योगसार' में कवि कहता है-

''सो सिउ-संकरू विणहू सो, सो रूद्धवि सो बुद्धु।

सो जिणु ईसरू बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्ध ।।''

अर्थात् - वही शिव है, वही शंकर है, वही विष्णु है, वही रूद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही अनन्त और वही सिद्ध है। मुनिराम सिंह की रचना 'पाहुड़ दोहा' 222 दोहों की रचना है। पाहुड़ दोहा का शाब्दिक अर्थ है- दोहों का उपहार! पाहुड़ संस्कृत शब्द 'प्रभृत' का रूपान्तर है जिसका अर्थ होता है 'उपहार'।'पाहुड़ दोहा' में राम सिंह ने पुराण पन्थी रूढिवादी प्रवृत्तियों का खण्डन किया है। उन्होंने षड्दर्शन का विरोध किया है जो एक ही ईश्वर के छह भेद कर देता है-

छह दसण धधदू पडिय, मणहंण फिट्टव भांति ।   ,

एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेणण मोक्खछं जांति ।

वे कहते हैं कि षड्दर्शन से भी मन की भ्रान्ति नही टूटी। एक देव के छह भेद किए, इसलिए मोक्ष नहीं मिला। मुनि राम सिंह 'पाहुड़ दोहा' में बाह्याचारों का विरोध करते हुए लिखते हैं कि जो इन सब पूजा-पाठ, व्रत, स्नान आदि में

पड़ गया वह मूल तत्त्व तक कमी नहीं पहुँच सकता। यह वैसी ही मूर्खता है जैसे जड़ को छोड़कर डाल को पकड़नां क्या रूई को ओटाये बिना भी कपड़ा बुना जा सकता है-

मूल छांडि जो डाल चढ़ि, कहँ तह जोया भायसि।

चीरूणु बुणणहँ जाइ बढ, विणु उट्टिई कपासि ।।''

जैन मतावलम्बी मुक्तक रचनाकरों के पाखंड विरोध के सम्बन्ध में डा. नामवर सिंह का कहना है- '' व्यवहार के क्षेत्र में यह शास्त्र विरोध और अक्षर खंडन धर्म के ठेकेदार पंडितों और पुरोहितों पर सीधा प्रहार था, दूसरी ओर इसके द्वारा उस जनसाधारण के लिए ज्ञान का सहज द्वार खुल गया जिन्हें पढ़ने-लिखने की सुविधा प्राप्त न हो सकी थी।'' जैन मुनियों का मानना था कि आत्मज्ञान ही वही ज्ञान है जिसके बाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। आत्मा ही आत्मा को प्रकाशित करती है जैसे रवि का राग अम्बर को-

'अप्पु पयासइ अप्पु पइ, जिम अम्बरि रवि राउ।'

उन्होंने धर्मोपदेशकों द्वारा अपवित्र बताई जाने वाली देह को देवमन्दिर की गरिमा प्रदान की-

'देहा देवलि जो बसइ, देउ अणाइ अणंतु।'

परमात्मा के इस आवास को स्वच्छ और पवित्र रखा जाए क्योंकि चित्त की निर्मलता में ही देवता का निवास हो सकता है, जैसे सरोवर में हंस लीन रहता है-

''णिय-मणि णिम्मालि णाणियहँ , णिवसइ देउ अणाइ।

हंसा सरिवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाई।। ''

अभ्यास प्रश्नः-

1- जैन मतावलम्बी चार प्रबंधकार कवियों और उनकी रचनाओं के नाम लिखें।

2- मुक्तक काव्य रचने वाले किन्हीं दो जैन कवियों के नाम बतायें।

3. **सत्य/असत्य बताएँ -**

क- स्वयंभू के 'पउम चरिउ' में सीता तेजस्वी नारी के रूपम चित्रित हुई है।

ख- कथाकाव्य का मुख्य चिरत्र या नायक कवि कल्पना की उपज या लोकप्रचलित कथाओं से लिया गया होता है।

ग- 'पाहुड़ दोहा' के रचयिता पुष्पदन्त हैं।

घ- कनकामर मुनि को 'अभिमानमेरू' भी कहा जाता है।

ड- स्वयंभू 'अपभ्रंश के वाल्मीकि' माने जाते हैं।

5.4 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव-

इसके पूर्व आप आदिकालीन जैन कवियों के प्रबंधकाव्यों और मुक्तक रचनाओं की विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर चुके है। अब आप परवर्ती हिन्दी साहित्य पर भाषा, शिल्प आदि दृष्टियों से आदिकालीन जैन साहित्य के प्रभाव का अध्ययन करेंगे। काव्य के दो पक्ष होते हैं- वस्तु और रूप। वस्तु से आशय है छन्द, कथानक रूढियाँ, संरचना आदि। आदिकालीन जैन साहित्य ने वस्तु एवं रूप दोनों दृष्टियों से परवर्ती हिन्दी साहित्य को प्रभावति किया है।

5.4.1 काव्यवस्तु सम्बन्धी प्रभावः

जैन साहित्य के अध्ययन के क्रम में आपने जाना कि प्रबंधकाव्य की रचना करने वाले कवियों ने रामकथा, कृष्णकथा के अतिरिक्त जैन तीर्थकारों तथा अन्य विख्यात चरित्रों को अपनी कविता का विषय बनाया। इनके अलावा उन्होंने ऐतिहासिक या लोकप्रचलित कथाओं के नायकों को लेकर उनके शौर्य, वीरता एवं श्रृंगार का वर्णन किया परवर्ती हिन्दी साहित्य के रासो काव्यों में इस परम्परा का ओर अधिक विकास हुआ।,

पुष्पदन्त के 'णायकुमार चरित' और 'जसहर चरिउ' में नायकों की वीरता और शौर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है । ये चरित्र पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं है। यदि इतिहास में कहीं इनका उल्लेख हुआ भी है तो काव्य में इनकी सर्जना कल्पना प्रसूत ही है। ये वस्तुतः कविकल्पना से उत्पन्न चरित्र हैं। हिन्दी साहित्य में जो वीरगाथात्मक रासो ग्रन्थ लिख गए उनमें 'पृथ्वीराज रासो; ' हम्मीर रासो;' 'खुम्मानरासो'; 'परमाल रासो' आदि प्रमुख है। इनमें भी राजाओं की वीरता, वैभव, श्रृंगार आदि का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन ही मिलता है। जैन चरितकाव्यों के नायक लोककथाओं से लिए गए हैं या कविकल्पना की उपज है जबकि रासो काव्यों के नायकों के नाम ऐतिहासिक हैं, लेकिन उनका चरित्राकन कल्पना से रंगा हुआ है। उनमें ऐतिहासिक की सुरक्षा नहीं हो पाई है।भक्तिकालीन रामकाव्य और कृष्णकाव्य की परम्परा के बीज भी हम आदिकालीन जैर काव्य में पा सकते हैं। हालॉकि भक्तिकाल के कवियों ने राम- कृष्ण के चरित्र को भारतीय मुख्य परम्परा के अनुकूल बनाकर प्रस्तुत किया है। भक्तिकाल की मूल चेतना भक्ति थी। इस मूल चेतना के आलोक में भक्त कवियों ने राम और कृष्ण के चरित्र को परब्रह्म के अवतार के रूप में चित्रित किया है और साथ ही उनका मानवीय रूप प्रदर्शित किया है। जबकि जैन काव्य में राम-कृष्ण साधारण पौराणिक पात्रों के रूप में सामने आते हैं।

मुक्तक काव्य रचने वाल कवियों ने धर्म की रूढियों और बाह्याचारों का खंडन कर आत्ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया थां उन्होंने शास्त्रज्ञान की अपेक्षा अनुभव को अधिक महत्त्व दिया। इस दृष्टि से यदि भक्तिकालीन सन्त-साहित्य पर विचार करें तो सिद्ध-नाथ कवियों के साथ-साथ इन जैन कवियों का प्रभाव और प्रेरणा भी लक्ष्य की जा सकती है।

5.4.2 काव्यरूप सम्बन्धी प्रभावः-

काव्यरूप से आशय भाषा, छन्द, कथानक रूढियों एवं काव्यशिल्प से सम्बन्धित अन्य विशेषताओं से है। समय के साथ साहित्य की विषयवस्तु में परिवर्तन आता रहता है, परन्तु काव्य रूप लम्बे अरसे तक प्रयोग में लाए जाते हैं। आप पढ चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य अपभ्रंश में रचित है। काव्यरूप सम्बन्धी इसकी कई विशेषताएँ हिन्दी साहित्य में अपना ली गई।सर्वप्रथम यदि हम छन्द पर विचार करें तो पाएँगे कि अपभ्रंश से पहले छन्द तुकान्त नहीं होते थे। अपभ्रंश भाषा में पहली बार तुकान्त एवं मात्रिक छन्दों का प्रयोग आरम्भ हुआ। तब से आज तक हिन्दी में मात्रिक छन्दों का प्रचलन बना हुआ है। जैन चरितकाव्यों में पद्धड़िया छन्द अपनाया गया साथ

ही बीच-बीच में एकरसता दूर करने के लिए दूसरे छन्दों का भी प्रयोग किया गया। परवर्ती हिन्दी साहित्य के 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' जैसे प्रबंधकाव्यों में भी तुलसी तथा जायसी ने यह पद्धति अपनायी हैं हिन्दी के प्रबंधकाव्यों के लिए चौपाई प्रमुख छन्द बन गयां कवियों ने चौपाइयों के बीच-बीच में दोहा-सोरठा आदि का प्रयोग किया ताकि कथानक की एकरसता समाप्त हो जाए और नवीनता बनी रहे। दोहा अपभ्रंश का विशिष्ट छन्द है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार- ' सच्चाई यही है कि श्लोक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है।'' दोहा मुक्तक काव्य के लिए अन्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल तक में मुक्तक रचनाओं के लिए यह हिन्दी के कवियों का प्रिय छन्द रहा है। चौपाई छन्द के विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि इसका संबंध अपभ्रंश के छन्द से है। अपभंश में चउपई नामक छन्द भी मिलता है जिसमें 113-113 मात्राएँ होती हैं, जबकि हिन्दी चौपाई में में प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। तुलसी, जायसी जैसे महाकवियों द्वारा प्रयुक्त चौपाई छन्द का मूल भी अपभ्रंश काव्य में ही है। इसी प्रकार हिन्दी का एक बहुप्रयुक्त छन्द 'रोला' है। जैन कवि धनपाल की रचना ' भविस्सत कहा' में इसका प्रयोग मिलता है।प्रत्येक दौर के साहित्य में रूप विधान से जुड़ी हुई कुछ रूढियों पाई जाती है जिनका कवियों द्वारा निर्वाह किया जाता है। प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन निंदा और सज्जन प्रशंसा आदि कुछ ऐसी ही रूढियॉ हैं आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों की ये रूढियों तुलसी के 'रामचरित- मानस' में भी प्रयुक्त हुई है। और जायसी ने भी 'पद्मावत' में कथानक-रूढियों का प्रयोग किया है। अधिकांश जैन प्रबन्ध काव्यों में कथा की शुरूआत दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तर के रूप में हुई है। ऐसे ही 'पृथ्वीराज रासो', शुक-शुकी संवाद के रूप में है और 'रामचरितमानस' शिव-पार्वती संवाद के रूप में लिखा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को काव्यवस्तु एवं काव्यरूप दोनों ही दृष्टियों से प्रेरित और प्रभावित किया है।

अभ्यास प्रश्न-

13. आदिकालीन जैन साहित्य में प्रयुक्त उन छन्दों के नाम लिखें जिनका प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में हुआ।

6. आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों में प्राप्त कथानक- रूढियों के नाम लिखें जिनका निर्वाह परवर्ती हिन्दी साहित्य में मिलता है।

5.5 सारांश-

इस इकाई को पढने के बाद आप जान चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य के रूप में रचा गयां स्वंयभू, पुष्पदन्त, धनपाल, नेमिनाथ आदि प्रमुख प्रबंधकार कवि हैं जबकि जोइन्दु एवं मुनिराम सिंह प्रमुख मुक्तक रचनाकार हैं। प्रबंधकाव्यों में प्रसिद्ध जैन तीर्थकारों, राम-कृष्ण के चरितों के अलावा लोककथाओं के चरित्रों का वर्णन करते हुए जैन धर्म के सिद्धान्तों और महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। मुक्तक काव्य में धर्म के बाह्याचार, शास्त्रज्ञान आदि का खंडन कर सहज आत्मज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया गया है। जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को काव्यवस्तु एवं काव्यरूप, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है।

5.6 शब्दावलीः-

प्रबंधकाव्य : प्रबंधकाव्य में पूर्वापर सम्बन्धों में बँधी हुई कथा होती है। कथा होने के कारण कवि द्वारा इसमें घटनाओं और चरित्रों की योजना

की जाती है। कवि घटना और चरित्रों के प्रसंग में विभिन्न रसों की अवतारण करता है। प्रबंधकाव्य के दो भेद होते हैं- महाकाव्य और खंडकाव्य।

मुक्तक काव्य : जब कवि स्वतंत्र रूप से, बिना किसी कथा या घटना के अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है तो वह काव्यरूप मुक्तक कहा जाता है।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क-सत्य ख-असत्य ग-असत्य

2. स्वयंभू- पउमचिरउ, रिठ्ठनेमि चरिउ, हरिवंश पुराण

पुष्पदन्त- महापुराण, णायकुमार चरिउ, जसहर चरिउ

कनकामर मुनि- करकंडु चरिउ

धनपाल - भविस्सत कहा

3. जोइन्दु - परमात्म प्रकाश, योगसार

मुनि राम सिंह- पाहुड़ दोहा

4. क- सत्य ख-सत्य ग-असत्य ध- असत्य ड-सत्य

5. दोहा, रोला, चउपई

6. मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन निंदा, सज्जन प्रशंसा, संवाद या प्रश्नोत्तर शैली, बारहमासा वर्णन आदि।

5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. ‘हिन्दी साहित्य का आदिकाल’, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

2. ‘हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास’,हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली, 1999

3. ‘हिन्दी साहित्य की भूमिका ’,हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

4. ‘हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग’, डॉ.नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971

5.9 निबंधात्मक प्रश्नः

1. प्रमुख जैन प्रबंधकार कवियों की रचनाओं का परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

2. आदिकालीन जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया? स्पष्ट कीजिए।

इकाई 6विद्यापति: परिचय एवं स्वरुप

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 कवि -परिचय जीवन -परिचय
6.4 रचनाकार व्यक्तित्व
6.5 विद्यापति की रचनाएँ
6.6 सम्प्रदाय
6.7 काव्यपाठ तथा संदर्भ सहित व्याख्या
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
6.13 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आप आदिकाल की पृष्ठभूमि से परिचित हो चुके हैं। आपने आदिकाल के प्रमुख कवियों का समग्र अध्ययन कर लिया है। आप जानते ही हैं कि रचनाकार अपने युग की प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है तथा लोक से बहुत कुछ ग्रहण करता है। वह लोक के जितना ही निकट होता है, उतना ही लोक को प्रभावित भी करता है। प्रस्तुत इकाई में संक्रांत काल (आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल) के ऐसे ही एक विशिष्ट रचनाकार विद्यापति के जीवन, रचनाकार व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है। तथा कुछ अंशों की व्याख्या की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विद्यापति के रचनाकार व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषणात्मक परिचय दे सकेंगे। विद्यापति के काव्य का अध्ययन कर उसका रसास्वादन करेंगे तथा व्याख्या कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- हिन्दी साहित्य के आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल के एक विशिष्ट रचनाकार के रूप में विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण करेंगे।
- हिन्दी साहित्य में विद्यापति का स्थान निर्धारित करेंगे।
- विद्यापति की लोकचेतना को अनुभूत करेंगे।
- विद्यापति के काव्य का रसास्वादन कर सकेंगे

6.3 कवि परिचय

हिन्दी साहित्य के अभिनव जयदेव के नाम से प्रख्यात विद्यापति का जन्म मिथिला के बिसपी नामक गांव में हुआ था। इनका जन्म 1352 में हुआ माना जाता है। इनकी माता का नाम हंसिनी देवी और पिता का नाम गणपति ठाकुर था। इनके पिता राजा शिवसिंह के सभासद थे। विद्यापति के पदों में यत्र-तत्र राजा शिवसिंह और रानी लखमा देवी का जिक्र आया है। बहुत सारे अन्य पुराने रचनाकारों की भांति विद्यापति के जीवन के संदर्भ में भी ऐतिहासिक प्रमाणों पर मतभेद मिलते हैं। इस संदर्भ में उनकी रचनाओं को आधार बनाया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार ‘सम्भवतः इनका जन्म 1368ई. में हुआ है कीर्तिलता में इन्होंने अपने को कीर्तिसिंह का लेखन-कवि कहा है जो सम्भवतः उन्हें कीर्तिसिंह का बाल्य -बंधु सिद्ध करता है। इस हिसाब से इनका जन्म समय कुछ और पहले होना चाहिये। विद्वानों का अनुमान है कि इस हिसाब से इनका जन्म 1360 ई. हुआ होगा। विद्यापति मिथिला के बिसपी नामक गांव के रहने वाले थे। ये मिथिला के राजा कीर्तिसिंह और शिव सिंह के दरबारी कवि रहे।‘

श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त इनका जन्म 1358 ई. बताते हैं, महामहोपाध्याय पं0 हरप्रसाद शास्त्री1357 ई., श्री रामवृक्ष बेनीपुरी 1350ई. और डा. बाबूराम सक्सेना1357 ई. से 1359 ई.के बीच किसी भी समय। श्री रामनाथ झा, श्री शिवनंदन ठाकुर एवं डा. जयकांत मिश्र आदि 1360 ई. में विद्यापति का जन्म मानते हैं। जन्मकाल की ही भांति इनका मृत्युकाल भी अनुमान का विषय बना हुआ है। राजा शिवसिंह विद्यापति के परम मित्र और हितैषी थे। उनकी मृत्यु के बीस वर्ष बाद कवि ने राजा को स्वप्न में देखा यह उल्लेख **सपन देखल हम सिवसिंध भूप** कवि की ही रचना में मिलता है। विद्यापति को अपनी मृत्यु का पूर्वज्ञान हो गया था। उन्हें अपने पूर्वज,गुरूजन स्वप्न में दिखाई देने लगे थे- **बहुत गुरुजन-प्राचीन।/ आव मेलहु हम आयु विहीन।।** अंत निकट देख वे गंगा लाभ को चले गए और

बनारस में उनका देहावसान कार्तिक धवल त्रयोदशी को सन १४४० ई. में हुआ।यह उन्हीं की इन पंक्तियों से पता चलता है। विद्यापतिक आयु अवसान। कार्तिक धवल त्रयोदसी जान।।प्राचीन काल में हमारे यहाँ परम्परा रही है कि लोग अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वानप्रस्थ आश्रम में चले जाया करते थे अर्थात् सांसारिक जीवन को छोड़कर प्रभुभक्ति में लीन हो जाते थे और काशी तथा गंगावास करते थे। इसी परम्परा का निर्वाह विद्यापति ने भी किया है।

(क) महाकवि विद्यापति ठाकुर के पारिवारिक जीवन का कोई स्वलिखित प्रमाण नहीं है, किन्तु मिथिला के उतेढ़पोथी से ज्ञात होता है कि इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम पत्नी से नरपति और हरपति नामक दो पुत्र हुए थे और दूसरी पत्नी से एक पुत्र वाचस्पति ठाकुर तथा एक पुत्री का जन्म हुआ था। लोगों का एक विचार है, संभवत: 'दुल्लहि' इनकी पुत्री थी जिसका जिक्र अन्तिम दिनों में रचित इनके एक गीत में है। नरपति ठाकुर ज्योतिष शास्त्र के परम विद्वान थे। इन्होंने ज्योतिष सम्बन्धी एक ग्रन्थ दैवज्ञ आंधव लिखा भी था। मैथिल भाषा में इनकी कुछ कवितायें भी उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि इनकी पुत्रवधू चन्द्रकांता भी अच्छी कविता करती थी।

विद्यापति ने ओईनवार राजवंश के अनेक राजाओं के साथ रहकर अपनी विद्वत्ता एवं दूरदर्शिता से उनका मार्गदर्शन किया। जिन राजाओं ने महाकवि विद्यापति को अपने यहाँ सम्मान के साथ रखा उनमें प्रमुख है:

(क) देवसिंह (ख) कीर्तिसिंह (ग) शिवसिंह (घ) पद्मसिंह (च) नरसिंह (छ) धीरसिंह (ज) भैरवसिंह और (झ) चन्द्रसिंह।

महाकवि इसी राजवंश की तीन रानियों के सलाहकार भी रहे। ये रानियाँ है:

(ख) लखिमादेवी (ख) विश्वासदेवी (ग) धीरमतिदेवी।

(ग) स्पष्ट है कि विद्यापति को न केवल वाग्देवी का वरदान प्राप्त था वरन् राज्याश्रय और लोकप्रियता भी मिली। ''विद्यापति उन इने–गिने सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से थे जिन्हें कवित्वशक्ति, प्रतिष्ठा, विद्वत्ता और सांसारिक वैभव युगपत् प्राप्त होते हैं। उनकी पदावली में उनके कई उपनाम हैं।जैसे अभिनव जयदेव, कविराज, कविकण्ठहार, कविरंजन, कविशेखर,दशावधान, राजपंडित आदि।'' इनका मानना है कि उस युग में उपाधि या उपनाम राजाओं से ही प्राप्त होते थे। विद्यापति को कवि कोकिल अथवा मैथिल कोकिल के नाम से भी अभिहित किया गया है।

बोध प्रश्न 1

---

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

क. विद्यापति को .... के नाम से भी अभिहित किया गया है। (वासंती कोकिल / मैथिल कोकिल)

ख. विद्यापति मिथिला के .... नामक गांव के रहने वाले थे। (बिसपी /ईसपी)

ग. विद्यापति .... के राजा कीर्तिसिंह और शिव सिंह के दरबारी कवि रहे।'। (वैशाली / मिथिला)

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ. विद्यापति ओईनवार राजवंश की किन रानियों के सलाहकार रहे हैं?

....

ब. विद्यापति के पाँच उपनाम बताइए।

....

....

स. विद्यापति की पुत्रवधू के बारे में बताइए।

....

....

6.4 रचनाकार व्यक्तित्व

ये अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे । इनकी अधिकांश रचनाएं अवहट्ठ एवं संस्कृत में हैं। कीर्तिलता एवं ‘कीर्तिपताका ‘ इनकी अवहट्ठ रचनायें हैं जिनमें इनके आश्रयदाता राजा शिवसिंह की प्रशंसा है। इनकी ‘पदावली की रचना मैथिली में हुई है। कहा जाता है इन्होंने बड़ी लम्बी उम्र पाई थी, कई राजघरानों के हेर-फेर अपनी आंखों से देखे थे। बूढ़े राजाओं, बूढ़ी रानियों से लेकर अविकसित राजकुमारों व राजकुमारियों तक से कवि का अति निकट का सम्पर्क रहा। राजपुरुषों के कूटनीतिक दांव-पेंच उन्हें भली-भांति मालूम थे।उन्होने संस्कृत के माध्यम से दसियों नीतिग्रन्थ और शिक्षाग्रंथ भी तैयार किए थे। एक राजा पड़ोसी देश के राजा को किस प्रकार पत्र लिखेगा,एक सेनापति एक अधिकार-प्राप्त युवराज को किस तरह अपनी बात सूचित करेगा, दासों के लिए ‘मुक्ति-पत्र' किस प्रकार लिखे जाएंगे-इस प्रकार के व्यवहारिक पत्र -लेखन के दर्जनों नमूने अपनी पुस्तक ‘लिखनावली' में हमें दे गए हैं। राजकुमारों की नीति-शिक्षा के लिए समकालीन ऐतिहासिक-सामाजिक पात्रों के आधार पर नीति-शिक्षा की पुस्तक तैयार की थी। एक किंवदन्ती के अनुसार विद्यापति बाल्यावस्था से ही तीव्र -बुद्धि और कवि स्वभाव वाले थे। जब ये मात्र आठ वर्ष के थे तब एक बार अपने पिता के साथ राजा शिवसिंह के दरबार में गए वहां राजा शिवसिंह के कहने पर उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों की रचना की - पोखरि रजोखरि अरु सब पोखरा ।

राजा शिवसिंह अरु सब छोकरा।।

मिथिला में इनके लिखे पदों को घर घर में हर मौके पर, हर शुभ कार्यों में गाया जाता है, चाहे उपनयन संस्कार हों या विवाह। शिव स्तुति और भगवती स्तुति तो मिथिला के हर घर में बड़े ही भाव भक्ति से गायी जाती है। :

जय जय भैरवी असुर-भयाउनी
पशुपति- भामिनी माया
सहज सुमति बर दिय हे गोसाउनी
अनुगति गति तुअ पाया। ।

शास्त्र और लोक दोनों ही संसार में इनका असाधारण अधिकार था। कर्मकांड हो या धर्म दर्शन हो या न्याय, सौन्दर्य शास्त्र हो या भक्ति रचना, विरह व्यथा हो या अभिसार, राजा का महिमा गान हो या सामान्य जनता के लिए गया में पिण्डदान, सभी क्षेत्रों में विद्यापति अपनी कालजयी रचनाओं की बदौलत जाने जाते हैं।

विद्यापति का व्यक्तित्व नाना प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधाराओं का साक्ष्य है। ये दरबारी होते हुए भी जनकवि हैं ,श्रृंगारिक होते हुए भी भक्त हैं,शैव या शाक्त या वैष्णव कुछ भी होते हुए भी वे धर्म-निरपेक्ष हैं ,संस्कारी ब्राह्मण वंश में पैदा होते हुए भी वे मर्यादावादी या रूढ़िसंत्रस्त नहीं हैं। कवि कोकिल की कोमलकान्त पदावली वैयक्तिकता, भावात्मकता, भावाभिव्यक्तिगत स्वाभाविकता, संगीतात्मकता तथा भाषा की सुकुमारता एवं सरलता का अद्भुत प्रस्तुतीकरण करती है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इनकी पदावली अगर एक तरफ इनको रससिद्ध, शिष्ट एवं मर्यादित श्रृंगारी कवि के रुप में प्रेमोपासक, सौन्दर्य पारसी तथा पाठक के हृदय को आनन्द विभोर कर देने वाले माधुर्य का स्रष्टा सिद्ध करती है तो दूसरी ओर इन्हें भक्त कवि के रुप में शास्त्रीय मार्ग एवं लोकमार्ग दोनों में सामंजस्य उपस्थित करने वाला धर्म एवं इष्टदेव के प्रति कवि का समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देने वाला एक विशिष्ट भक्त हृदय का चित्र उपस्थित करती है साथ ही साथ लोकाचार से सम्बद्ध व्यावहारिक पद प्रणेता के रुप में इनको मिथिला के सांस्कृतिक जीवन का कुशल अध्येता प्रमाणित करती है। इतना ही नहीं, यह पदावली इनके जीवन्त व्यक्तित्व की भोगी हुई अनुभूति का साक्षी बन समाज की कुरीतियों, आर्थिक वैषम्य, समाज में मौजूद अन्धविश्वास, भूत-प्रेत, जादू-टोना, आदि का उद्घाटन भी करती है। इसके अलावा पदावली का भाषा-सौष्ठव, लालित्य, पदविन्यास, रसात्मकता, प्रभावशाली अलंकार योजना, सुकुमार भाव व्यंजना एवं सुमधुर संगीत आदि विशेषताओं ने इसको एक उत्तम काव्यकृति के रुप में भी प्रतिष्ठित किया है। (विकिपीडिया से साभार) विद्यापति की पदावली में अधिकांश पद राधा-कृष्ण ही की प्रेमलीलाओं से सम्बन्ध रखते हैं।

6.5 पुस्तक परिचय

विद्यापति का संस्कृत, अपभ्रंश तथा लोकभाषा मैथिली (हिन्दी की उपभाषा) पर पूर्ण अधिकार था। इन्होंने संस्कृत में 12 पुस्तकों भू-परिक्रमा, पुरुषा परीक्षा, लिखनावली,शैव सर्वस्वसार, गंगावाक्यावली, विभागसार, दानवाक्यावली, दुर्गा भक्ति तरंगिनी, गयापत्तलक, वर्षकृत्य, पांडव-विजय और मणिमंजरी की रचना की है। कीर्तिपताका संस्कृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओं में है। पदावली मैथिली भाषा में है। पदावली ने इन्हें सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी इन्होंने 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' कहकर लोकभाषा को आदर दिया। विद्यापति ने कहा- सक्कअ वाणी अहुअ न भावइ। पाउअ रस को मम्म न पावइ।।

देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तें तैंसन जम्पओ अवहट्ठा।।

जैसाकि सभी प्रारम्भिक रचनाकारों के साथ दिखाई देता है, विद्यापति की रचनाओं के साथ भी उपलब्धता और प्रामाणिकता के प्रश्न जुड़े हैं।

कीर्तिलता : यह विद्यापति का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। सौभाग्यवश विद्यापति की कीर्तिलता में कोई नहीं हो सका है। यद्यपि यह पुस्तक भी आश्रयदाता समसामयिक राजा की कीर्ति गाने के उद्देश्य से ही लिखी गयी है और कविजनोचित अलंकृत भाषा में रची गयी है, तथापि इसमें ऐतिहासिक तत्व कल्पित घटनाओं अथवा सम्भावनाओं के द्वारा धूमिल नहीं हो गया है।उस काल के मुसलमानों का ,हिन्दुओं का,सामन्तों का , शहरों का,लड़ाइयों का, सेना के सिपाहियों का इतना जीवन्त और यथार्थ चित्रण अन्यत्र मिलना कठिन है। बहुत कम स्थलों पर न केवल सम्भावनाओं का वृहदाकार बनाया है। कीर्तिसिंह का वीरत्व भी स्पष्ट हो जाता है और जौनपुर के सुलतान फीरोजशाह के सामने बैठकर अति नम्र भक्तिमान रूप भी स्पष्ट हुआ है। इन चित्रणों में कवि ने कीर्तिसिंह के द्वितीय रूप को दबाने या उच्चतर रूप में चित्रित करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि ऐतिहासिक तथ्य को इस भाँति रखने का प्रयत्न किया है कि जिस स्थान पर कथानायक झुकता है, वहाँ भी वह पाठक की सहानुभूति और परिशंसन का पात्र बना रहता है।

कीर्तिपताका: यह पुस्तक कीर्तिसिंह के प्रेम प्रसंगों पर आधारित है।

भू-परिक्रमा : राजा शिवसिंह की आज्ञा से लिखित भूगोल-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

पुरुषा परीक्षा: इतिहास और नीतिशास्त्र का ज्ञान है।

लिखनावली : संस्कृत में पत्र लेखन कला सिखाने के उद्देश्य से लिखित ग्रन्थ है।

शैव सर्वस्वसार : राजा पद्मसिंह की रानी विश्वास देवी की प्रेरणा से यह ग्रन्थ लिखा गया। इस ग्रन्थ में भगवान् शिव की पूजा आराधना की विधि है।

गंगा काव्यावली : इसमें हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक गंगा के तट पर स्थित तीर्थों, गंगास्नान, गंगा तट पर किये गये दान आदि के महात्म्य का वर्णन है।

विभाग सार : राजा शिवसिंह के चचेरे भाई नरसिंह देव नरेश के आदेश पर रचित इस ग्रन्थ में सम्पत्ति के विभाजन के नियमों पर प्रकाश डाला गया है। इस रचना से तत्कालीन मिथिला की सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

दान वाक्यावली : महाराज नरसिंहदेव की रानी धीरमती के आदेश पर रचित इस ग्रंथ में दान की महिमा और व्याख्या तथा बारहों महीनों के दानों की विधियाँ हैं।

दुर्गा भक्ति तरंगिनी : यह कवि की अन्तिम रचना मानी जाती है। इसमें भगवती दुर्गा की पूजा-विधि और माहात्म्य का प्रमाण सहित वर्णन है।

बोध प्रश्न

3 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ. विद्यापति की 'पदावली' की रचना मैथिली में हुई है।

ब. विद्यापति वीररस के कवि हैं।

स. भू-परिक्रमा भूगोल-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

द. दुर्गा भक्ति तरंगिनी विद्यापति की अन्तिम रचना मानी जाती है।

6.6 विद्यापति का सम्प्रदाय

कहा जाता है कि स्वयं भोले नाथ ने कवि विद्यापति के यहाँ उगना (नौकर का नाम) बनकर चाकरी की थी। विद्यापति के साहित्य में इतनी और ऐसी विविधता है कि उन्हें किसी एक मत का मान लेना कठिन हो जाता है। एक ओर वे **शैव सर्वस्वसार और शिव-स्तुतियाँ** लिखकर मतावलम्बी जान पड़ते हैं। दूसरी ओर दुर्गा भक्ति-

तरंगिणी और देवी-स्तुतियाँ लिखकर जान पड़ते हैं। उन्होंने गंगा-स्तुतियाँ भी लिखी हैं। राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद उन्हें वैष्णव मतावलम्बी दर्शाते हैं।

विद्यापति की पदावली में अधिकांश पद राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं से सम्बन्ध रखते हैं। कहते हैं चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों को गाते-गाते इतना भाव-विभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्छा आ जाती थी। महाप्रभु की शिष्य परम्परा में आज भी विद्यापति के पद उसी भक्तिभाव से गाये जाते हैं। सहजिया सम्प्रदाय के भक्त, जो स्त्री-प्रेम को साधन मानकर ईश्वरी-प्रेम की ओर अग्रसर होते हैं, विद्यापति को सात रसिक भक्तों में से एक मानते हैं। विद्यापति के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे शिव के अधिक भक्त थे या राधा-कृष्ण के। उन्होंने तुलसीदासजी की तरह दोनों को एक रूप में देखा है। जिस प्रकार तुलसीदासजी ने राम को प्रधानता देकर उनका शिव से तादात्म्य किया है, उसी प्रकार विद्यापति ने भी शिव और विष्णु की साथ वन्दना करते हुए दोनों को समान आराध्य मानकर उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना को प्रकट किया है।

भल हर, भल हरि भल तुअ कला। खन पितवसनखनहिं बघछला॥

खन पंचानन खन भुजचारि। खन संकर खन देव मुरारि॥

साथ ही यह भी सत्य है कि विद्यापति दरबारी कवि थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओं के मनोविनोद के लिए इन पदों की रचना की थी। इनके पदों में अनेक स्थानों पर अंत में इनके आश्रयदाता राजाओं और रानियों के नाम भी आये हैं। कई पद ऐसे भी हैं जिनमें राधा और कृष्ण का नाम भी नहीं है -

ससन-परस रबसु अस्बर रे देखल धनि देह। नव जलधर तर चमकय रे जनि बिजुरी-रेह॥
आजु देखलि धनि जाइत रे मोहि उपजल रंग। कनकलता जनि संचर रे महि निर अवलम्ब॥
ता पुन अपरुब देखल रे कुच-जुग अरविन्द। विकसित नहि किछुकारन रे सोझा मुख चन्द॥
विद्यापति कवि गाओल रे रस बुझ रसमन्त। देवसिंह नृप नागर रे, हासिनि देइ कन्त॥

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री विद्यापति को पंचदेवोपासक मानते हैं। किंतु सूर्य और गणेश की स्तुति में कवि का मन रमा हुआ नहीं दिखाई देता। राधाकृष्ण सम्बन्धी पदों को भक्ति के पद नहीं कहा जा सकता। यदि हम उनके प्रार्थना के गीत देखें तो हम पायेंगे कि विद्यापति शिव एवं शक्ति दोनों के प्रबल भक्त थे। शक्ति के रुप में उन्होंने दुर्गा, काली, भैरवि, गंगा, गौरी आदि का अपनी रचनाओं में यथेष्ठ वर्णन किया है।

6.7 काव्यपाठ तथा संदर्भ सहित व्याख्या

किसी भी साहित्यिक रचना को समझने के लिए उसका पाठ करने तथा व्याख्यायित करने की आवश्यकता होती है। कुछ अंशों में विषय की गहराई में जाने अथवा मूल कथ्य को समझने के लिए भी व्याख्या एवं विश्लेषण की आवश्यकता होती है। 'विद्यापति की पदावली' के कुछ महत्वपूर्ण पदों की संदर्भ सहित व्याख्या यहॉं दे रहे हैं। इसके बाद आप स्वयं संदर्भ-पुस्तकों से विद्यापति के और पाठों का अध्ययन तथा व्याख्या कर सकते हैं।

1. भल हर, भल हरि भल तुअ कला। खन पितवसन खनहिं बघछला॥

खन पंचानन खन भुज चारि। खन संकर खन देव मुरारि॥

खन गोकुल भए चराइअ गाय। खन भिख मॉगिए डमरू बजाय।।

खन गोविन्द भए लिअ महिदान। खनहि भसम भरु कांख बोकान।

एक सरीर लेल दुइ बास। खन बैकुण्ठ खनहि कैलास।।

भन विपरित बानि। ओ नारायन ओ सुलपानि।।

शब्दार्थ : हरि = विष्णु रूप। महिदान = महीदान, छाछ मांगना। हर = शिव। बोकान= धूल , चूर्ण । विपरित बानि= विरोधी वाणी

संदर्भ : प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि हर अर्थात् शिव तथा हरि अर्थात् विष्णु दोनों की एक साथ वन्दना करते हुए दोनों को समान आराध्य मानकर उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना को प्रकट करते हैं।

अर्थ : इस पद में कवि ने एक ही ईश्वर का दो रूपों- शिव-रूप तथा विष्णु-रूप में वर्णन किया है। वे कहते हैं,- हे भगवान्! आपके शिव-रूप तथा विष्णु-रूप दोनों ही सुन्दर हैं तथा आपके दोनों ही रूपों की कलों अत्यंत रमणीय हैं। आप क्षण भर में पीताम्बरधारी विष्ण्ु और क्षण भर में बाघम्बरधारी शिव बन जाते हैं। आप एक पल में पांच मुख वाले शिव और अगले ही पल में चार भुजा वाले विष्णु बन जाते हैं। आप क्षण भर में गोकुल पहुँचकर कृष्ण के रूप में गाय चराने लगते हैं और क्षण भर में शिव के रूप में डमरू बजाकर भीख मांगने लगते हैं। क्षण भर में कृष्ण बनकर गोपियों से छांछ मांगने लगते हैं और क्षण भर में ही भस्म लगाकर शिव का वैरागी रूप धारण कर लेते हो। हे प्रभु! मैं तुम्हारे इस रूप का कैसे वर्णन करूँ? तुम्हारे एक ही शरीर ने दो स्थानों पर निवास बना रखा है. क्षण भर में ही तुम बैकुण्ठ में हो तो क्षण मात्र में ही कैलास पर्वत पर विराजमान दिखाई पड़ते हो। विद्यापति कहते हैं कि मैं अपनी पिरीत वाणी से आपका वर्णन करता हूँ। कभी आपको नारायण रूप में वर्णित करता हूँ और कभी त्रिशूलधारी महादेव के रूप में। ये दोनों रूप एक-दूसरे के विपरीत हैं, किन्तु मैं अपनी वाणी से इनका एक साथ वर्णन कर रहा हूँ।

विशेष :

- यह स्तुतिपरक पद है।
- इसमें विद्यापति ने पौराणिक हरीशंकरी मूर्ति का सजीव एवं चित्रोपम वर्णन किया है।
- विद्यापति ने ईश्वर के दो रूपों और उनके विविध कार्यों का कलात्मक वर्णन किया है। वैष्णव-भक्ति एवं शैव-भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।
- हर-हरि, खन-खनहि, भसम-भर, विद्यापति-विपरति-वानि में अनुप्रास, खन शब्द का अनेक स्थानों पर दो बार प्रयोग होने से पुनरुक्तिप्रकाश तथा ण्क ही ईश्वर का दो रूपों में विविध तरीकों से वर्णन होने से उल्लेख अलंकार है।
  भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है ।
- पद में गेयात्मक्ता है।

2. चाँद सार लए मुख घटना,करु लोचन चकित चकोरे।।
अमिय धोय आँचर जनि पोछलि दह दिसि भेल उँजोरें।।
कामिनी कोने गढ़ली।
रूपसरूप मोये कहइत असँभव लोचन लागि रहलौ।।
गुरू नितम्ब भरे चलए न पारए माझ खानि खीनि निभाई।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि त्रिवलि-लता उरजाई।।
भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक ई सब वचन सरूपे।
रूपनारायण ई रस जानवि सिवसिंध मिथिला भूपे।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि ने नायिका के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन किया है। नायिका की सखी कृष्ण के प्रति उसके रूप का वर्णन कर रही है।

अर्थ : कवि नायिका की सखी के माध्यम से कहते हैं- ऐसा जान पड़ता है जैसे विधाता ने चन्द्रमा का सार-तत्व लेकर नायिका के मुख की रचना की है और चकोर पक्षी की चंचलता का भाव आँखों में भर दिया है। इसीलिये जब नायिका ने अपने मुख को पानी से धोकर आँचल से पोछा तब दसों दिशाओं में उजाला फैल गया। सखी आश्चर्य व्यक्त करती है- किसने ऐसी सुन्दर स्त्री की रचना की? उसे नायिका के सौन्दर्य का वास्तविक वर्णन करना असम्भव लगता है। यह सौन्दर्य तो आँखों में बस गया है। भारी नितम्बों के भार से वह चल नहीं सकती, मध्यभाग अर्थात् कमर इतनी पतली है कि लगता है, वह है ही नहीं। कहीं नायिका की पतली कमर नितम्बों के भार से टूट न जाये इस भय से कामदेव ने त्रिवली-रूपी लता से उसे बाँध रखा है। विद्यापति कहते हैं कि नायिका का यह रूप विचित्र और अद्भुत जान पड़ता है, लेकिन यह सत्य है। वह कहते हैं कि मिथिला के राजा शिवसिंह पारखी हैं, रूप के पुजारी हैं, वह इस रस को जानते हैं।

विशेष :

- इस पद में नायिका का रूपवर्णन है।
- इसमें विद्यापति ने पौराणिक हरीशंकरी मूर्ति का सजीव एवं चित्रोपम वर्णन किया है।
- चाँद-सार लए मुख घटना.......में मुख और लोचन का 'घटना करु' का एक धर्म होने से दीपक, 'अमिय धेए आँचर धनि पोंछल दहि दिस भेल उजोरे' में अत्युक्ति भागि.........में अहेतु में हेतु की सम्भावना होने से हेतूत्प्रेक्षा और असम्बन्ध में सम्बन्ध कल्पित होने से सम्बन्धाश्योक्ति, चकित-चकोरे, दह-दिसि, कामिनी-कोने, खनि-खीन, सिब-सिंध में अनुप्रास तथा रूप-सरूप में सभंगपदयमक अलंकार है।
- राजा शिवसिंह का उल्लेख इस बात की पुष्टि करता है कि कवि ने राजा के मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए काव्य-रचना की है।
- विद्यापति ने ईश्वर के दो रूपों और उनके विविध कार्यों का कलात्मक वर्णन किया है। वैष्णव-भक्ति एवं शैव-भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।

- हर-हरि, खन-खनहि, भसम-भर, विद्यापति-विपरति-वानि में अनुप्रास, खन शब्द का अनेक स्थानों पर दो बार प्रयोग होने से पुनरुक्तिप्रकाश तथा ण्क ही ईश्वर का दो रूपों में विविध तरीकों से वर्णन होने से उल्लेख अलंकार है।

- भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

- पद गेय है।

3. सैसव जौवन दुहु मिल गेल। श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।।

वचनक चातुरि नहु-नहु हास। धरनिये चान कयल परकास।।

मुकुर हाथ लय करय सिंगार। सखि पूछय कइसे सुरत-विहार।।

निरजन उरज हेरत कत बेरि। बिहुँसय अपन पयोधर हेरि।।

पहिले बदरि सम पुन नवरंग। दिन-दिन अनंग अगोरल अंग।।

माधव देखल अपरूब बाला। सैसव जौवन दुहु एक भेला।।

विद्यापति कह तुहु अगेआनि। दुहु एक जोग इह के कह सयानि।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद विद्यापति की पदावली से उद्धृत है। इसमें कवि ने नायिका के वय:संधिकाल का वर्णन किया है। वय:संधिकाल अर्थात् वह अवस्था जब नायिका बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश करती है।

अर्थ - कवि बताते हैं कि नायिका के शरीर में शैशव और यौवन दोनों अवस्थाओं का संगम हो गया है। शिशुता की झलक अभी छूटी नहीं है लेकिन अंग-प्रत्यंग से यौवन झलकने लगा है। नेत्र कर्णचुम्बी हो गए हैं,अर्थात् नेत्र बड़े-बड़े हो गण हैं और नेत्रों ने कटाक्ष करना सीख लिया है,वह सीधे-सीधे न देखकर कनखियों से तिरछी नजरों से केखने लगी है। बोलचाल में सहज सरलता के स्थान पर मन्द-मन्द हास चतुराई घुलटमिल गई है। उसे देखकर लगता है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी पर उतरकर अपनी चॉदनी की छटा गिखेर रहा हो। अब वह शीशे में देख-देखकर श्रृंगार करने लगी है।सहेलियों से रति -क्रीड़ा सम्बंधी बातें पूछने लगी है। एकांत में बार-बार अपने उरोजों को देखती है और उन्हें बढ़ता हुआ देखकर प्रसन्न होती है। जो पहले बेर के समान छोटे थे अब नारंगी के समान बड़े हो गए हैं। कामदेव का प्रभाव नित्य उसके अंग-प्रत्यंगों पर बढ़ता जा रहा है। नायिका का सखी श्रीकृष्ण को बताती है कि उसने उस अपूर्व सुन्दरी बाला को देखा है जिसके शरीर में शैशव और यौवन दोनों एक साथ दिखाई दिये हैं। विद्यापति कहते हैं हि माधव(श्रीकृष्ण) ने कहा कि वह(नायिका की सहेली) अज्ञानी है ,ऐसा कैसे हो सकता है कि दोनों अर्थात् शैशव(बालपन) और यौवन एक साथ हों

4.

नन्दनक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव।।
साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिरि फिरि ततहि निहारि।।
गोरस बेचरा अबइत जाइत, जनि-जनि पुछ बनमारि।
तोंहे मतिमान, सुमति मधुसूदन, वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति, बन्दह नन्द किसोरा।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद विद्यापति की पदावली से उद्धृत है। इस पद में कृष्ण का राधा के प्रति प्रेमभाव दर्शाया गया है। राधा से मिलन के लिए प्रतीक्षारत कृष्ण का चित्रण प्रस्तुत पद में है।

अर्थ : राधा की सखी राधा से कहती है- हे राधिका नंद का पुत्र कदम्ब के वृक्ष के नीचे बैठकर धीरे-धीरे मुरली बजा रहा है। वह पहले से निर्धारित समय के अनुसार निश्चित स्थान पर पहुँच गया है और मुरली के माध्यम से बार-बार ,मुरली के स्वर में तेरा नाम ले- लेकर तुझे बुला रहा है । हे श्यामा, तुझसे मिलने के लिए मुरारि की व्याकुलता क्षण-क्षण बढ़ रही है। वह यमुना के किनारे के उपवन में विकल भाव से बार-बार उसी पंथ को निहार रहे हैं ,जिस ओर से तेरे आने की सम्भावना है। जो भी गोपी गोरस बेचने के लिए उधर से आती-जाती है ,वह वनमाली उसी से तेरे बारे में पूछता है। हे बुद्धिमती राधा,मधुसूदन (श्रीकृष्ण) तुझ पर अनुरक्त हैं,अत: तू कुछ मेरी बात भी सुन। विद्यापति कहते हैं- हे श्रेष्ठ युवती सुन,नंदकिशोर वन्दनीय हैं,तू उनकी वन्दना कर अर्थात स्वयं को उन्हें समर्पित कर उनकी व्याकुलता को दूर कर।

विशेष :

- यह श्रृंगारमूलक पद है।
- इसमें कृष्ण की प्रेमविह्वलता का वर्णन है।
- कृष्ण के लिए विविध नामों नंद का नंदन,मुरारि,वनवारि,मधुसूदन,नंदकिशोर का प्रयोग किया गया है। नंद का नंदन आनन्दित करने वाली प्रकृति के कारण कहा गया है। मुरारि-मुर तथा मधुसूदन- मधु नामक राक्षस का वध करने के कारण तथा नंदकिशोर नंद का पुत्र होने के कारण कहा गया है।
- राधा के लिए सखि सामरि(श्यामा) का सम्बोधन करती है। लक्षणग्रन्थों के अनुसार षोडषी को श्यामा कहते है। शीत ऋतु में उष्णता तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतलता प्रदान करने वाली तपे हुए सोने की आभा वाली स्त्री को भी श्यामा कहा गया है।
- भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है । पद में गेयात्मकता है।
- श्रुत्यानुप्रास की मनोहारी छटा है।

5. जय जय भैरवि असुर-भयाउनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति वर दिअ हे गोसाऊनि, अनुगति गति तुअ पाया।।

वासर रैन सवासन शोभित, चरण चन्द्रमणि चूडा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल, कतओ उगलि कय कूडा।।

साँवर वरन नयन अनुरंजित, जलद जोग फूल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुर फेन उठि फोका।।

घन-घन घनन घुँघरू कत बाजय, हन-हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरू जनु माता।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि ने भैरवी की स्तुति की है। भैरवी पार्वती का ही एक रूप है,जो चामुण्डा काली के नाम से भी जानी जाती हैं। देवी का यह रूप असुरमर्दिनी का है जो दैत्यों का विनाश कर भक्तों को राहत देती है।

अर्थ : कवि देवी की आराधना करते हुए कहते हैं असुरों को भयभीत करने वाली देवों के देव महादेव अर्थात भगवान शिव की अर्द्धांगिनी,हे महामाया,तुम्हारी जय हो। कवि कहता है कि हे गोस्वामिनी , मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ,कृपा कर मुझे ऐसी सुमति दो देवी कि मैं दिन-रात आपके ही चरणों में अनुरक्त रहूँ, आपका ही अनुसरण करूँ। मेरा मन इधर-उधर न भटके। कवि कहते हैं देवी भैरवी के चरण नित्य ही शवों के ऊपर रहते हैं। केशों में चन्द्रकांत मणि विराजमान रहती है। देवी भैरवी ने कितने ही दैत्यों को मारकर निगल लिया है ,कितनों को मुँह में डालकर दाँतों से कुचल कर उगल दिया है। देवी का सलोना श्यामवर्ण है,नेत्र रक्तिम लाल हैं,जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलों में कमल खिले हों। दाँतों की किटकिटाहट से विकट घोष कर रही हैं। उनके होंटो पर रक्त के झाग से बुलबुले उठते रहते हैं। पैरों में पहने घुंघरूओं की ध्वनि बादलों की गर्जन जैसी प्रतीत होती है। उनकी तलवार जिधर भी घूमती है,दैत्यों का वध करती है। कवि विद्यापति देवी से कहते हें कि वह उनके चरणों के सेवक हैं,वह अपने इस पुत्र को न भूलें,अपनी शरण में रखें।

विशेष:

- स्तुतिपरक पद है। देवी के असुरमर्दिनी रूप का सजीव चित्रण हुआ है।
- कवि ने देवी की प्रकृति के अनुरूप उन्हें विविध नामों से पुकारा है,जैसे भैरवि असुर भयाउनि(असुरों को भयभीत करने वाली) , पसुपति भामिनी (भगवान शिव की पत्नी),गोसाउनि(गोस्वामिनी अर्थात इन्द्रियों को वश में रखने वाली) आदि।
- भाषा मैथिल और शब्दावली तद्भव है। अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है। पद में गेयात्मकता है

बोध प्रश्न

1.विद्यापति की भाषा कौनसी है?

(अ) हिन्दी (ब)मैथिल (स) गुजराती(द) खड़ी बोली

2.विद्यापति ने किसकी कला को भला कहा है?

(अ)ब्रह्मा व विष्णु की (ब) विष्णु व इन्द्र की

(स) शिव व विष्णु की (द) इनमें से किसी की नहीं

3.रसराज किसे कहा जाता है?

(अ)शान्तरस को (ब)श्रृंगाररस को (स) वीररस को (द) वीभत्सरस को

4.निम्नलिखित में श्रृंगारी कवि कौन हैं?

(अ) कबीर(ब)तुलसी (स)मीरा (द) विद्यापति

6.8 सारांश

इस इकाई में आप संक्रांत काल के कवि विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतियों से परिचित हुए। आपने कुछ चयनित पदों की व्याख्या के माध्यम से उनके काव्य को समझा। उनके काव्य में व्यक्त भावों तथा अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य से आप परिचित हुए। आपने जाना कि विद्यापति अनेक राजाओं के दरबार में रहे। राज्याश्रय के कारण आपने विविध विषयों और भाषाओं के ज्ञान की वृद्धि की। जीवन का अधिकांश समय राज्याश्रय में बिताने के बावजूद आप आम जनता के कवि थे। हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में आपका स्थान अग्रणी है। आप हिन्दी, संस्कृत, बंगला, मैथिली और अपभ्रंश के न केवल अच्छे ज्ञाता थे वरन् आपने अपनी रचनाओं से इन सभी भाषाओं को समृद्ध भी किया है। आपके गीत भक्ति और श्रृंगाररस के अद्भुत उदाहरण हैं। आज भी मिथिलांचल में विशेष धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों में आपके गीत घर-घर में गाये जाते हैं, यही नहीं आपके गीत इंटरनेट पर यु-ट्यूब में भी सुने जा सकते हैं।

6.9 शब्दावली

रूढ़िसंत्रस्त	:	रूढ़ियों में जकड़ा हुआ
शास्त्रीय मार्ग	:	शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमानुसार व्यवहार
लोकमार्ग	:	सामान्य लोगों द्वारा निर्धारित नियमानुसार व्यवहार
लोकाचार	:	समाज में आपसी व्यवहार
पदविन्यास	:	पदों की बनावट
देसिल बअना	:	स्थानीय भाषा (मैथिली भाषा से तात्पर्य है)
प्रक्षेप	:	बाद में जोड़ा गया
शैव	:	शिव को पूजने वाले

शाक्त : शक्ति (देवी) की उपासना करने वाले

पंचदेवोपासक : पंचदेवों में विष्णु, शक्ति, सूर्य,शिव और गणेश जो क्रमश: आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल के अधिपति हैं। ये ही पंचतत्व हैं। इनकी उपासना करने वाले पंचदेवोपासक माने जाते हैं।

पदावली : पदशैली में लिखित काव्य को पदावली कहते हैं।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क मैथिल कोकिल

ख बिसपी

ग मिथिला

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ . विद्यापति ओईनवार राजवंश की लखिमादेवी (देई) (ख) विश्वासदेवी और (ग) धीरमतिदेवी रानियों के सलाहकार रहे हैं?

ब . विद्यापति के पांच उपनाम अभिनव जयदेव, कविराज, कविकण्ठहार, मैथिल कोकिल,दशावधान हैं।

स . कहा जाता है कि विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकांता भी अच्छी कविता करती थी।

3 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ) (√)

ब) (×)

स) (√)

द) (√)

6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 जुयाल,डा. गुणानन्द, विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली , पृ0300 खण्ड 3

3. दीक्षित, डा. आनन्दप्रकाश, विद्यापति, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर

4. नागार्जुन , नागार्जुन ग्रन्थावली, राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली

5 . वर्मा, डा. धीरन्द्र , हिन्दी साहित्य कोश, पृ .532 , ज्ञानमंडल वाराणसी

6 . विकिपीडिया

6.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

जुयाल डा. गुणानन्द विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

सिंह,डा. शिवप्रसाद विद्यापति, विद्यापति, लोकभारती प्रकाशन

बेनीपुरी,रामवृक्ष विद्यापति पदावली, पुस्तक भंडार लहरिया सराय,बिहार

झा,रमानाथ विद्यापति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. विद्यापति के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विस्तृत प्रकाश डालिए।

2. विद्यापति को मैथिल कोकिल क्यों कहा जाता है, स्पष्ट कीजिए तथा विद्यापति की भक्ति भावना पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 7अमीर खुसरो : परिचय एवं स्वरुप

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 अमीर खुसरो: जीवन एवं साहित्य
7.3.1 अमीर खुसरो का जीवन परिचय
7.3.2 अमीर खुसरो का साहित्य
7.4 अमीर खुसरो: पाठ एवं आलोचना
7.4.1 अमीर खुसरो: पाठ
7.4.2 अमीर खुसरो: आलोचना
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के उद्भव, उसकी सम्पूर्ण परम्परा एवं आतंरिक प्रक्रिया को समझा. इस के अलावा आपने हिन्दी कविता के आरंभिक काल, उसकी सम्पूर्ण पृष्ठभूमि एवं उसकी काव्य-संवेदना को भी समझा.

यह इकाई अमीर खुसरो के जीवन एवं साहित्य से संबन्धित है। इसमें आपका परिचय अमीर खुसरो के जीवन और साहित्य से कराया जा रहा है। इस भाग में अमीर खुसरो के जीवन, राजाओं के राजाश्रय एवं साहित्य कर्म पर विचार किया जायेगा। इस भाग में आप सकेंगे की खुसरो मात्र एक कवि ही नहीं थे अपितु एक पहुँचे हुए सूफी साधक भी थे । उनकी राजनैतिक समझ जितनी स्पष्ट थी उससे कहीं ज्यादा जन-सामान्य के रीति-रीवाजों की परख थी। इस बहुमुखी विशेषता के कारण ही उनको 'तूती-ए-हिन्द' की उपाधि से विभूषित किया गया।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. अमीर खुसरो का जीवन चरित समझ सकेंगे .

2. अमीर खुसरो के काव्य को समझ सकेंगे .

3. खड़ी बोली हिन्दी के विकास में उनका योगदान समझ सकेंगे.

4. सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत अमीर खुसरो का महत्व एवं उनकी प्रासंगिकता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

7.3 अमीर खुसरो : जीवन एवं साहित्य

7.3.1 अमीर खुसरो का जीवन परिचय-

अमीर खुसरो का जन्म 1253 ई. (652 हि0) में उ0प्र0 के एटा जिले के पटियाली कस्बे में हुआ था। इनके पिताजी मध्य एशिया की लाचन जाति के एक तुर्क सरदार थे । चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर उन्होंने बलबन के शासनकाल में भारत में शरण लिया। खुसरो की माँ बलबन के एक मंत्री इमादुतुल मुल्क की लड़की, भारतीय मुसलमान थी। खुसरो मात्र सात वर्ष के थे तभी इनके पिता की मृत्यु हो गयी, परन्तु इससे इनकी शिक्षा-दीक्षा पर कोई असर नहीं पड़ा। खुसरो ने अपने समय के विज्ञान और दर्शन में शिक्षा ग्रहण किया और काव्य-लेखन में रूचि पैदा की। बीस वर्ष की अवस्था तक वे एक कवि के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे ।कवि होने के कारण खुसरो कपोल-कल्पना में जीवित रहने वाले व्यक्ति न थे । सामाजिक जीवन से उनका गहरा सरोकार था और वे व्यवहारिकता में भी दक्ष थे ।कवि होने के कारण जहाँ उनके पास घोर कल्पनाशक्ति थी वहीं सामाजिक होने के कारण व्यवहारकुशल और कूटनीतिज्ञ भी थे । इनके व्यक्तित्व की विशेषता बतलाते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''ये बड़े ही विनोदी, मिलनसार और सहृदय थे , इसी से जनता की सब बातों में पूरा योग देना चाहते थे ।

आदिकालीन परम्परा के अनुसार कलाकार और बुद्धिजीवियों के जीविका का सर्वोत्तम उपाय राजाश्रय था। अमीर खुसरो ने भी अपने समकालीन राजाओं का आश्रय ग्रहण किया। इन्होंने दस से अधिक राजाओं के आश्रय में रहकर जीवन-यापन किया। इनके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता यह है कि इतने अधिक शासकों के राजाश्रय में रहने के बावजूद वे कभी भी दरबारी राजनीति के कुचक्रों का अंग नहीं रहे। इन सबसे मुक्त रहते हुए वे एक कवि, संगीतज्ञ, कलाकार और सैनिक के रूप में अपना जीवन-यापन करते रहे। खुसरो प्रसिद्ध सूफी संत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। उनके अन्दर अपने समय की राजनीति, धर्म और लोकव्यवहार को लेकर एक अजीब तरह का अन्तर्विरोध पाया जाता है। इस पर प्रकाश डालते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है ''खुसरो में अनेक अन्तर्विरोध थे। एक ओर वे मलिक छज्जू जलालुद्दीन, अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक आदि के राजकवि थे तो दूसरी ओर सूफी फकीर निजामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्य। एक ओर दरबार था तो दूसरी ओर मठ। एक ओर वे कट्टर बादशाहों और मुल्लाओं से घिरे थे तो दूसरी ओर सूफी फकीरों से। एक ओर वे फारसी लिखते थे तो दूसरी ओ खड़ी बोली में। एक ओर अलाउद्दीन की कट्टरता की प्रशंसा करते थे तो दूसरी ओर सूफी फलसफे के प्रकाश में वीरानगी के सुलतान पर मरसिया पढ़ते थे।''खुसरो एक साथ कई विधाओं के जनक थे। इस संदर्भ में उनको बहुमुखी प्रतिभा का धनी कहा जाता है। वे बहुभाषाविद्, संगीतकार और इतिहासकार थे। भाषा के संदर्भ में वे अरबी, फ़ारसी, तुर्की में पारंगत थे। संस्कृत भाषा का उन्हें ज्ञान था, हिन्दी, उर्दू साहित्य के वे प्रणेता माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे भारत की कई क्षेत्रीय भाषाओं के भी जानकार थे। संगीत की दुनियाँ में भी उन्होंने कई आविष्कार किया। इसमें राग-रागिनियों से लेकर वाद्ययंत्र् तक सभी सम्मिलित हैं। वे संगीत के क्षेत्रों में अपनी परम्परा के साथ-साथ कई मौलिक उद्भावना भी की है। इन्होंने अरबी, फारसी और हिन्दी लयों के मिश्रण से कई रागों का आविष्कार किया जिसमें मुख्यतया-मजीर साजगिरी, एमन, उषआक, सनम है। इसके अतिरिक्त खुसरो ने सितार और ढ़ोलक जैसे वाद्य यंत्रों का भी आविष्कार किया।

कवि, संगीतज्ञ और भाषाविद होने के साथ-साथ अमीर खुसरो प्रसिद्ध इतिहासकार भी थे। इनका प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थ 'तुगलकनामा' है। इसमें उन्होंने दिल्ली नरेश गियासुद्दीन तुगलक के समय का इतिहास लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत सी ऐसी मसनवियों की रचना की है जो कि इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनमें मुख्यतः- किरानुस्सादैन, खिजर खाँ, नुहासिपहर और इशकिमह है। इन पुस्तकों के अध्ययन से आपको तात्कालीन जीवन तथा घटनाओं के संदर्भ में विशेष ज्ञान प्राप्त होगा। इन ग्रन्थों में आपको जीवन के ऐसे-ऐसे सांस्कृतिक तत्व प्राप्त होंगे जो कि प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में अप्राप्य है।अमीर खुसरो और उनके गुरू निजामुद्दीन औलिया का आपस में आत्मीय संबन्ध था। गुरु को अपने शिष्य के सद्व्यवहार और विद्वता पर गर्व था। शिष्य को अपने गुरु की आध्यात्मिकता और वैराग्य से लगाव था। इसलिए दोनों एक-दूसरे का बहुत आदर करते थे। कहते हैं कि जब निजामुद्दीन औलिया का देहान्त हुआ तो उस समय अमीर खुसरो गयासुद्दीन तुगलक के साथ बंगाल गये हुए थे। उन्हें जब अपने गुरु के मृत्यु की खबर मिली तो वे बंगाल से रोते-बिलखते हुए आये और पागल की भाँति निम्न दोहा पढ़ते हुये उनकी कब्र पर बेहोश होकर गिर पड़े-

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।

इस घटना के पश्चात् खुसरो के पास जो कुछ धन-सम्पत्ति थी उसको गरीबों में बाँट दिया और स्वयं काला कपड़ा पहनकर औलिया की मजार पर बैठे रहते थे। गुरू की मृत्यु से वे इतने आहत हुए की छः माह के अंदर ही स्वयं स्वर्ग

सिधार गये (1325 ई.)। दोनों गुरू शिष्य की कब्र दिल्ली में आस-पास बना दी गयी। आज भी हर साल उनकी कब्र पर उर्स होता है और मेला लगता है।

7.3.2 खुसरो का साहित्य-

खुसरो हिन्दी साहित्य के आदिकालीन कवियों में प्रमुख हैं। आदिकालीन साहित्य में सर्वप्रथम उन्हीं की रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। उन्होंने विभिन्न प्रकार के पुस्तकों की रचना की है। इसमें इतिहास, जीवनी, साहित्य प्रमुख हैं। खुसरो फारसी के उच्चकोटि के विद्वान थे और फारसी में उन्होंने बहुत-सी मसनवियों की रचना की है। इन मसनवियों के माध्यम से उन्होंने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम का संदेश दिया है। उनकी कुछ प्रमुख मसनवियाँ इस प्रकार हैं- किरानुस्सादैन, नुहसिपहर, तुलकनामा, खम्स-ए- खुसरो ये सभी मसनवियाँ फारसी में लिखी गयी हैं। परन्तु इनका प्रभाव परवर्ती हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा के साहित्य पर देखा जा सकता है। इस दृष्टिकोण से ये महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दी में खुसरो की तीन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है- खालिकबारी, हालात-ए-कन्हैया और नजराना -ए-हिन्दी। इसमें से मात्र खालिकबारी ही उपलब्ध है। अन्य पुस्तकों का सिर्फ नामोल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ प्रचलित हैं। खालिकबारी के भी सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का विचार है कि यह प्रामाणिक रचना नहीं है।

7.4 अमीर खुसरो: पाठ एवं आलोचना

7.4.1 अमीर खुसरो: पाठ

अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से दोहे, पहेलियाँ, गीत, दो सुखने, ढकोसले इत्यादि की रचना की है। खुसरो को हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का प्रथम कवि माना जाता है। वास्तव में वे फारसी के प्रसिद्ध कवि हैं। फारसी साहित्य में उनकी गणना महाकवि फिरदौसी, शेख सादिक और निजामी के साथ की जाती है। फलस्वरूप उनकी कविताओं में फारसी शब्दों की बहुलता पायी जाती है, वैसे उन्होंने कई स्थलों पर स्वयं को हिन्दी का कवि माना है-

तुर्क-ई-हिंदुस्तानिम मन, दर हिंदवी गोयम जवाब

शक्कर-ई-मिस्त्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन।

(अर्थात् मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, मैं हिन्दवी में जवाब देता हूँ, मेरे पास कोई मिश्री शक्कर नहीं जिससे मैं अरबों की बात करूँ)।

दोहे- अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से दोहों की भी रचना की है। इन दोहों की विशेषता है कि उसका सामान्य अर्थ करेंगे तो उसमें श्रृंगार की प्रधानता दिखायी पड़ेगी परन्तु जब उसे सूफी मत के आलोक में देखेंगे तो उसमें आध्यात्मिक संदेश दिखायी पड़ेगा-

1. गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस,

चल खुसरो घर आपनें रैन भई चहुँ देस।

(यह दोहा खुसरो ने अपने गुरू औलिया की मृत्यु के पश्चात् लिखा था। इसका आशय यह है कि इस संसार में इंसान का एकमात्र मार्गदर्शक गुरू होता है। उसके न रहने पर मनुष्य के लिये सम्पूर्ण संसार अंधकारमय हो जाता है।)

2. खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग,

तन मेरा मन पीऊ का, दोउ भये एक रंग।

(यह दोहा सूफी मत के अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन का संदेश देता है। आत्मा और परमात्मा के परस्पर साक्षात्कार के पश्चात् उनके मध्य का द्वैत समाप्त हो जाता है और साधक मस्त रहने लगता है। सूफी साहित्य की विशेषता होती है कि इसमें लौकिक स्त्री-पुरुष प्रेम के माध्यम से कवि अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। उक्त दोहे में भी खुसरो ने इसी शैली का प्रयोग किया है।)

ग़ज़ल- अमीर खुसरो को गजल का जन्मदाता माना जाता है। उनके हिन्दी गजलों में अभिनव प्रयोग देखने को मिलता है। इसमें उन्होंने एक पंक्ति फारसी की तो दूसरी पँक्ति साधारण बोलचाल की हिन्दी में लिखा है। ऐसे में उन्होंने अरबी, फारसी और हिन्दी के शब्दों का प्रयोग किया है-

जे हाल मिस्कीं मकुन लगाजल दुराय नैना बनाए बतियाँ।

के तावे हिजरां नदारम अय जाँ न लेहु कहे लगाय छतियाँ।।

शबाने-हिजराँ दराज चूँ जुल्फ बरोजे वसलत चूँ उम्र कोताह।

सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अंधेरी रतियाँ।।

(अर्थात् आँख छिपाकर और बातें बनाकर दुखियों की दशा की अवहेलना मत करो। ऐ मेरी जान, मैं विरह के सहने में असमर्थ हूँ। इसलिए क्यों नहीं छाती से लगा देतीं। विरह की राते जो जुल्फ की तरह लम्बी हैं, मिलन का दिन उम्र की तरह छोटा है। ये सखी ! जो मैं पिया को न देखूँ तो अंधेरी रातें कैसे काटूँ?)

पहेलियाँ- अमीर खुसरो ने भारतीय लोक परम्परा में प्रचलित पहेली शैली को भी अपनाया है। पहेली खेल की तरह होता है जिसमें किसी वस्तु के समस्त लक्षण बता दिये जाते हैं, उत्तर देने वाले को लक्षण के आधार पर वस्तु को पहचानना होता है, जैसे-

1. श्याम बरन पीतांबर कांधे , मुरलीधर नहीं होय।

बिन मुरली वह नाद करता है, बिरला बूझे कोय।। **(भौरा)**

2. एक पुरुष बहुत गुन भरा, लेटा जागे सोवे खड़ा।

उलटा होकर डाले बेल, यह देखो करतार का खेल ।। **(चरखा)**

3. फारसी बोली आईना, तुर्की बोली पाईना।

हिन्दी बोली आरसी आये, मुँह देखो जो उसे बताये।। **(दर्पण)**

मुकरिया- मुकरना अर्थात् नकारना, लोक प्रचलित वह शैली जिसमें उत्तर को नकार कर कुछ नवीन अर्थ प्रस्तुत करना। अमीर खुसरो ने बहुत-सी मुकरियों को भी लिखा है। यह भी पहेली के ही समान होता है। परन्तु इसका उत्तर कुछ अटपटा होता है, जिससे पहेली से इसमें भिन्नता आ जाती है-

1. वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय।

मीठे लागैं वाके बोल। ऐ सखि साजन! ना सखि ढोल।।

2. सारी रैन मोरे संग जागा। भोर भई तब बिछुड़न लागा।

वाके बिछुड़त फाटे हिया। ऐ सखि साजन! ना सखि दिया।।

दोसुखना- दोसुखने में प्रश्नकर्ता किसी ऐसे दो प्रश्नों को पूछता है जिसका उत्तर एक ही होता है। उदाहरणार्थ-

1. जूता क्यों न पहना? समोसा क्यों न खाया? - तला न था।
2. पंडित क्यों पियासा? गदहा क्यों उदासा? - लोटा न था।
3. पान सड़ा क्यों? घोड़ा अड़ा क्यों? - फेरा न था।

गीत- अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से गीतों की भी रचना की है। इसमें कुछ गीतों के अर्थ तो लौकिक हैं जबकि कुछ गीतों का अर्थ सूफी विचारधारा के अनुसार आध्यात्मिक है। उदाहरणार्थ-

1. बहुत कठिन है डगर पनघट की-

कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी-

मोरे अच्छे निजाम पिया-कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी-

जरा बोलो निजाम पिया-पनिया भरन को मैं जो गयी थी-

दौड़ झपट मोरी मटकी पटकी-बहुत कठिन है-

खुसरो निजाम के बल-बल जाइये-लाज राखो मेरे घूँघट पट की-

2. काहे को ब्याही बिदेस रे-लयि बाबुल मोरे।

भैया को दीनो महल दोमहलों , हमको दिया परदेस-

लखि बाबुल मोरे।

हम तोरे बाबुल बेले की कलियाँ, घर-घर माँगी जाये रे

लखि बाबुल मोरे।

डोली के परदा उठाकर जो देखा, आया पराया देस रे

लखि बाबुल मोरे।

अमीर खुसरो यूँ कहें तेरा धन-धन भाग सुहाग रे

लखि बाबुल मोरे।

निम्नलिखित गीत के संदर्भ में कहा जाता है कि खुसरो ने इसमें अपने गुरू औलिया के साथ दाम्पत्य भाव का रूपक बाँधकर आत्मा और परमात्मा का संबन्ध स्थापित किया है-

परबत बास मंगाव मोरे बाबुल नीका मड़ुवा छवावो री।
डोलिया फंदाय पिया ले चले हैं, अब संग कोई नहीं आवरी।।
गुडिया खिलौना ताक में रह गए, नहीं खेलन को दाव री।
निज़ामदीन औलिया बहिया पाकर चले , धरिहों वाके पाव री।।

7.4.2 आलोचना

हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में खुसरो का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य से आशय उसकी अन्य क्षेत्रीय भाषाओं- ब्रज, अवधी, बुन्देली, भोजपुरी, मैथिली और खड़ी बोली का भी साहित्य है। परन्तु आज हिन्दी का प्रतिनिधित्व खड़ी बोली हिन्दी करती है। इस भाषा का साहित्य के रूप में पहला प्रयोग अमीर खुसरो के यहाँ मिलता है। विद्वानों का विचार है, इतनी परिमार्जित भाषा का प्रयोग साहित्य में अचानक नहीं हो सकता। खुसरो से पहले भी इसका प्रयोग होता रहा होगा, परन्तु जो साक्ष्य अभी प्राप्त होते हैं, उसमें सर्वाधिक प्राचीन साहित्य खुसरो का ही है। अतः जब तक अन्य कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता तब तक खुसरो को खड़ी बोली का पहला साहित्यकार माननें में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

खड़ी बोली को हिन्दवी, देहलवी अथवा हिन्दी नाम से सर्वप्रथम खुसरो ने ही सम्बोधित किया है- 'तुर्के हिन्दुस्तानियम मैं हिन्दवी गोयम जवाबी'। खुसरो ने खड़ी बोली का नामकरण 'हिन्दी' अपने ग्रन्थ 'खालिकबारी' में किया है। इस पुस्तक में 'हिन्दवी' शब्द 30 बार और हिन्दी शब्द 5 बार प्रयुक्त किया गया है। कुछ लोगों का विचार है कि इतिहास प्रसिद्ध जिस खुसरो का उल्लेख किया जाता है, वह हिन्दी का कवि था ही नहीं। उनके नाम से कुछ रचनाएँ प्रचलित हो गई हैं, जिन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। वास्तविकता क्या है, इसे प्रमाणिक ढंग से नहीं सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु जो कुछ साक्ष्य प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर हम इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि खुसरो खड़ी बोली के आरम्भिक कवि थे ।हिन्दी भाषा से अमीर खुसरो का गहरा लगाव था, इसका प्रमाण उनके इस उद्धरण में निहित है-''हिन्दी फारसी से किसी प्रकार कम नहीं है। जो लोग हिन्दी का महत्व कम समझते हैं, वे नादान हैं। हिन्दी अरबी के समान है, क्योंकि इन दोनों में कोई मिश्रित नहीं है। शब्द-भण्डार और विचारों की दृष्टि से भी हिन्दी कम नहीं है। हिन्दी में बहुत-से ऐसे शब्द हैं, जो छोटे होने पर भी अर्थ की गम्भीरता रखते हैं। वे एक बूँद में समुद्र की शक्ति रखने वाले हैं। जिन लोगों ने हिन्दुस्तान की गंगा को नहीं देखा है, वे नील और दजला पर अभिमान कर सकते हैं। जिन्होंने केवल बुलबुल की सुन्दरता को देखना सीखा है, वे हिन्दुस्तान के तोते के महत्व को क्या समझ सकते हैं? मैं इन तीनों भाषाओं को जानता हूँ, इसलिए ऐसा कह रहा हूँ।''

अमीर खुसरो की एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'खालिकबारी' है। यह शब्दकोश है। इसमें उन्होंने काव्यात्मक ढंग से अरबी-फारसी-हिन्दी भाषाओं का अर्थ बतलाया है। इस पुस्तक की रचना उन्होंने मुहम्मद बिन तुगलक के लड़के को भाषा का ज्ञान कराने के लिये किया था। इस पुस्तक की प्रमाणिकता विवादास्पद है। विवादास्पद होने के बावजूद इस पुस्तक का बहुत महत्व है। आज से आठ-नौ सौ वर्ष पहले एक ऐसी पुस्तक जिसके माध्यम से व्यक्ति अरबी, फ़ारसी और हिन्दी का अर्थ समझ सके महत्वहीन नहीं हो सकती। हिन्दी भाषा के संबंध में इस पुस्तक में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के कालगत रूपों की प्रमाणिक जानकारी मौजूद है।खालिकबारी में हिन्दी भाषा के जो छंद प्राप्त होते हैं उनमें लयभंग है। फारसी भाषा में जो छंद हैं, उनकी लयात्मकता मौजूद है। इस आधार पर स्पष्टतः हम कह सकते हैं कि इस पुस्तक की रचना सर्वप्रथम फारसी में हुयी थी, फिर आवश्यकता पड़ने पर उसे हिन्दी में परिवर्तित किया गया। छंदों की लयात्मकता और नाद सौन्दर्य के आधार पर यह बात प्रमाणित होती है कि इसका रचयिता कवि था। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है- रसूल पैगम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोले जो ईठ।।

मर्द मनस जन है इस्तरी। कहत अकाल बबा है मरी।।
बिया बिरादर आव रे भाई। बिनशी मादर बैठरी माई।।
तुरा बुगुफतम मैं तुझ कह्या। मुजा बिमदीतू कित रह्या।।
राह तरीक सबील पहचान। अर्थ तिहू का मारग जान।।

अमीर खुसरो की पहेलियों का भारतीय संदर्भ में काफी महत्व है। इसके माध्यम से हम भारतीय संस्कृति की झलक पाते हैं। इसमें लोक-परम्परा, प्रकृति-चित्रण , मनुष्य स्वभाव, जीव-जन्तु, जाति-बिरादरी, तीज-त्यौहार इत्यादि का वर्णन किया गया है। श्रृंगार भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण वर्ण-विषय रहा है। इसमें श्रृंगार-प्रसाधनों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसकी अलग-अलग विशेषता प्रकट करना खुसरो की पहेलियों में दिखायी पड़ता है। काजल को महत्त्वपूर्ण श्रृंगार-प्रसाधन माना जाता है। इसके संदर्भ में खुसरो ने एक पहेली की रचना की है-

आदि कटे से सबको पाले । मध्य कटे तो सबको मारे।।

अंत कटे तो सबको पीठा। खुसरो वाको आंखो दीठा।।

मुस्लिम साम्राज्य में पर्दा प्रथा का विशेष प्रचलन था। पर्दे भी रंग-बिरंगे हुआ करते थे । वे आवरण का कार्य तो करते ही थे साथ-साथ सज्जा और श्रृंगार के साधन के रूप में भी स्वीकृत करते थे । पालकी में बैठी स्त्री को पर्दे के भीतर रखा जाता था, वह पर्दा भी अत्यंत आकर्षक होता था। राह चलता व्यक्ति उसके कारण आकृष्ट हो जाता था। श्रृंगार के लिये स्त्रियाँ हीरे, मोती, जवाहरात का बहुत उपयोग करती थी। इसका वर्णन खुसरो की पहेलियों में मिलता है। खुसरो ने अपनी एक पहेली में स्नानागार का एक मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है-

शुभ के कारज बना एक मंदर, पवन न जावे वाके अंदर।

इस मंदर की रीति दिवानी, बिछावै आग और ओढ़े पानी।।

खुसरो की पहेलियों में भारतीय जातियों का और उनके व्यवसाय का वर्णन किया गया है। भारतीय समाज की विशेषता है कि प्रत्येक जातियों का अपना परंपरागत व्यवसाय होता है। इस व्यवसाय का बहुत बारीक विश्लेषण खुसरो ने अपनी पहेलियों के माध्यम से किया है। इन जातियों में मुख्यतः बढ़ई, लुहार, धुनिया, कुम्हार, बरई, नाई हैं। इन जातियों के जीविकोपार्जन के लिये अपने कुछ औजार होते हैं। इनका वर्णन खुसरो ने इतनी प्रमाणिकता के साथ किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि खुसरो का इनके साथ गहरा लगाव रहा होगा। इन जातियों की

विशेषताओं को सूक्ष्मता के साथ प्रकट करने पर यह बात सिद्ध होती है कि खुसरो का लोकानुभव गहरा था।कुम्हार जाति उसके चाक और डोरे के संदर्भ में खुसरो ने अलग से एक-एक पहेली की रचना की है। सर्वप्रथम कुम्हार की विशेषता बतलाते हुये लिखा है-

कीली पर खेती करै औ पेड़ में दे दे आग।
रास ढोवै घर में राखे , वहाँ रह जाय राख।।
कुम्हार के चाक का वर्णन करते हुये लिखा है-
चार अंगुल का पेड़ सवा मन का छत्ता।
फल लगे अलग-अलग पक जाए इकट्ठा।।
कुम्हार के डोरे का वर्णन करते हुये लिखा है-
पानी में निसि दिन रहे जाके हाड़ न माँस।
काम करे तलवार का फिर पानी में बास।।

अमीर खुसरो ने अपनी पहेलियों में जीव-जन्तुओं का भी वर्णन किया है। इनमें मुख्यतया मोर, मधुमक्खी, भौंरा, बया का घोसला, बीर बहूटी और बिच्छु हैं। अमीर खुसरो को भारतीय पक्षियों में मोर अत्यधिक प्रिय है। यह भारतीय संस्कृति का प्रतीक भी है। इसका वर्णन करते हुए खुसरो ने लिखा है-

एक जानवर रंग-रंगीला, बिन मारे वह रोए।

उसकी मां पर तीन तलाकें जो बिना बताए सोए।।

मधु के छत्ते का वर्णन करते हुए लिखा है-

एक गांव सधा कूएं, कुएं कूएं पनिहार।

मूरख तो जाने नही चतुरा करै विचार।।

भौरा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है-

श्याम बरन पीताम्बर बांधे मुरलीधर ना होय।

बिन मुरली वो नाद करता है बिरला बूझे कोय।।

बिच्छू के विषय में लिखा है-

आगे से वह गाठ-गठीला पीछे से वह टेढ़ा।

हाथ लगाये कहर खुदा का बूझ पहेला मेरा।।

इसी के साथ उन्होंने भारतीय वृक्षों और वनस्पतियों का भी वर्णन किया है। आम का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है-

एक पुरुष जब मद पर आवै, लाखों नारी संग लिपटावै।

जब ओ नारी मद पर आवै, तब ओ नारी नर कहलावै।।

जामुन के बारे में लिखा है-

काजल की कजरौटी उधौ का श्रृंगार।

हरी डार पर मैना बैठी है कोई बूझनहार।।

निबौरी के बारे में लिखा है-

तरूवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।

बाप का उससे नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।।

आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।

अमीर खुसरो यूं कहै, अपनो नाम निबौरी।।

इसी प्रकार खुसरो ने मक्का और अरहर जैसी फसलों के विषय में भी लिखा है। अरहर को छरहरी नायिका के रूप में चित्रित करते हुए लिखा है-

गोरी सुन्दर पातली के सर कारे रंग।

ग्यारह देवर छोड़के चली जेठ के संग।।

इस दोहे में जेठ शब्द का 'श्लेष' प्रयोग किया गया है। एक जेठ तो बारह महीनों का जेष्ठ है। दूसरा पति का बड़ा भाई है। अरहर अषाढ़ में बोयी जाती है और जेष्ठ में काटी जाती है। इन पंक्तियों में यही दर्शाया गया है कि वर्ष के जो ग्यारह महीने हैं वो अरहर के देवर की तरह हैं। इसके अतिरिक्त जो दूसरा अर्थ ध्वनित हो रहा है। उसके अनुसार उस समय स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर जेठ के साथ भी निकल जाती थी। इसी तरह अमीर खुसरो ने दैनिक जीवन की ढेर सारी वस्तुओं को भी अपनी पहेलियों की विषय-वस्तु बनाया है। ताला का वर्णन करते हुये लिखा है-

बात की बात ठिठोली की ठिठोली।

मरद की गांठ औरत ने खोली।।

इसी तरह दियासलाई का वर्णन किया है-

पी के नाम से बिकत है, कामिनी गोरी गात।

एक बेर दो बेर सती भई, दिया न पूछे बात।।

भारतीय परम्परा में हुक्का पीना और सुरती खाना नाश के दो व्यसन है। इन पर भी अमीर खुसरो ने पहेलियों की रचना की है-

अग्निकुंड में घर किया और जल में किया निवास।

परदे परदे आवत है अपने पिया के पास।।

खुसरो के साहित्य में भारतीय लोकतत्त्व का विशिष्ट निरूपण किया गया है। उन्होंने अपने समकालीन रीति-रीवाज और परम्पराओं को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। इसी में एक प्रमुख परम्परा 'बाबुल गीत' की रही है। ग्रामीण क्षेत्र में लड़कियाँ सर्वप्रथम जब अपने पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर जाती हैं, उस समय उनका रोना एक अजीब करूणामय परिस्थिति का निर्माण करती है। यह 'बाबुल गीत' आज भी उत्तरी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में विदाई के समय गाया जाता है। इसी में से एक प्रसिद्ध 'बाबुल गीत' इस प्रकार है-

'काहे को बियाहे परदेस,

सुन बाबुल मोरे।

भइया को दीहे बाबुल महला-दुमहला,

हमके दिहे परदेस, सुन बाबुल मोरे।

मैं त बाबुल तेरे घूंटे की गइया,

हांका-हूंकी जाऊँ परदेस, सुन बाबुल मोरे।

मैं त बाबुल तेरे पिंजड़े की चिड़िया,

रात बसे उड़ जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।........'

यह स्वयं में एक आश्चर्य की बात है कि राजाओं-महाराजाओं के साथ महलों एवं नगरों में रहने वाले खुसरो को इन ग्रामीण परम्पराओं एवं जनसामान्य की मनोदशा को परखने की अकूत शक्ति थी। खुसरो के समय चिकित्सा पद्धति इतनी सर्वजन सुलभ न थी तो लोग वैद्य एवं हकीमों के पास जाया करते थे और वे ग्रामीण जड़ी-बूटियों के माध्यम से उपचार करते थे। खुसरो ने अपनी पहेलियों के माध्यम से रोगों के उपचार हेतु जड़ी-बूटियों का नुख्शा भी बतलाया है-

लोध फिटकरी मुर्दासंख। हल्दी जीरा यक-यक टंक।।

अफयून चना भर मिर्चे चार। उरद बराबर थोथा डाल।।

पोस्त के पानी पुटली करे। तुरत पीर नैनो की हरे।।

निःसंदेह पहेलियाँ और मुकरियाँ खुसरो की प्रसिद्धि का कारण है। इन पहेलियों और मुकरियों के अतिरिक्त खुसरो ने पर्व, उत्सव एवं ऋतुओं के अनुकूल गीतों की रचना की है। भारतीय परम्परा में खुसरो का और महत्वपूर्ण योगदान संगीत के क्षेत्र में है। उन्होंने भारतीय संगीत में कव्वाली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कव्वाली मुख्यतः अरब देश के संगीत की पद्धति थी, सूफी साधक इसके माध्यम से अपने आराध्य को खुश करते थे अथवा उसके मिलन-विरह के गीत गाया करते थे। अमीर खुसरो ने हिन्दी में कव्वालियों की रचना करके उसे लोकप्रिय बनाया।

उनके विषय में कहा जाता है कि वे न सिर्फ कव्वालियों के रचनाकार थे अपितु एक निपुण गायक एवं संगीतकार भी थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'रसापलुलएजाज' में भारतीय संगीत और संगीतकारों का उल्लेख किया है।

अमीर खुसरो ने जिस हिन्दी का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, उसका स्वरूप तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। यह भाषा मध्य देश के विशाल भूखण्ड में प्रचलित थी। परम्परा से राजस्थानी और ब्रज भाषा में साहित्य की रचना होती थी। परन्तु सम्पर्क का माध्यम खड़ी बोली थी। खुसरो ने जनसामान्य में प्रचलित इस लोक भाषा का साहित्य में प्रयोग करके एक अभिनव शुरूआत की थी। अमीर खुसरो फारसी के प्रकाण्ड पण्डित थे। फारसी भाषा में उन्होंने अनेकानेक रचनाएँ की हैं। मुसलमान और फारसी भाषा के ज्ञाता होते हुये भी अमीर खुसरो का जन्म भारत में हुआ था। उनको भारतीय प्रकृति, परिवेश, भाषा, संस्कृति और रीति-रीवाज से अनन्य लगाव था। वे अपनी रचनाओं में भारतीय भाषाओं, पर्वतों, नदियों, ऋतुओं पर्वो और उत्सवों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे भारतवर्ष को अपना देश मानने के साथ विश्व के अन्य देशों से इसे उत्कृष्ट बतलाया है- ''भारत संसार के सब देशों से श्रेष्ठ और खुरसान, कंधार, रोम और ईरान की अपेक्षा अत्यधिक सुन्दर है। भारत के फूल, भारत के नर-नारी, भारत के पशु-पक्षी अद्वितीय हैं। उनकी तुलना किसी और देश से नहीं की जा सकती, भारत तो स्वर्ग से भी रमणीय स्थान है- भारत का पक्षी मोर अपनी सुन्दरता में अप्रतिम है।'' इस तरह जाति, धर्म, देश, भाषा से ऊपर उठकर खुसरो ने सांस्कृतिक समन्वय का कार्य अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। इससे भी अधिक भारत देश से अपना लगाव प्रदर्शित करके खुसरो ने सच्चे राष्ट्रभक्त या देश-भक्त होने का प्रमाण दिया है।

बोध प्रश्न 1

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. अमीर खुसरो का जन्म...............नामक स्थान पर हुआ। (पटियाला/आगरा/दिल्ली)

2. अमीर खुसरो के गुरु का क्या नाम था?

   (1) कबीर (2) निजामुद्दीन औलिया (3) ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती

3. अमीर खुसरो की रचना कौन-सी है?

   (1) पृथ्वीराज रासो (2) खालिकबारी (3) कीर्तिलता

7.5 सारांश

इस इकाई में आपने अमीर खुसरो से संबन्धित विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में खुसरो का क्या योगदान एवं महत्त्व है। साथ ही आप ने जाना खुसरो जिस समय रचना कर रहे थे , वह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से काफी अस्थिरता का समय था। परन्तु उन्होंने परिस्थितियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया अपितु सभी चुनौतियों का साहस के साथ सामना किया। खुसरो एक साथ सैनिक, कवि, सूफी साधक एवं कुशल राजनीतिज्ञ थे। उनकी रचनाओं को पढ़ने पर आपको लोकव्यवहार का ज्ञान होगा, श्रृंगार के छींटे पढ़ेंगे , सूफी प्रेम का एहसास होगा।

खुसरो के साहित्य में ही आपको सर्वप्रथम खड़ी बोली हिन्दी का परितिष्ठित रूप दिखायी पड़ेगा। इस इकाई में आपको उक्त भाषा के कुछ नमूने भी दिखायी पड़ेगें।

7.6 शब्दावली-

हिन्दवी: भारत में रहने वाले मुसलमान फारसी लेखक हिन्द की देशी भाषा के लिए ‘हिन्दी’ या ‘हिन्दवी’ शब्द का प्रयोग करते हैं।

मुकरियाँ: मुकरना का अर्थ नकारना होता है। एक पद्य जिसमें पहले हाँ कहा जाए फिर उसका खण्डन किया जाय। इस लोकशैली का प्रयोग अमीर खुसरो ने अपने साहित्य में किया है।

खलिकबारी: अरबी, फारसी और हिन्दी का यह पद्यमय कोश है। इसकी रचना खुसरो ने की हे। इसके माध्यम से फारसी वाले हिन्दी सीखते थे और हिन्दी वाल्ो फारसी सीखते थे ।

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

क . रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. पटियाली

2. निजामुद्दीन औलिया

3. खालिकबारी

7.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री -

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

डॉ. बच्चन सिंह,हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

7.9 निबंधात्मक प्रश्न-

1. अमीर खुसरो का जीवन परिचय दीजिए तथा सिद्ध कीजिए अमीर खुसरो हिन्दु-मूस्लिम एकता के अग्रदूत थे ।

3. अमीर खुसरो का साहित्यिक परिचय देते हुए खड़ी बोली के विकास में उनके योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 8 भक्तिकालीन कविता का उदय

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण
8.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश
8.4.1 राजनीतिक परिस्थिति
8.4.2 आर्थिक परिस्थिति
8.4.3 सामाजिक परिस्थिति
8.4.4 सांस्कृतिक परिस्थिति
8.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप
8.6 भक्ति का उदय
8.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत
8.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद
8.7.2 द्वैतवाद
8.7.3 शुद्धाद्वैतवाद
8.7.4 द्वैताद्वैतवाद
8.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार
8.8.1 संत काव्य का दार्शनिक आधार
8.8.2 सूफी मत
8.9 भक्ति आन्दोलन
8.9.1 भक्ति आंदोलन: उदय एवं विकास
8.9.2 भक्ति आंदोलन: उदय के कारण
8.9.3 भक्ति आंदोलन: महत्व
8.10 भक्ति कालीन कविता का उदय
8.11 सारांश
8.12 शब्दावली
8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
8.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.16 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम लोग भक्ति कविता के आधार एवं जिस परिवेश में भक्ति कविता का जन्म होता है, की चर्चा करेंगे। साहित्य में भक्ति की धारा का प्रादुर्भाव सहसा नहीं होता। पूर्व परम्परा एवं युगीन परिस्थितियों दोनों मिलकर भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य को जन्म देती हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल सीमांकन एवं नामकरण, भक्तिकालीन युग एवं परिवेश, भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप भक्ति का उदय, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत,

निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति आंदोलन, भक्तिकालीन कविता का उदय-की विस्तृत विवेचना की जाएगी। दरअसल यह इकाई भक्तिकालीन कविता की पूर्व पीठिका के तौर पर है। उपरोक्त विभिन्न पक्षों के क्रमवार विवेचन द्वारा भक्तिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं धाराओं, उसकी पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझ पाना संभव होगा।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- पूर्व मध्यकाल की समय-सीमा एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- भक्तिकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता के दार्शनिक आधार को बतला सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के उदय, विकास एवं महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के उदय की व्याख्या कर सकेंगे।

8.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पूर्व-मध्यकाल की समय सीमा 1318 ई. से 1643 ई. तक निर्धारित की है। आचार्य शुक्ल के इस सीमांकन को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। आदिकालीन सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में दिखलाई पड़ने वाले भक्ति तत्व के आधार पर न तो इस काल की सीमा को पीछे खींचा जा सकता है और न ही रीतिकालीन, भक्तिकालीन रचनाओं के आधार पर इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में भक्ति का वह उन्मेष, वह तन्मयता नहीं दिखलाई पड़ती, जो भक्ति काव्य में निहित हैं। दूसरी तरफ रीतिकालीन भक्तिपरक रचनाएँ सरस तो हैं, किंतु उनमें अधिकांशतः भक्तिकाव्य का ही अनुकरण है। अतः उपलब्ध सामग्री के आधार पर आचार्य शुक्ल का सीमांकन ही सर्वथा उचित और ग्राह्य हैं। मोटे तौर पर हम पूर्व मध्यकाल को 14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक मान सकते है। क्योंकि आदिकालीन रचना प्रवृत्तियों का प्राघान्य 14वीं सदी के मध्य तक दिखलाई पड़ता है और 17वीं सदी के मध्य तक आते-आते साहित्य में भक्ति के स्थान पर रीति कालीन प्रवृत्तियों की प्रबलता दृष्टिगोचर होने लगती है।

पूर्वमध्यकाल का आचार्य शुक्ल ने भक्तितत्व की प्रधानता के आधार पर भक्ति काल नामकरण किया है। हम देखते हैं कि इस युग के कविता की मूल संवेदना भक्ति है। चाहे संतकाव्य हो या प्रेमाख्यानक काव्य, रामभक्ति मार्ग हो या कृष्ण भक्तिमार्ग -सबमें भक्ति की ही केन्द्रीयता है, भले ही भक्ति के स्वरूप में भिन्नता है। भक्ति के अतिरिक्त इस युग में वीरगाथा, नीति और रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति भी मिलती है। किंतु भक्तिपरक रचनाओं की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। नीति तो बहुधा भक्ति के साथ संयुक्त होकर आई है। अतः पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल कहना उचित ही है।

8.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश

युगीन परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को निर्मित करती है, उन्हें प्रेरित, प्रभावित करती हैं। रचनाकार जिस युग एवं परिवेश की उपज होता है। वह उससे उदासीन नहीं रह सकता। वह रचना में अपने युग के अभिव्यक्त ही नहीं करता, बड़ा रचनाकार युगीन सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने युग को नए मूल्य-मान, नया स्वप्न-संकल्प भी देता है। पूर्व मध्यकाल राजनीतिक सत्ता, सामाजिक अवस्था, सांस्कृतिक परिवेश में बड़े परिवर्तनों और उलट-फेर का काल है। मुसलमानों के आक्रमण एवं मुसलमानी सत्ता की स्थापना से पूरे समाज पर एक गहरा प्रभाव पड़ा, नयी आर्थिक-सामाजिक स्थितियाँ निर्मित हुई जो भक्ति आंदोलन के उदय में सहायक हुई। अतः भक्ति कालीन कविता को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय आवश्यक है। आइए हम क्रमवार इन्हें देखे-

8.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से तुगलकवंश से लेकर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन तक का काल है। दसवीं शताब्दी में पश्चिममोत्तर भारत में तुर्कों के कई आक्रमण हुए, तत्कालीन भारतीय राजाओं की आपसी फूट एवं प्रतिस्पर्धा के कारण धीरे-धीरे मुसलमानों का राज उत्तर भारत में स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गोरी के बीच 1192 में लड़े गए तराइन के युद्ध में गोरी की विजय होती है। पृथ्वीराज उस समय का सबसे प्रतापी राजा था। भारतीय इतिहास में यह युद्ध काफी निर्णायक माना जाता है, इस युद्ध ने भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित करने की जमीन तैयार कर दी। 1194 के चंदावर युद्ध में कन्नौज के शासक जयचंद को भी गोरी ने परास्त कर दिया। अब तुर्कों की ताकत से टकराने वाला कोई नहीं था। गोरी विजित भारतीय क्षेत्रों का शासन अपने गुलाम सेनापतियों को सौंपकर वापस गजनी लौट गया। 1206 में तुर्की गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में गुलाम वंश की नींव डाली। उधर गजनी में चल्दोज गोरी का उत्तराधिकारी बना, उसने दिल्ली पर अपना दावा पेश किया। तभी से दिल्ली सल्तनत ने गजनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे मध्य एशिया की राजनीति से अलग दिल्ली सल्तनत का अपना स्वतंत्र विकास हुआ। तुर्कों की अपनी सत्ता स्थापित करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। उन्हें तुर्की अमीरों के आतंरिक विरोध, राजपूत राजाओं और विदेशी आक्रमण से खतरा था। किंतु अन्ततः सभी बाधाओं पर काबू पा लिया गया और एक सुदृढ़ और विस्तृत तुर्की राज्य बना। बलबन गुलाम वंश का सबसे प्रभावशाली शासक सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन उसी के दरबार में रहते थे।

1290 से 1320 तक दिल्ली सल्तनत पर खिलजी वंश का शासन रहा। अदाउद्दीन खिलजी (1296-1316) ने अपनी आक्रामक नीति से जहाँ दिल्ली सल्तनत को दक्षिण तक फैलाया वहीं बाजार नियंत्रण, राजस्व-व्यवस्था के पुर्नगठन द्वारा शासन-व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान किया। अमीर खुसरों का उसका राजाश्रय प्राप्त था। 1320 में गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलक वंश की नींव डाली। गयासुद्दीन के पश्चात् मुहम्मद बिन तुगलक उत्तराधिकारी बना। मध्यकालीन सुल्तानों में वह सर्वाधिक योग्य, शिक्षित और विद्वान था। अपनी दो योजनाओं (1) दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तन (2) सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन के कारण वह इतिहास में प्रसिद्ध है। अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता उसी के शासन काल में भारत आया था। उसी के शासनकाल में विजयनगर और बहमनी राज्य नामक दो स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात् फिरोज तुगलक दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। वह अपने सुधार-निर्माण कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, उसने लगभग 300 नये नगरों की स्थापना की, जिनमें हिसार, फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर, फिरोजपुर आदि प्रमुख हैं। तुगलक वंश के पश्चात् 1398 में तैमूर का आक्रमण होता है, उसने दिल्ली को तहस-नहस कर दिया। दिल्ली सल्तनत पर क्रमशः सैय्यद और लोदी वंश का शासन रहा।

अंतिम लोदी सुल्तान इब्राहिम शाह लोदी के समय में पंजाब के शासक दौलत खां लोदी के निमंत्रण पर बाबर ने भारत पर आक्रमण। पानीपत के प्रथम युद्ध 1526 ई. में उसने इब्राहिक शाह लोदी को पराजित कर मुगल वंश की नींव डाली। पानीपत के पश्चात् खानवा, चंदेरी और घाघरा के युद्धों में विजय हासिल कर उसने मुगल राज्य को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बना दिया। बाबर एक सफल सेनानायक, साम्राज्य निर्माता ही नहीं अपितु एक साहित्यकार भी था, उसने 'बाबरनामा' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। 1530 में बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल संकटों और चुनौतियों से भरा रहा। 1540 में बिलग्राम युद्ध में अफगान वंशीय शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित कर आगरा, दिल्ली पर कब्जा कर लिया। हुमायूँ को सिंध भागना पड़ा। जहाँ उसे 15 वर्षों तक निर्वासित जीवन जीना पड़ा। शेरशाह एक कुशल योद्धा और शासक था। कुशल प्रशासन और केन्द्रीकृत व्यवस्था द्वारा उसने व्यापार को बढ़ावा दिया, उसने ग्रांड ट्रक रोड की मरम्मत करवाई, पाटिलपुत्र को पटना के नाम से पुनः स्थापित किया, डाक प्रथा का प्रचलन करवाया। 1545 में कालिंजर के किले को जीतने के क्रम में उसका असामयिक निधन हो गया। मौका पाकर 1555 में हुमायूँ पंजाब के शूरी शासक सिकंदर को पराजित कर पुनः दिल्ली पर कब्जा करने में सफल रहा। 1556 में पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। उसी वर्ष पंजाब के कलानौर में 13 वर्ष की अल्पायु में हुमायूँ के पुत्र अकबर का राज्याभिषेक हुआ। 1556-60 तक बैरम खाँ उसका संरक्षक रहा। अकबर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य भलीभाँति भारत में स्थापित हो गया। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक विस्तृत था। वह दूरदर्शी, उदार और साहित्य-कला का संरक्षक शासक था। अकबर के पश्चात् जहाँगीर (1605-1627) और शाहजहाँ (1628-58) बादशाह बनते हैं। इनका शासनकाल प्रायः शांतिपूर्ण रहा यह व्यापार-वाणिज्य साहित्य, कला, संस्कृति के उन्नति का काल था। सल्तनत काल में विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, काश्मीर बंगाल, मालवा, गुजरात, मेवाड़, खानदेश स्वतंत्र राज्य भी थे, कालांतर में इन पर मुगल साम्राज्य का आधिपत्य हो गया।

8.4.2 आर्थिक परिस्थिति

सल्तनत काल एवं मुगल काल में स्थिर एवं केन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई। कुछ अपवादों को छोड़ कर यह कालखण्ड प्रायः शांतिपूर्ण था। शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी, राजस्व वसूली की एक नियमित व्यवस्था थी। सुचारू प्रशासन के लिए मुगल साम्राज्य का बँटवारा सूबों में, सूबों का सरकार में, सरकार का परगना या महाल में, महाल का जिला या दस्तूर में, दस्तूर ग्राम में बँटे थे। केन्द्रीय प्रशासन के साथ स्थानीय शासन व्यवस्था भी थी। ये परिस्थितियाँ आर्थिक प्रगति में सहायक सिद्ध हुई। अलाउद्दीन, शेरशाह सूरी, अकबर ने भूराजस्व प्रणाली को व्यवस्थित बनाया। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। कृषि के विकास के लिए अलग से कृषि विभाग (दीवाने को ही) की स्थापना, उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण, सिंचाई हेतु नहरों का निर्माण कराया गया।

इस काल में आगरा, पटना, दिल्ली, जौनपुर, हिसार आदि कई नए नगरों का उदय हुआ। इससे कामगार, कारीगर वर्ग को रोजगार के लिए अवसर मिले और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। नए नगर व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र के रूप में भी विकसित हुए। तुर्कों के आगमन से भारत में कई नयी तकनीकि भी आई, जैसे चरखा, धुनकी, रहत, कागज, चुम्बकीय कुतुबनुमा, समयसूचक उपकरण, तोपखाना आदि। इसका प्रभाव उद्योग-धंधे एवं व्यापार पर पड़ा। वस्त्र उद्योग, धातु खनन, हथियार निर्माण, कागज निर्माण, इमारती पत्थर का काम, आभूषण निर्माण उस समय के प्रमुख उद्योग धंधे थे। आगरा नील उत्पादन के लिए, सतगाँव रेशमी रजाईयों के लिए, बनारस सोने, चाँदी एवं जड़ी काम के लिए, ढाका मलमल के लिए प्रसिद्ध था।

इस काल में व्यापार-वाणिज्य की खूब उन्नति हुई। व्यापक पैमाने पर नयी सड़कों का निर्माण एवं पुरानी सड़कों की मरम्मत कराया गया। सड़कों के किनारे सराय बनवाये गए। राहगीरों एवं व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। इसका सीधा प्रभाव व्यापार पर पड़ा। देशीय व्यापार के साथ विदेशी व्यापार की स्थिति भी अच्छी थी। यहाँ से सूती एवं रेशमी वस्त्र, चीनी, चावल, आभूषण आदि का निर्यात होता था। देवल अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह के रूप में प्रसिद्ध था।

निस्संदेह मध्यकाल में उद्योग, व्यापार में प्रगति हुई, कृषि में सुधार हुआ। किंतु गाँवों में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लगान और अकाल के कारण उन्हें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख से बेहाल किसान की पीड़ा को तुलसी ने व्यक्त किया है- 'कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।' उस समय यदि एक वर्ग खुशहाल था तो दूसरा वर्ग भूख, गरीबी, बेकारी से त्रस्त था, तुलसी लिखते हैं-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस,
कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी'।।

8.4.3 सामाजिक स्थिति

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचनाको बचाये रखने के लिए वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच-नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए।

उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था।

8.4.4 सांस्कृतिक स्थिति-

संस्कृति किसी देश समाज की मूलभूत प्रवृत्तियों उसकी सौन्दर्यबोधात्मक एवं मूल्यबोधों क्रियाकलापों-उपलब्धियों, उसके आचार-विचार का समन्वित रूप हैं। धर्म, कला, साहित्य, संगीत, शिल्प आदि संस्कृति के विभिन्न तत्व हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज धर्मप्राण समाज है। हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिक्ख उस समय

प्रचलित प्रमुख धर्म थे। बहुसंख्यक जनता हिंदू धर्मावलंबी थी। हिंदू धर्म भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि कई संप्रदायों में विभक्त था। इन विभिन्न संप्रदायों में परस्पर संघर्ष एवं सामंजस्य दोनों स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, बहुदेव उपासना, गौ एवं ब्राह्मण का सम्मान, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा, कर्मफलवाद, स्वर्ग-नरक की अवधारणा, आदि हिंदू धर्म एवं समाज की विशेषता थी। पश्चिम भारत में जैनियों की बहुलता थी, बौद्ध धर्म को मानने वाले पूर्वी भारत में ज्यादा थे। बौद्ध धर्म तंत्रयान, मंत्रयान, ब्रजयान आदि शाखाओं में विभक्त था, उसका मूल स्वरूप विकृत हो गया था और वह कई प्रकार की रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों का शिकार हो गया था। फलतः उसका पहले जैसा प्रभाव और आकर्षण नहीं रह गया था। सिद्धों और नाथों का तत्कालीन समाज पर गहरा असर था। धर्म का जहाँ तक शास्त्रीय रूप था, वहीं उसका एक लोकवादी रूप भी था स्थानीय देवताओं की पूजा, जादू-टोना आदि इसी के अंतर्गत आता है। मध्यकाल में साधनाओं एवं संप्रदायों की एक बाढ़ सी दिखलाई पड़ती है। धर्म के आवरण में मिथ्याचार, अनाचार, व्यभिचार भी पनप रहा था, धर्मक्षेत्र में एक अराजकता-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भक्ति आंदोलन का उदय और विकास होता है, जिसने भारतीय समाज को काफी गहरे तक प्रभावित किया।

इस काल में साहित्य, कला, वास्तु, संगीत में प्रगति दिखलाई पड़ती है। इस्लामी एवं भारतीय संस्कृति के मेल से कला की नयी शैलियों का जन्म होता है।

8.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

भक्ति पूर्व-मध्यकालीन साहित्य का मूलभूत तत्व है। आइए हम भक्ति को समझने की कोशिश करते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम, समर्पण की भावना ही भक्ति हैं। 'भक्ति' शब्द की निष्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'भजना'। अर्थात् ईश्वर का चिंतन-मनन, उसके गुणों का श्रवण-कीर्तन, उसकी सेवा करना। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर ईश्वर के प्रेम में डूबे रहना। भारतीय चिंतन परम्परा में ईश्वर-प्राप्ति, मोक्ष के तीन मार्ग बतलाए गए हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का सम्बन्ध व्रत, तप, जप, तीर्थ यज्ञादि कर्मकाण्डों से जिनका सम्यक् व्यवहार कर मनुष्य ईश्वर के सानिध्य-साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है। ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर विषयक तत्व-चिंतन से है, इसमें सम्यक ध्यान-समाधि द्वारा व्यक्ति ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है, इसके लिए न तो कर्मकाण्ड अपेक्षित है और न ही तत्व-चिंतन। भक्ति मार्गमें ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा-समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को 'परम प्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है- 'सात्वस्मिन परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूप च।' तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम जो अमृत के समान फलदायक है, वही भक्ति है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न, आत्माराम हो जाता है। नारद मुक्ति सूत्र में कहा गया है- ''उस परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है। उस भक्ति को प्राप्त करने के बाद मनुष्य को न किसी भी वस्तु की इच्छा रहती है न वह शोक करता है, न वह द्वेष करता है, न किसी वस्तु में ही आसक्त होता है। उस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करे वह प्रेम में उन्मत्त हो जाता है।'' 'शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र' में 'ईश्वर में परम अनुरक्ति' को भक्ति कहा गया है- ''सा परानुक्तिरीश्वरे''। अर्थात् ईश्वर के प्रति अत्यंत गहरी निष्ठा-प्रेम की अनुभूति-अभिव्यक्ति ही भक्ति है। ईश्वर प्राप्ति के जो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीन मार्ग बतलाए गए है, इनमें उत्कट राग की उपस्थिति भक्ति मार्ग में ही होती है। ज्ञान एवं कर्म मार्ग में प्रेम को केन्द्रीय महत्व नहीं दिया गया है। भक्ति पर व्यावहारिक लौकिक दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। भक्ति की व्याख्या करते

हुए वह लिखते हैं- ''जब पूजा भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनंद का अनुभव होने लगे-जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।'' (चिंतामणि, भाग-1, पृ0 26) स्पष्ट है कि शुक्लजी के मत में भक्ति के लिए ईश्वर के प्रति सिर्फ प्रेम भाव ही नहीं पूज्य भाव भी होना चाहिए, भक्त ईश्वर की महिमा-महत्व से अभिभूत रहता है, वह उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर, उन्हीं को अपना सर्वस्व मान लेता है।

भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम माध्यम माना गया है। सहज, साध्य होने के कारण ही आचार्यो ने भक्ति को प्रमुखता दी है-'अन्य स्मात् सौलभ्यं भक्तौ।' शास्त्रों में कहा गया है कि कलियुग में केवल ईश्वर के नामस्मरण द्वारा ही जीव का उद्धार हो जाता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को निष्काम कहा गया है, क्योंकि वह निरोध स्वरूप है। निरोध का अर्थ सांसारिक विषयों-प्रपंचों से विमुख होकर चित्त को पूर्णतया ईश्वरोन्मुख कर देना। भक्त मन, वचन, कर्म से अपना सर्वस्व अर्पित कर प्रभु को भजता है। उसके लिए शास्त्रीय विधि-विधान, लौकिक कर्मों का कोई महत्व नहीं है, भक्ति ज्ञानमूलक, कर्ममूलक न होकर भावमूलक है। नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है- 'वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठकर है, क्योंकि वह फलरूपा है अर्थात् उसका कोई अन्य फल नहीं है, वह स्वयं ही फल है।?' भक्ति ही भक्त का चरम लक्ष्य है, वह साधन भी है और साध्य भी। इस भक्ति की प्राप्ति प्रभुकृपा से होती है। भक्ति के लिए प्रभु का गुण श्रवण और कीर्तन-गान अनिवार्य तत्व है। नारद के अनुसार उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण समपर्ण और विस्मरण में परम व्यापकता होनी चाहिए- 'नारदस्तु तदर्पिताऽखिला चारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।' भक्ति के स्वरूप के संदर्भ में नारद ने कहा है- 'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है- गूंगे के स्वाद की तरह।.............वह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है। उस प्रेम को प्राप्त करके प्रेमी उस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है अर्थात् अपनी मन-बुद्धि इंद्रियों से केवल प्रेम का ही अनुभव करता हुआ प्रेममय हो जाता है।' आचार्य शुक्ल के अनुसार भक्ति सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी हो सकती है और ईश्वर के प्रति भी। ईश्वरीय भक्ति की विवेचना करते हुए उन्होंने लिखा है- 'भक्ति का स्थान मानव हृदय है- वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहे जा चुके हैं, उन्हीं को परमात्मा में अत्यंत विशद रूप में देखकर उसका मन खींचता है और वह उस विशद-रूप विशिष्ट का सीमाप्य चाहता है, उसके हृदय में जो सौन्दर्य का भाव है, जो शील का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है उसे वह अत्यंत पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरूष की भावना से उसका हृदय गदगद हो जाता है और उसका धर्मपथ आनंद से जगमगा उठता है। धर्म-क्षेत्र या व्यवहार पथ में वह अपने मतलब भर ही ईश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम, कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख एक हिंदू की सारी शुभ और आनंदमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती है, उसके प्रेम, श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलंब मिल जाता है। उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य और बल का संचार हो जाता है। उसके सामीप्य का आनंद लेने के लिए कभी वह उनके आलौकिक रूप-सौन्दर्य की भावना करता है, कभी उनकी बाल लीला के चिंतन से विनोद प्राप्त करता है, कभी-धर्म-वंदना करता है-यहाँ तक कि जब जी में आता है, प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह हृदय द्वारा अर्थात् आनंद अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने हो सुगम मार्ग है।' (चिंतामणि भाग-1, पृष्ठ 31) भक्ति के इस स्वरूप-प्रकृति के कारण ही शुक्ल जी ने भक्ति को ''धर्म की रसात्मक'' अनुभूति'' कहा है। दरअसल भक्ति ईश्वर के प्रति समर्पण की एक रागयुक्त प्रवृत्ति, अवस्था है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद्सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति का उल्लेख मिलता है। इसे ही नवधा भक्ति

कहा गया है। दरअसल ये प्रभु की भक्ति की विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। परम्परा में भक्ति के दो रूप बतलाये गए है- गौणी और परा। गौणी भक्ति के अंतर्गत देवपूजा, भजन-सेवा आदि प्रवृत्तियाँ आती है। पराभक्ति को सर्वश्रेष्ठ और सिद्धावस्था का सूचक माना गया है। गौणी भक्ति को साधकर ही भक्त पराभक्ति की अवस्था में पहुँचता है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं-वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्रानुमोदित विधि विधान पर आधारित है औरा रागानुगा भक्ति का आधार प्रेम अथवा राग है। रामागनुगा भक्ति के दो रूप है- संबंध रूपा और कामरूपा। विभिन्न सांसारिक संबंधों-भावों का ईश्वरोन्मुखीकरण ही सम्बधरूपा भक्ति है। भक्त ईश्वर से विभिन्न संबंध-भाव निवेदित-स्थापित कर भक्ति करता है इसके अन्तर्गत पाँच भावों को स्वीकारा गया है-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव। कामरूपा भक्ति कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है इसके अंतर्गत भक्त प्रणय या दांपत्य भावना से प्रभु की भक्ति करता है।

अब आप भक्ति के तात्विक स्वरूप से परिचित हो चुके है अब हम भक्ति के उदय की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे ।

8.6 भक्ति का उदय-

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एक क्रमिक विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का दैवीकरण, सुख-शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईश्वर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं-ये बातें हमें वैदिक ऋचाओं में भी मिलती हैं। परमात्मा की माता-पिता, बंधु-सखा के रूप में अर्चना की गई है-‘प्रभु! तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्हीं हमारी माता हो। हे अनंतज्ञानी! आपसे ही हम आनंद-प्राप्ति की अकांक्षा करते है-

‘त्व हि नों पिता वसोत्वं माता शतक्रतो वभूविथ। अद्या ते सुम्नमीमहे (ऋग्वेद 8/98/11)।’ पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मपण की भावना को प्रकट करते हुए ऋग्वेद का ऋषि कहता है-‘प्रभो ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्त। ये प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन-गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती हैं। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सौंपकर वैसे ही, निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चिंत होकर बैठ जाता है।’

इमें हि ब्रह्मकृतः सुते सचा मधो न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।। (ऋ. 7/32/2)

वेदों मं ईश्वर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बखान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया हैं-

यो भूतं च भव्यं च सर्व श्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः (अथर्ववेद-10 /8/1)

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम।’ उपनिषदों में तत्व-चिंतन की प्रधानता है- किंतु कहीं-कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, श्वेताश्वतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं, कठोपनिषद में

कहा गया है- 'यह आत्मा उत्कष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेघा के द्वारा प्राप्त, नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम॥'

'

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति। भक्ति चिंतन में ईश्वर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सृष्टि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है और उसी में सृष्टि विलीन हो जाती है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत।' अर्थात् 'जगत की सभी वस्तुएं ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं, ब्रह्म में ही अवस्थान करती है तथा ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। इस प्रकार चिंतन करते हुए मन को शांत रखकर उपासना करनी चाहिए।' छांदोग्य उपनिषद में ही भक्ति को सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस कहा गया है- 'स एवं रसानां रसतमः परम परार्धे।

उपनिषदों के बाद भक्ति की प्रबल धारा भागवत धर्म के रूप में प्रकट हुई। भागवत धर्म के प्रवर्तन के साथ ही अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ बहुदेवोपासना और लीलागान का प्रचलन हुआ। इसमें ईश्वर को ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज-इन 6 गुणों से युक्त माना गया, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण, भरण-पोषण और संहार करता है। अवतारवाद एवं भक्ति का पुराणों में विस्तृत वर्णन है। इनमें भागवत पुराण मुख्य है। दक्षिण के आलवार नयनार भक्तों ने भक्ति तत्व का प्रचार प्रसार किया, आठवीं सदी में शंकराचार्य के अद्वैत एवं मायावाद के कारण भक्ति का प्रवाह थोड़ा अवरूद्ध होता है। किंतु कालांतर में रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ने राम-कृष्ण की भक्ति को लोकप्रिय ही नहीं बनाया उसे एक सैद्धांतिक आधार प्रदान कर शास्त्रीय गरिमा भी दी।

इस प्रकार हम देखते है कि भक्ति का तत्व वेद उपनिषद महाभारत, पुराण आदि से होते हुए सतत् प्रवाहमान रहा, निरंतर विकसित होता रहा। भक्ति आंदोलन ने उसे व्यापक और लोकप्रिय बना दिया। अब आप भक्ति के उदय को समझ गए होंगे, वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति विषयक सिद्धांतों एवं भक्ति आंदोलन की आगे चर्चा की जाएगी।

8.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत

भक्ति के दार्शनिक पक्ष की स्थापना भक्ति आंदोलन की देन है। 8-9वीं सदी में शंकराचार्य दार्शनिक स्तर पर बौद्धों, जैनों से टकराते हैं और वैदिक धर्म को पुनप्रतिष्ठित करते हैं। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद कहलाता है। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। किंतु सांसारिक माया के कारण मनुष्य आत्मा-परमात के अद्वैत का अनुभव नहीं कर पाता है। ज्ञान द्वारा ही अपने आत्मस्वरूप को जाना जा सकता है। वह ज्ञान मार्गी हैं और निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद का परवर्ती वैष्णव आचार्यों द्वारा विरोध किया गया, उन्होंने ज्ञान की जगह भक्ति को प्रमुखता दी। शंकर ने माया वाद द्वारा जिस जगत को मिथ्या कहकर, खारिज कर दिया था, उस जगत को इन आचार्यों ने सत्य माना, ब्रह्म

का अंश मानते हुए उसे प्रभु की लीला भूमि के रूप में देखा। आइए, अब हम भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के सिद्धांतों से अवगत हों।

8.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद

आचार्य रामानुजाचार्य ने अवतारी राम को उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। उनकी दृष्टि में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्म चित्त और अचित विशिष्ट है। ब्रह्म की तरह जीव और माया भी सत्य है। इस भक्ति मार्ग को श्री संप्रदाय भी कहते है। श्री अर्थात् लक्ष्मी इसकी आदि आचार्य हैं, जीव 'लक्ष्मी' की शरण में जाने से ही सगुण ब्रह्म अर्थात् विष्णु तक पहुँच सकता है। भक्तों पर अनुग्रह के निमित्त ही भगवान अवतार ग्रहण करते हैं। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध शेष-शेषी भाव का है। जीव सेवक है ब्रह्म सेव्य। प्रपत्ति या शरणागति ही परमकल्याण का मार्ग है।

जीव, जगत, माया ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी ब्रह्म के ही अंग है। रामानुज का मत शंकर की अपेक्षा उदार है। उन्होंने भक्ति को जाति भेद से ऊपर मानते हुए सभी मनुष्य की समानता-एकता का प्रतिपादन किया है। इस संप्रदाय का गहरा प्रभाव रामानंद पर पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति भी सेव्य-सेवक भाव की है।

8.7.2 द्वैतवाद

इस मत का प्रवर्तन मध्वाचार्य (12वीं शता0) ने किया। इनके अनुसार जगत सत्य है, ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है। जीव और जगत परतंत्र है तथा ईश्वर स्वतंत्र। जीवों के बीच ऊँच एवं नींच की तारतम्यता है, यह सांसारिक अवस्था में ही नहीं मोक्ष दशा में भी विद्यमान रहती है। जीव की अपनी वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है। जिसे अमला भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। इस संप्रदाय के आचार्य ब्रह्मा है, अतः इसे ब्रह्म संप्रदाय भी कहते है। रामानुज की तरह मध्वाचार्य भी भक्ति मार्ग में सबकी समानता के पक्षधर थे। इस संप्रदाय में कांत या माधर्य भाव की भक्ति है।

8.7.3 शुद्धाद्वैतवाद

इस संप्रदाय के आचार्य रूद्र है अतः इसे रुद्र संप्रदाय भी कहा गया है। इस संप्रदाय के आचार्य विष्णुस्वामी (13-14वी सदी) के अनुसार ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, जो सदैव अपनी संविद् शक्ति से युक्त रहता है और माया उसी के अधीन रहती है। उन्होंने नृसिंह को ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोगों के मत में वे नृसिंह और गोपाल दोनों के उपासक थे।

विष्णु स्वामी की शिष्य परंपरा में ही वल्लभाचार्य (15वीं सदी) आते हैं। उन्होंने रूद्र संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वथा शुद्ध है। अपनी तीन शक्तियों-संधिनी, संवित तथा आह्लादिनी द्वारा वह क्रमशः सत्, चित् और आनंद का आविर्भाव करता है। ब्रह्म सत्य और नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव भी नित्य हैं। जीव अणु है और ब्रह्म भूमा। शुद्ध, संसारी और मुक्त-जीव की तीन कोटियाँ हैं। जड़ जगत की उत्पत्ति एवं का विनाश नहीं होता उसका केवल आर्विभाव और तिरोभाव ही होता है। उन्होंने भगवान के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति की प्राप्ति का आधार माना है। इसीलिए उनके मत को पुष्टि मार्ग कहा गया। रागानुगा

भक्ति ही पुष्टि भक्ति है जो साधन भक्ति से श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम और रसरूप है। इस संप्रदाय में कृष्ण के बालरूप की साधना को प्रमुखता दी गयी है।

8.7.4 द्वैताद्वैतवाद-

निम्बार्क (11वीं सदी) ने द्वैताद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ भेद और अभेद दोनों संबंध है। इसका मूल कारण अवस्था भेद है। जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी संबंध है। जीव अल्पज्ञ अणु है। जीव ईश्वर का अंश होने से नित्य है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण को युगलोपासना को प्रमुखता दी गई है। इस संप्रदाय के आचार्य सनकादि होने से इसे सनकादि संप्रदाय भी कहते है। इस संप्रदाय की भक्ति सख्य भाव की है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा उपरोक्त भक्ति विषयक सिद्धांतों को सरलता से याद किया जा सकता है।

दर्शन	**संप्रदाय**	**संस्थापक**	**भक्ति-भाव**
विशिष्टाद्वैतवाद	श्री	रामानुजाचार्य	दास्य
द्वैतवाद	ब्रह्म	मध्वाचार्य	कांत या माधुर्य
शुद्धाद्वैतवाद	रुद्र	विष्णुस्वामी/वल्लभाचार्य	वात्सल्य
द्वैताद्वैतवाद	सनकादि/निम्बार्क	निम्बार्काचार्य	सख्य

8.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार

निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संत मत और सूफीमत आता हैं। दोनों भक्ति मार्ग में ईश्वर को अजन्मा, अशरीरी, अगोचर माना गया है। आइए दोनों भक्ति मार्ग के दार्शनिक आधार का हम अध्ययन करें।

8.8.1 संतकाव्य का दार्शनिक आधार

संतमत का विकास वैष्णव धर्म, सिद्धों, नाथों, सूफी मत, शंकर के अद्वैतवाद से प्रेरणा-प्रभाव ग्रहण कर होता है। वैष्णवों से अहिंसा और प्रपत्ति भावना, सिद्धों-नाथों से जाति-पाति, कर्मकाण्ड, शास्त्र का नकार, काया योग, शून्य समाधि, शंकराचार्य से अद्वैत दर्शन, सूफियों से प्रेमतत्व को लेकर कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अजन्मा मानते हुए अवतारवाद, बहुदेववाद का खण्डन किया। परमतत्व एक ही है जो सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है। जीव अज्ञानता के कारण क्षणभंगुर संसार को सत्य समझ परमात्मा से विमुख रहता है। सद्गुरू की कृपा से व्यक्ति को आत्मज्ञान मिलता है, और ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। उस परमात्मा की भक्ति के लिए न तो शास्त्रज्ञान अपेक्षित है और न ही बाह्य विधि-विधान। ब्रह्म, माया, जीव, जगत सम्बन्धी संत मत की अवधारणाएं शंकराचार्य से प्रभावित है।

8.8.2 सूफी मत

सूफी मत इस्लाम की ही एक शाखा है जिसका उदय इस्लाम के प्रवर्तन के ढाई-तीन सौ वर्षों बाद होता है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। यह एक उदार, सहिष्णु मत है जो इस्लाम की शाखा होते

हुए भी उससे बहुत मामलों में भिन्न हैं। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'सफ' से मानते है जिसका अर्थ होता है पंक्ति। उनके अनुसार ईश्वर का प्रिय होने के कारण जो लोग कयामत के दिन सबसे पहली पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें सूफी कहते हैं। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से हुई, जिसका अर्थ है मस्जिद का चबूतरा। जो फकीर मस्जिद के चबूतरे पर सोकर अपनी रात गुजारते थे, सूफी कहलाए। कुछ लोगों के अनुसार 'सूफ' का अर्थ 'पवित्र' है। 'सूफ' ऊन के भी अर्थ में है। सादा और पवित्रता युक्त जीवन जीने वाले और ऊनी चोंगा पहनने वाले फकीरों को ही सूफी कहा जाने लगा। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सोफिया' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है ज्ञान। परमात्मा का ज्ञान रखने वाले फकीरों को सूफी कहा गया। इस प्रकार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सम्बन्धी कई मत है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''प्रारंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।'' ('जायसी ग्रंथावली' की भूमिका, पृ0 168)। इस प्रकार सूफी वे फकीर थे जो सांसारिक भोग-विलास से दूर रहकर, सादा एवं त्यागपूर्ण जीवन जीते हुए हमेशा खुदा के ख्वाब-ख्याल में डूबे रहते थे। सूफियों के अनुसार खुदा सारी कायनात में व्याप्त है। उनका मत इस्लामी एकेश्वरवाद की अपेक्षा शंकर के अद्वैतवाद के ज्यादा करीब है। सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ हैं- (1) शरीअत-अर्थात् शास्त्रानुसार विधि-निषेधों का सम्यक् पालन (2) तरीकत-वाह्य विधि-विधान से परे हटकर हृदय को शुद्ध रखकर ईश्वर का ध्यान। (3) हकीकत-साधना द्वारा तत्व-बोध की अवस्था। (4) मारिफत-आत्मा का परमात्मा में लीन होने की अवस्था, सिद्धावस्था। सूफीमत का मूल तत्व है प्रेम। परमात्मा के प्रेम में पूरी तरह लीन, उन्मुक्त होकर ही प्रेमस्वरूप परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता हैं किंतु यह प्रेम-साधना सरल नहीं, अत्यंत कठिन है। सूफी कवि इश्क मिजाजी (लौकिक प्रेम) के जरिए इश्क हकीकी (अलौकिक) प्रेम का वर्णन करते हैं। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी रूप और आत्मा को प्रेमी रूप में चित्रित किया है। गुरुकृपा से ही परमात्मा का (प्रियतमा के सच्चे रूप का) ज्ञान होता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को ढेर सारी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। माया या शैतान के कारण विघ्न-बाधाएँ उपस्थिति होती हैं। अन्ततः अपने सच्चे प्रेम के कारण गुरु और परमात्मा की कृपा से उसे सफलता मिलती है।

8.9 भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना है। एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया जिसने भारतीय समाज की गहरे तक प्रभावित किया। बुद्ध के बाद का सबसे प्रभावी आंदोलन जो समूचे देश में फैला जिसमें ऊँच-नीच, स्त्री-पुरूष, हिंदू-मुस्लिम सभी की भागीदारी थी। अपने मूल रूप में यद्यपि यह एक धार्मिक आंदोलन था, किंतु सामाजिक रूढ़ियों, सामंती बंधनों के नकार का स्वर, एक सहिष्णु, समावेशी समाज की संकल्पना भी इसमें मौजूद थी। भक्ति काव्य इसी भक्ति आंदोलन की उपज है। आइए हम इसके विविध पक्षों-उदय एवं विकास, उत्पत्ति के कारणों, महत्व एवं प्रदेय की पड़ताल करें-

8.9.1 भक्ति आंदोलन उदय एवं विकास

मध्यकाल में लगभग 3-4 सौ वर्षों तक चलने वाले भक्ति आंदोलन का जन्म सहसा नहीं होता। भक्ति आंदोलन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते 6-10 सदी और 10-16 सदी का कालखण्ड। भक्ति के बीज तो वैदिक काल में ही मिलते है। ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण से होते हुए क्रमशः भक्ति का विस्तार होता है। और भागवत संप्रदाय के रूप भक्ति को एक व्यापक आयाम मिलता है। एक आंदोलन के रूप में भक्ति को प्रचारित-प्रसारित करने

का श्रेय, दक्षिण के अलवार, नयनार भक्तों को है जिनका समय 6-10 सदी तक है। भक्ति आंदोलन का उदय दक्षिण से हुआ और वह क्रमशः उत्तर भारत में फैलता गया। हिन्दी में उक्ति है-'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद/प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।' दोनों उद्धरणों से विदित होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में हुआ। एक संस्कृत श्लोक से ज्ञात होता है कि द्रविड़ देश में उदय के पश्चात्, भक्ति का आगे विकास कर्नाटक, फिर महाराष्ट्र में हुआ और उसका पतन गुजरात देश में हुआ, फिर वृंदावन में उसे पुनर्जीवन, उत्कर्ष मिला। हिन्दी की अनुश्रुति में भक्ति को रामानंद द्वारा दक्षिण से उत्तर ले जाने और कबीर द्वारा प्रचारित-प्रसारित किए जाने का स्पष्ट संकेत है। स्पष्ट है कि संस्कृत श्लोक का सम्बद्ध कृष्ण भक्ति से और हिन्दी अनुश्रुति का सम्बन्ध रामभक्ति से है। बहरहाल आलवारों नयनारों का प्रमुख विरोध बौद्ध और जैन धर्म से था। उन दिनों दक्षिण में इन दोनों धर्मों का काफी प्रभाव था, किन्तु अपने मूल स्वरूप को खोकर ये धर्म कर्मकाण्डीय जड़ता और तमाम तरह की विकृतियों के शिकार हो गए थे। ऐसे समय में आलवार (विष्णुभक्त) और नयनार (शिव भक्त) संतों ने जनता के बीच भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को ज्ञानदेव, नामदेव ने आगे बढ़ाया। इनकी भक्ति सगुण-निर्गुण के विवादों से परे थी। ज्ञानदेव की भक्ति पर उत्तर भारत के नाथ पंथ का भी गहरा प्रभाव था। आगे चलकर महाराष्ट्र में तुकाराम और गुरु रामदास हुए। आठवीं सदी में शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का प्रतिवाद करते हुए वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्या कर वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका विरोध अलवार एवं नयनार से भी था। उन्होंने अद्वैतवाद, मायावाद का प्रवर्तन कर ज्ञान को, सर्वोपरि महत्ता दी। शंकराचार्य का विरोध परवर्ती वैष्णव आचार्यो रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, निम्बार्क ने किया। ये लोग सगुण ब्रह्म के उपासक और भक्ति द्वारा मुक्ति को मानने वाले थे। शंकराचार्य जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे वहीं इन आचार्यों का भक्तिमार्ग भेदभाव रहित था।

रामानुज के शिष्य राघवानंद ने भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित किया। इनके शिष्य रामानंद हुए, जिन्होंने भक्ति मार्ग को और भी उदार बनाकर सगुण-निर्गुण दोनों की उपासना का उपदेश दिया। इनके शिष्यों में सगुण भक्त और निर्गुण संत दोनों हुए। इनके बाहर शिष्य प्रसिद्ध है-रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद ने रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास हुए। श्री कृष्ण भक्तिमार्ग को वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, हितहरिवंश, विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया निर्गुण भक्तिमार्ग में कबीर सर्वोपरि है, उन्होंने, वैष्णव सम्प्रदाय से ही नहीं, सिद्धों, नाथों और महाराष्ट्र के संतज्ञानेश्वर, नामदेव से बहुत कुछ ग्रहण कर निर्गुण पंथ का उत्तर भारत में प्रवर्तन किया।

भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफी मत का भी प्रवेश हुआ। सूफी मत इस्लाम की रूढ़ियों से मुक्त एक उदारवादी शाखा है। इसके कई संप्रदाय है-चिश्ती, कादिरा, सुहरावर्दी, नक्शबंदी, शत्तारी। भारत में चिश्ती और सुहरावर्दी संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक समन्वयीकरण में सूफी मत काफी सहायक हुआ।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से शुरु होकर समूचे भारत में फैला और शताब्दियों तक जन सामान्य को प्रेरित-प्रभावित करता है। उसका एक अखिल भारतीय स्वरूप था, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी जगहों पर हम इस आंदोलन का प्रसार देखते हैं, सभी वर्ग, जाति, लिंग, समुदाय, संप्रदाय, क्षेत्र की इसमें भूमिका, सहभागिता थी। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा, दादू दयाल, उत्तर भारत में, कबीर, रामानंद, तुलसी, सूर जायसी, रैदास, पंजाब में गुरु नानक देव, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य, जयदेव असम में शंकरदेव सक्रिय थे। भक्ति आंदोलन में दौरान कई संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने मानववाद के उच्च मूल्यों का प्रसार किया, सामान्य जन-जीवन में स्फूर्ति एवं जागरण का संचार किया।

8.9.2 भक्ति-आंदोलन के उदय के कारण-

भक्ति आंदोलन का उदय मध्यकालीन इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसका उदय अकस्मात नहीं होता है बल्कि बहुत पहले से ही इसके निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी, जिसे युगीन परिस्थितियों ने गति प्रदान किया। ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन माना है- उनका यह मत अप्रमाणिक, अतार्किक है। आचार्य शुक्ल ने इसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हुए पराजित हिंदू समाज की सहज प्रतिक्रिया माना है, वह लिखते है-'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने उनके देव-मंदिर गिराए जाते थे, देव, मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नही कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनैतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश लोगों के लिए भगवान की शक्ति और कारण की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 60)। इस प्रकार शुक्ल जी भक्ति आंदोलन के उदय को इस्लाम के आक्रमण से क्षत-विक्षत, अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के पराजय बोध से जोड़ते हैं। भक्ति काल के उदय सम्बन्धी शुक्ल जी के मत से असहमति जताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि-'मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस हिंदी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा कि आज है।' (हिंदी साहित्य की भूमिका) आचार्य द्विवेदी भक्तिआंदोलन पर इस्लामी आक्रमण का प्रभाव तो स्वीकार करते हैं, किंतु भक्ति आंदोलन को उसकी प्रतिक्रिया नहीं मानते। बहरहाल दोनों आचार्यो के मतों में भिन्नता के बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भक्ति आंदोलन का एक सम्बन्ध इस्लामी आक्रमण से भी है। द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपरा का स्वाभाविक विकास मानते है, इसे उन्होंने शास्त्र और लोक के द्वन्द्व की उपज माना है जिसमें शास्त्र पर लोकशक्ति प्रभावी साबित हुई, और भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ। इसके मूल में वह बाहरी कारणों की जगह भीतरी शक्ति की ऊर्जा देखते है-'भारतीय पांडित्य ईसा की एक शताब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः ही लोक की ओर झुक गया था। यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना अर्थात् इस्लाम का प्रमुख विस्तार न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले जा रही थी।' (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ0-15)। द्विवेदी जी, मध्यकालीन भक्ति साहितय के विकास के लिए बौद्ध धर्म के लोक धर्म में रूपांतरित होने और प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगार प्रधान कविताओं की प्रतिक्रिया को देखते है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत उल्लेखनीय है-'अच्छा होगा कि प्रभाव और प्रतिक्रिया दोनों रूपों में इस्लाम की व्याख्या सहज भाव और अकुंठ मन से किया जाए। तब आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के बीच दिखने वाला यह प्रसिद्ध मतभेद अपने-आप शांत हो जाएगा। भक्ति-काव्य के विकास के पीछे बौद्ध धर्म का लोक मूलक रूप है और प्राकृतों के श्रृंगार काव्य की प्रतिक्रिया है तो इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ0-33) वह मध्यकालीन भक्तिकाव्य के उदय में इस्लाम की आक्रामक परिस्थिति का गुणात्मक योगदान स्वीकार करते हैं। भक्ति आंदोलन के उदय के पीछे तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ भी कार्यरत थी, इसका विवेचन के दामोदरन, इरफान हबीब, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध ने किया है। इस्लामी राज्य की उत्तर भारत में स्थापना और उसकी स्थिरता के कारण व्यापार वाणिज्य का तेजी, से विकास होता है, नये उद्योग-धंधे ही नहीं, स्थापित होते, नए-नए नगरों का भी निर्माण होता है, इसके फलस्वरूप भारत का जो कामगार वर्ग था, जिसमें प्रायः निचली जातियों के लोग अधिक थे की आर्थिक स्थिति में सुधार होता और उनमें एक आत्मसम्मान, अपनी सम्मानजनक सामाजिक स्थिति को पाने की भावना बलवती होती है। यह अकारण नहीं है कि भक्ति आंदोलन

में इन निचली जातियों की भागीदारी सर्वाधिक है। इस्लामी राज्य स्थापित से होने से परम्परागत सामाजिक ढाँचें को एक धक्का लगता है, सामंतों एवं पुरोहितों का प्रभुत्व-प्रभाव कम होता है। कह सकते है भक्ति आंदोलन के उदय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सभी अपना योगदान दे रही थी। अत: भक्ति आंदोलन के उदय में कई कारणों का संयुक्त योगदान है।

8.9.3 भक्ति आंदोलन का महत्व-

भक्ति आंदोलन मध्यकाल का एक व्यापक और प्रभावी आंदोलन था, जिसने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इसने एक ओर जहाँ सत्य शील, सदाचार, करूणा, सेवा जैसे उच्च मूल्यों को प्रचारित किया वहीं समाज के दबे-कुचले वर्ग को भक्ति का अधिकारी, बनाकर उनके अंदर आत्मविश्वास का संचार भी किया। भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील भूमिका को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते है-'इस आंदोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भूभाग के निवासी तथा कोटि-कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आंदोलन की ऊर्जा स्पंदित होती है, एक ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते है, सब एक दूसरे को प्रेरणा देते है, एक-दूसरे से प्रेरणा लेते है, और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि-कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्म् विश्वास, जिंदा रहने की, आत्म सम्मान के साथ जिंदा हरने की शक्ति पाते हैं।' (भक्ति-आंदोलन और भक्तिकाव्य-पृ. 11) भक्ति आंदोलन एक व्यापक लोकजागरण था।

8.10 भक्ति कालीन कविता का उदय-

भक्तिकाव्य भक्ति आंदोलन की उपज है। सबसे पहले हमें निर्गुण पंथ दिखलाई पड़ता हैं, जिनमें कबीर प्रमुख हैं। कबीर रामानंद के शिष्य हैं। कबीर के पहले महाराष्ट्र में नामदेव हिंदी में रचना कर चुके थे, उनमें निर्गुण और सगुण दोनों की उपासना है। कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन पर अद्वैतवाद, वैष्णवी अहिंसावाद, प्रप्रत्तिवाद, सिद्ध, नाथ मत का पूरा प्रभाव था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर देते हुए, बहुदेववाद, शास्त्रों एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनकी भक्ति भावमूलक हैं, जिसकी उपलब्धि सद्गुरू की कृपा से होती है। कबीर की ही परंपरा में रैदास, रज्जब, दादू आदि संत कवि आते हैं। सूफी मत पर आधारित प्रेमाख्यानक काव्य तब प्रकाश में आता है जब भारत में सूफी मत का प्रसार होता हैं। सूफी फकीरों में निजामुद्दीन ओलिया और ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख हैं। सूफी संत कवियों में कुतुबुन, मंझन, मलिजक मुहम्मद जायसी, उसमान आदि प्रमुख हैं। इन सूफी संतों ने प्रचलित हिंदू कथाओं को, आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम का निरूपण किया है। रामभक्ति की शुरुआत रामानंद से होती है। जिसे चरमोत्कर्ष पर गोस्वामी तुलसीदास ले जाते हैं। उत्तर भारत में कृष्ण भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों ने कृष्णकाव्य का प्रणयन किया इनमें सूरदास और नंददास प्रमुख है। अष्टछाप कवियों के पूर्व संस्कृत में जयदेव और मैथिल में विद्यापति ने कृष्ण काव्य की रचना की थी। आगे की इकाई में भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं के उद्भव एवं विकास का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आलवर भक्तों में महिला भक्त थीं?
2. द्वैताद्वैत का प्रवर्तन किसने किया?

3. शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करने वाले प्रथम वैष्णव आचार्य हैं?
4. गुजरात के प्रमुख भक्त कवि हैं?
5. नवधा भक्ति का उल्लेख किस ग्रंथ में हैं?
6. भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन किसने माना है?
7. भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपवरा का स्वाभाविक विकास किस आलोचक ने माना है?
8. नामदेव की भक्ति किस प्रकार हैं?

8.11 सारांश

हिंदी साहित्य का पूर्वमध्यकाल (14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक) के साहित्य की मूल संवेदना भक्ति होने के कारण भक्तिकाल कहा गया। भक्ति के आदि बीज वेदों में मिलते हैं, ब्राह्मण, ग्रंथों, उपनिषद, पुराणों से होते हुए भागवत धर्म में भक्ति को व्यापक आयाम मिलता है। कालांतर में वैष्णव आचार्यों रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य ने भक्ति को दार्शनिक आयाम देते हुए भक्ति मार्ग को उदार बनाया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने राम, कृष्ण की उपासना पर जोर दिया और दक्षिण भारत में एक आंदोलन की तरह भक्ति आंदोलन का प्रचार किया। दक्षिण से भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर भारत में होता है रामानंद, वल्लभाचार्य के माध्यम से। भक्ति आंदोलन एक व्यापक आंदोलन था जिसमें सभी वर्ग, जाति, क्षेत्र, भाषा की भूमिका थी। मूलतः धार्मिक आंदोलन होते हुए भी भक्ति आंदोलन का एक सामाजिक आयाम भी है। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और पहले चली आ रही लोकपरम्परा, भक्ति आंदोलन के उदय का कारण बनती है। भक्ति काव्य इसी आंदोलन की उपज है। इसी की कोख से, संत काव्य, सूफी प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्ण भक्ति काव्य का जन्म होता है। जिसे कबीर, जायसी, सूर, तुलसी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

8.12 शब्दावली

(1) अवतारवाद- वैष्णव संप्रदाय में ईश्वर के अवतार की कल्पना की गई। ईश्वर धर्म और धरा की रक्षा के लिए धरती पर जन्म लेता है। विभिन्न शास्त्रों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न है, कहीं 7, कहीं 10 कहीं 24 अवतारों का उल्लेख मिलता है। राम और कृष्ण प्रमुख अवतार है, जिनकी भक्ति का मध्यकालीन भक्ति काव्य में वर्णन मिलता है।

(2) प्रपत्ति भावना- प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देना। प्रपत्ति को भक्ति का प्रमुख साधन माना गया हैं।

(3) अनात्मवाद- भारतीय चिंतन परंपरा में आत्मा सम्बन्धी दो विचारधारा है- आत्मवाद और अनात्मवाद या नैरात्म्यवाद। आत्मवाद के अनुसार आत्मा नित्य, अजर-अमर, चेतन है। हिंद-धर्म-दर्शन आत्मवादी है। अनात्मवाद के अनुसार या तो आत्मा है ही नहीं और यदि है तो वह नश्वर और परिवर्तनशील है।

(4) मायावाद- शंकराचार्य के अनुसार आत्मा, परमात्मा दोनों में अद्वैत संबंध है। किंतु माया के कारण मनुष्य दोनों की अद्वैतता का अनुभव नहीं कर पाता। माया के कारण ही मनुष्य सांसारिक प्रपंचों और जगत को सत्य मान परमात्मा से विमुख रहता है। इस माया के नाश द्वारा ही मनुष्य को परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माया के बंधनों से मुक्ति ज्ञान से होती है।

(5) बहुदेवोपासना- बहुदेववाद हिंदू धर्म की विशेषता है। हिंदू धर्म में ईश्वर के कई रूपों की मान्यता है। दअसल बहुदेववाद अवतारवाद की देन है।

(6) नवधाभक्ति-भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख है। ये नौ साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य, आत्मनिवेदन। यही नवधा भक्ति है।

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंडाल
2. निम्बार्क
3. रामानुजाचार्य
4. 'नरसी मेहता
5. भागवत पुराण
6. ग्रियर्सन
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. सगुण-निर्गुण

8.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
4. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
5. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

8.15 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं0 नगेंद्र
3. भारतीय चिंतन परम्परा - के0 दामोदरन
4. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-1 - सं0 धीरेन्द्र वर्मा
5. भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार - सं0 गोपेश्वर सिंह
6. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर

8.16 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के मतों का परिचय दीजिए?

(2) भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास पर प्रकाश डालिए?

(3) 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

(4) भक्ति आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 9 भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण

9.4 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

9.4.1 निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

9.4.2 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

9.5 भक्ति काव्य: प्रक्रिया एवं विकास

9.5.1 संत काव्य

9.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य

9.5.3 राम भक्ति काव्य

9.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य

9.6 भक्ति काव्य का महत्व

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में भक्ति कालीन कविता के वर्गीकरण, सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं, भक्तिकाव्य की विभिन्न धाराओं की परम्परा और विकास, भक्ति काव्य की उपलब्धि इत्यादि की चर्चा की जाएगी। ब्रह्म के स्वरूप के आधार पर सगुण-निर्गुण शाखा में विभक्त भक्तिकाव्य का चार शाखाओं-संत काव्य, प्रेममार्गी, सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य के रूप में विकास होता है। भक्ति के आधार और प्रक्रिया में भिन्नता के बावजूद इन शाखाओं में एक गहरी समानता भी है। उपास्य के प्रति उत्कट राग अर्थात् भक्ति, नैतिक जीवन पद्धति, उच्चकोटि की मनुष्यता, साधना और काव्य का लोकोन्मुख रूप पूरे भक्ति काव्य की सामान्य विशेषता है। सौन्दर्य बोधात्मक एवं मूल्यबोधात्मक दोनों दृष्टि से भक्तिकाव्य की उपलब्धियाँ सराहनीय है। इस इकाई में इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला जाएगा।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- भक्तिकाव्य के विभाजन, उसकी विविध शाखाओं से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकाव्य की क्या विशेषताएँ रही हैं? सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य में समानता-असमानता क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर पा सकेंगे?
- भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं की प्रक्रिया और विकास की व्याख्या कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के महत्व को समझ सकेंगे।

9.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण

भक्तिकाव्य की दो धाराएँ हैं निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति में मुख्य अंतर भक्ति के आधार को लेकर है। निर्गुण शाखा में भक्ति का अवलंब अगोचर, अजन्मा, अशरीरी, इंदियातीत, अगम्य, निराकार, परमेश्वर है, जबकि सगुण शाखा में उपास्य गोचर, साकार, शरीरी है, वह अवतरित होता है। डॉ0 नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति का साम्य-वैषम्य उद्घाटित करते हुए लिखते हैं- 'सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रह्ममानुभूति को स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में जहाँ भगवद्‌ग्रह का भरोसा होता हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में आत्मविश्वास का बल रहता है। सगुण भक्ति जहाँ बाह्य लालित्य की महिमा से मंडित है, वही निर्गुण भक्ति अंतः सौन्दर्य की गरिमा से दीप्त। सगुण भक्ति जहाँ साकार तथा सविशेष के प्रति होती है, वहीं निर्गुण भक्ति निराकार और निर्विशेष के प्रति। सगुण भक्ति में जहाँ स्वकीया तथा परकीया दोनों भावों का समावेश है, वहीं निर्गुण भक्ति में शक्तिरूपा नारी के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी उसके रमणी रूप अथवा परकीया भाव के प्रति आकर्षण का अभाव है। सगुण भक्ति में जहाँ किसी देव लोक की कल्पना की गयी हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में विश्वात्मा प्रभु के विश्वव्यापी अस्तित्व में आस्था प्रकट की गयी है। सगुण भक्त के लिए जहाँ भगवान का उपयुक्त धाम भक्त का हृदय है, वहीं निर्गुण भक्त के लिए अभेदमूलक दृष्टि द्वारा आत्मसाक्षात्कार का महत्व है। निर्गुण भक्त सत्य के शोधक हैं, भक्ति अथवा ऐश्वर्य के आराधक नहीं। मोक्षकामी निर्गुण भक्त संसार को सत्कर्मों द्वारा स्वर्ग बनाना चाहते हैं, वे किसी

काल्पनिक 'परलोक' के अभिलाषी नहीं। सगुण और निर्गुण भक्त दोनों ही उपासना-भेद से वैष्णव हैं। निर्गुण भक्त जहाँ नारायण की उपासना करता है, वहीं सगुण भक्त विष्णु के लीलावतारों की भक्ति। सगुण भक्ति में लीला का महात्म्य है और निर्गुण भक्ति में लय का महत्व। सगुण भक्त जहाँ वर्णव्यवस्था के आलोचक नहीं, वहीं निर्गुण भक्त उसके तीव्र विरोध तक जान पड़ते हैं। परंतु प्रेमा भक्ति दोनों को स्वीकार्य है।............ वास्तव में सगुण-निर्गुण का भेद जितना स्तर जन्य है उतना वर्गगत नहीं।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 101-102) इस प्रकार हम देखते है कि सगुण भक्ति एवं निर्गुण भक्ति में मूल अंतर ईश्वर की परिकल्पना की भिन्नता के कारण है। इससे दोनों काव्य की विषय वस्तु, जीवन-जगत संबंधी उनके दृष्टिकोण में अंतर दिखलाई पड़ता है। निर्गुण भक्ति काव्य दो वर्गों में विभक्त है- ज्ञानाश्रयी शाखा (संतकाव्य) और प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी प्रेमाख्यानक काव्य)। संत मत में ब्रह्म ज्ञान को प्रमुखता दी गई है, जबकि प्रेममार्गी सूफी काव्य में तीव्र प्रेमानुभूति का महत्व है। सगुण भक्ति काव्य विष्णु के अवतारों के आधार पर दो धाराओं में विकसित होता है। राम, कृष्ण विष्णु के प्रमुख आधार है, भक्ति आंदोलन के दौरान इन दो अवतारों की भक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इस तरह सगुण भक्ति काव्य के भी दो रूप हैं-राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं-

9.4 भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। गुण एवं परिमाण, उदात्त भाव-भूमि एवं प्रभावी अभिव्यक्ति प्रेरक आदर्शों-मूल्यों की उपस्थिति, मानवीयता का उच्च धरातल, युगबोध, लोकोन्मुखता इत्यादि सभी दृष्टियों से यह काव्य एक प्रतिमान की तरह दिखलाई पड़ता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण ही भक्तिकाव्य भारतीय समाज का पथप्रदर्शक रहा है, उसे आध्यात्मिक तृप्ति और रसानुभूति कराता रहा है। इस भक्ति काव्य की चार शाखाएँ है-संत काव्य, प्रेम मार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य। इन चारों शाखाओं का अपना-अपना निजी वैशिष्ट्य है, अपनी विशेष प्रवृत्ति है। किन्तु कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ, विशेषताएँ भी है जो समूचे भक्तिकाव्य में दिखलाई पड़ती है। निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्ति काव्य और इनकी विभिन्न शाखाओं का एक समान धरातल है, और वह धरातल है भक्ति। सबमें ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य, निष्ठा, सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पर जोर, संसार में रहते हुए सांसारिक प्रपंचों, माया-मोह के बंधनों से असंपृक्त-उदासीन रहने का उपदेश, मानुष सत्य को प्रमुखता, शास्त्रों-कर्मकाण्डों से मुक्त भाव भगति पर बल, गुरु महिमा का बखान, अहं का पूर्ण-विगलन, लोक सम्पृक्ति मिलती है। आइए भक्ति काव्य के विशेषताओं की हम चर्चा करें।

(1) ईश्वर के उत्कट प्रेम एवं अनन्य निष्ठा- ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य निष्ठा, सर्वस्व समर्पण की भावना भक्ति काव्य की सभी धाराओं में विद्यमान है। सभी भक्त कवि भगवत्प्रेम में पूर्णतया अनुरक्त, विह्वल दिखलाई पड़ते है। कबीर प्रियतम परमात्मा के विरह में व्याकुल होकर कहते हैं-

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्याँ, राम पुकारि पुकारि।

सूफी काव्य में तो 'प्रेम तत्व' को ही सर्वाधिक महत्ता दी गई हैं। मीरा गिरधर गोपाल को अपना सर्वस्व मान, उनके प्रेम में बावरी हो उठती है- हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोई।' सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति इतना समर्पित हैं कि वे उद्धव के मुक्ति रूपी मणि के प्रलोभन को ठुकराकर कृष्ण की विहाग्नि में तपना स्वीकार करती हैं।

उद्धव के लाख समझाने-बुझाने के बावजूद गोपियाँ के प्रेम पर कोई असर नहीं होता, हरि तो उनके लिए 'हारिल की लकड़ी' के समान हैं। तुलसी के तो एकमात्र बल, एकमात्र भरोसा उनके प्रभु राम हैं-

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

(2) अहं का विगलन-भक्त कवि परमात्मा के पास अपने अहं को पूर्णतया विसर्जित करके जाते हैं। प्रभु के समक्ष उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं, प्रभु की सेवा, उनका सेवक बनने में ही वे अपनी सार्थकता देखते हैं। कबीर अपने को 'राम का गुलाम', 'राम का कुत्ता' कहते है।

सूर का कहना है-

'सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।'

तुलसी कहते हैं-

राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो?'

(3) सांसारिक विषय-वासनाओं के प्रति उदासीनता- भक्त कवि प्रभु भक्ति में सबसे बड़ी बाधा माया-मोह को मानते हैं। माया-मोह के बंधन में फँसकर मनुष्य जीवन, जगत को सत्य, शाश्वत मानकर सांसारिकता में लिप्त और परमात्मा से विमुख रहता है। भक्त कवियों के यहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं को निस्सार माना गया है, उनसे अलिप्त रहने का उपदेश दिया गया है। यह निर्वेद का भाव कबीर, सूर, तुलसी, जायसी सभी के यहाँ मिलता है। जीवन की क्षण भंगुरता की ओर ईशारा करते हुए कबीर कहते है-

माली आवत देखिकै कालियाँ करीं पुकार।
फूली-फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बारि।।

जिस शरीर और जीवन को मनुष्य ने सत्य समझ लिया है उसकी वास्तविकता क्या है, इसे बतलाते हुए सूर ने लिखा है-

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।।

(4) गुरु महिमा- गुरु की महत्ता निर्गुण, सगुण दोनों भक्त कवियों ने स्वीकार की है। दरअसल गुरु ही सत्य का बोध कराता है, मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाता है। वह पथ प्रदर्शक हैं, सच्चा हितैषी है। इसीलिए कबीर ने गुरु को भगवान से भी ऊँचा दर्जा दिया है।

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।।

मानस में तुलसी गुरु की वंदना करते हुए लिखते है-

'बंदौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।'

(5) नामस्मरण का महत्व- भक्त कवियों ने पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ प्रभु का नाम जपने को भक्ति का सबसे सरलतम रूप माना है। मात्र नाम-स्मरण से मनुष्य प्रभु की कृपा का पात्र बन जाता, भव-बंधन से मुक्त हो जाता है। इसीलिए राम-नाम को तत्व मानते हुए कबीर ने कहा है- 'कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।' नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है-

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

नाम स्मरण को प्रमुखता देकर भक्त कवियों ने भक्ति को शास्त्रों और कर्मकाण्डों को जकड़बंदी से मुक्त कर दिया उसे सरल और लोकग्राह्य बना दिया।

(6) संतों के प्रति श्रद्धा एवं सत्संग पर बल- भक्ति काव्य में पवित्रतायुक्त सीधा-सरल जीवन जीने वाले परमात्मा की भक्ति में लीन, सांसारिकता से उदासीन साधु पुरुषों के प्रति असीम श्रद्धा-सम्मान प्रकट किया गया है। रैदास लिखते हैं वह गाँव, स्थान, कुल, घर-परिवार धन्य है जहाँ साधु पुरुष का जन्म होता है-

जिहि कुल साधु बैस्नौ होइ।
बरन अबरन रंक नहिं ईसुर, बिमल बासु जानीऐ जीग सोइ।।

× × ×

होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारै कुल दोइ।
धनिसो गाउँ, धनि सो ठाउँ, धनि पुनीत कुटुम सब लोइ।।

जिस प्रकार पुष्प के सम्पर्क से सब अंग समान रूप से सुवासित होते हैं, उसी तरह संतों की संग भी होता है, तुलसी के अनुसार-

बंदहु संत समान चित हित अनहित नहिं दोय।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोय।।

(7) सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन जीने का उपदेश- भक्त कवियों ने जीवन को धर्मानुसार अर्थात् सत्य-शील सदाचार का सम्यक पालन करते हुए प्रभु के प्रति समर्पित जीवन जीने का उपदेश दिया है। समस्त सृष्टि को प्रभु की अभिव्यक्ति मानकर सभी के प्रति कल्याण की भावन एवं कर्म होना चाहिए। ये कवि स्वार्थ की जगह परमार्थ, संग्रह की जगह त्याग, भोग की जगह भक्ति को महत्व देने वाली जीवन-पद्धति के प्रचारक-प्रसारक हैं।

(8) मानवतावादी दृष्टि- भक्त कवियों ने भक्तिमार्ग में सभी मनुष्यों को समान मानते हुए, वर्गगत, वर्णगत भेद भाव का विरोध किया है। सभी मनुष्य परमात्मा के अंश हैं, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या रंक-सबमें उसी परमात्मा का वास है। 'जाति-पाति पूछै न कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' भक्ति काव्य का मूलमंत्र है। मनुष्य सत्य को भक्ति आंदोलन के दौरान सर्वप्रमुखता दी गई, बंग्ला के भक्त कवि चण्डीदास ने कहा है-

शुनह मानुष भाई
शबार ऊपरे मानुष शतो
ताहार ऊपरे नाई।

कबीर अत्यंत तीखे ढंग से जाति-पाँतिगत भेद-भाव का विरोध करते हैं। यद्यपि तुलसी के यहाँ वर्णाश्रमधर्म के प्रति एक आस्था है, किंतु उन्होंने भी सभी मनुष्यों को समान माना है- तभी तो वह कहते हैं-'सिया राम मय सब जग जानी करहु प्रनाम जोरि जुग पानि।' दरअसल भक्त कवि परस्पर राग-विश्वास पर आधारित एक उदार और मानवीय समाज के अभिलाषी है।

(9) लोकोन्मुखता- गहरी लोक सम्पृक्ति भक्त कवियों की विशेषता है। वे जन सामान्य के बीच से आए थे और उन्हीं के बीच रहकर काव्य रचना की। उन्होंने धर्म और भक्ति को सहज-सरज रूप देकर लोक ग्राह्य बनाया। 'नाम स्मरण' को प्राथमिकता देने वाली उनकी भक्ति साधन विहीन और निरक्षर जनता जो शास्त्रोक्त कर्मकाण्डों को सम्पन्न करने तथा शास्त्रों का अध्ययन-मनन करने में असमर्थ थी, के लिए अत्यंत सुगम थी। यही नहीं सदियों से उपेक्षित-वंचित वर्ग को भक्ति का अधिकारी घोषित कर उन्होंने भक्तिमार्ग को अत्यंत उदार और मानवीय बना दिया। रागमूलक जिस भक्ति का कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा ने प्रचार किया उससे जनसामान्य को आध्यात्मिक तृप्ति ही नहीं मिलती है, उसके जीवन में एक सरसता का संचार भी होता है, उसे शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है। भक्ति काव्य लोक मंगलकारी है। यही नहीं लोक संस्कृति एवं लोक परिवेश का भी इन रचनाओं जीवंत चित्रण हुआ। जायसी के 'पद्मावत' में अवध की लोक संस्कृति और सूर के यहाँ ब्रज की लोक संस्कृति सजीव हो उठी है। भक्त कवि अपनी बात को प्रकट करने के लिए उस समय की प्रचलित लोक भाषाओं का आश्रय लेते हैं, लोक से ही उपमानों, बिम्बों, प्रतीकों का चुनाव करते हुए सहज-सरस शैली में अपनी बात रखते हैं। वास्तव में भक्ति काव्य लोक भाषा में रचित और लोक को संबोधित कविता है। सामंती अभिजात्य और रूढ़ियों को नकार यहाँ लोक की प्रतिष्ठा हुई है। अपनी लोक धर्मी चेतना के कारण ही भक्ति काव्य इतना सरस और प्रभावी बन पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न धाराओं में विकसित होने वाले भक्ति काव्य की कुछ आधारभूत विशेषताएं हैं जो सभी धाराओं में समान रूप से दिखलाई पड़ती है। अब आगे हम निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्तिकाव्य की विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

9.4.1 निर्गुण भक्तिकाव्य की विशेषताएँ

निर्गुण अर्थात् गुणातीत, निराकार, अशरीरी, अजन्मा, अव्यक्त, इन्द्रियातीत ब्रह्म की उपासना को लेकर चलने वाले भक्ति मार्ग को निर्गुण भक्ति मार्ग और उसके साहित्य को निर्गुण भक्ति काव्य कहा गया है। कबीर, रैदास, दादू, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। निर्गुण भक्ति मार्ग भी दो भागों में विभक्त है- ज्ञानश्रयी शाखा अथवा संत काव्य और प्रेमाश्रयी शाखा अथवा प्रेममार्गी सूफी काव्य। एक में ब्रह्मज्ञान, तत्वचिंतन को प्रमुखता दी गयी तो दूसरे में तीव्र प्रेमानुभूति को। आईये हम निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं को देखते हैं-

(1) **निर्गुण ब्रह्म की उपासना-** निर्गुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार और अवतारी न मानकर निराकार, अजन्मा माना गया है। परम तत्व एक हैं, वहीं जगत का नियंता, जगत का स्वामी है। ब्रह्म को निर्गुण कहने का अभिप्राय उसकी गुणहीनता से नहीं है। निर्गुण का अर्थ है 'गुणातीत'। वह परमात्मा गुणों से परे है। उसका

कोई स्वरूप कोई आकार-प्रकार नहीं। वह इंद्रियातीत परमेश्वर अनिर्वचनीय है, अज्ञेय है। निर्गुण भक्ति मार्ग में अवतारवाद और बहुदेववाद का खण्डन, निर्गुण ब्रह्म की संकल्पना के कारण ही है। उस निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति, ब्रह्ममानंद की अनुभूति भक्ति द्वारा ही संभव है। कबीर ने अपनी भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए दांपत्य रूपकों को सहारा लिया है। वह राम को अपना 'भरतार' और अपने को उनकी 'बहुरिया' मानते है। जायसी ने इश्कमिजाजी में इश्क हकीकी को दिखलाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्गुण कवि लौकिक प्रेम सम्बन्धों का सहारा लेकर ईश्वरीय प्रेम को प्रकट करते है। यद्यपि संतमत में तत्वबोध का महत्व है जो सद्गुरु की कृपा से लब्ध होता है, किंतु संत कवियों ने भी परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उत्कट राग, अनन्य निष्ठा को ही सर्वाधिक महत्व दिया है।

(2) **धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों का विरोध-** निर्गुण भक्ति मार्ग में शास्त्रीय विधि-विधान कर्मकाण्ड, बाह्याचार, अंधविश्वास, ऊँच-नीच के भेद का विरोध मिलता है। धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों-कट्टरताओं से मुक्त जिस भक्ति का निर्गुण कवियों ने प्रतिपादन किया है वह बाध्याचारमूलक न होकर भावमूलक है, आंतरिक है। इस भक्ति के लिए शास्त्र ज्ञान भी अपेक्षित नहीं है। निष्कलुष मन-हृदय से परमात्मा के प्रति सच्ची निष्ठा सच्चा और निष्काम प्रेम ही इस भक्ति का आधार है।

(3) **मानव-मात्र की एकता-** समता का प्रतिपादन-निर्गुण कवि ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुस्लिम के भेद को नहीं मानते। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान है, क्योंकि एक ही परमात्मा के अंश हैं। कबीर कहते हैं- 'एक जोति थैं सब उपजा कौन ब्राहमन कौन सूदा।' दरअसल निर्गुण भक्ति मार्ग जाति-संप्रदाय के भेदों से परे है। यहाँ राम-रहीम को एक माना गया है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा गया है, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान के रूप में नहीं। सूफी कवि जायसी, मंझन, कुतुबन ने लोकप्रचलित, हिंदू-कथाओं को आधार बनाकर अपना काव्य सृजन किया है जो उनकी उदार दृष्टि का परिचायक हैं। इससे हिन्दू-मुस्लीम की भावात्मक एकता का पथ प्रशस्त हुआ।

(4) **रहस्यवाद-** रहस्यवाद निर्गुण भक्ति काव्य की एक मुख्य विशेषता है। दरअसल रहस्यवाद कोई विचारधारा नहीं, यह एक अनुभूति है, जिसकी विशेषता है- अगम्य, अगोचर, अज्ञेय, अनिर्वचनीय ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा, उसके अस्तित्व में विश्वास, समूची सृष्टि में उसी परमतत्व की व्याप्ति देखना, उससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़ना और अन्ततः एकात्म की अनुभूति। इस प्रकार रहस्यवाद के अंतर्गत अगोचर ब्रह्म अनुभूति के दायरे में आता है। आचार्य शुक्ल ने जायसी के रहस्यवाद का विवेचन करते हुए रहस्यवाद के दो भेद किए हैं-साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद। तंत्र-मंत्र, योगादि द्वारा ब्रह्म की सत्ता का साक्षात्कार और ब्रह्मानंद की अनुभूति साधनात्मक रहस्यवाद के अंतर्गत आता है। तीव्र-गहन प्रेमानुभूति की स्थिति, परमात्मा से रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना-भावात्मक रहस्यवाद की विशेषता है। जायसी के पद्मावत में भावात्मक रहस्यवाद की प्रधानता है। कबीर के यहाँ यौगिक क्रिया द्वारा ब्रह्मानुभूति का वर्णन होने से साधनात्मक रहस्यवाद है। दूसरी तरफ जब वे अपने को राम का बहुरिया कहते हुए ब्रह्म को राग के धरातल पर उतारते हैं, तो वहाँ भावात्मक रहस्यवाद की उत्पत्ति होती है।

9.6 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

सगुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार-इंद्रियगम्य, सविशेष माना गया है। तुलसी, सूर, आदि इसी के अंतर्गत आते है। सगुण भक्ति काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

(1) अवतारवाद में विश्वास-

सगुण भक्त कवियों का दृढ़ विश्वास है कि परमात्मा, अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के लिए जीव रूप धारण कर अवतरित होता है। वह लीला के लिए अवतरित होता है, उसकी लीलाएँ लोकरंजन और लोक रक्षण के निमित्त होती है। सगुण भक्ति काव्य में नारायण के दो अवतारों-राम, कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। सगुण भक्ति काव्य ईश्वर की लीलाओं का गान है।

(2) ब्रह्म के सगुण - निर्गुण दोनों रूपों की मान्यता-सगुण भक्ति काव्य में ब्रह्म के सगुण निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया गया है। धर्म और धरा के कल्यार्थ ही निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है। तुलसीदास कहते हैं- 'सगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा।' सूर भी निर्गुण-सगुण दोनों रूपों को मानते हैं-' 'आदि सनातन हरि अविनाशी, निर्गुण-सगुण धरे तन दोइ।' किन्तु निर्गुण ब्रह्म 'रूप-रेख-गुन-जाति-जुगुति विहीन' है, वह मन और वाणी से परे है, वह 'गुंगे के गुड़' की तरह है। इसलिए सूर सगुन लीला के पद गाते हैं। दरअसल सुगम्यता के कारण ही तुलसी, सूर ने सगुण भक्ति को स्वीकारा है, महत्व दिया है।

(3) भक्ति का एक विशिष्ट स्वरुप- सगुण भक्ति के दो रुप दिखलाई पड़ते हैं, वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति में जहाँ शास्त्रानुमोदित विधि-निषेधों के सम्यक अनुशीलन पर बल है, वहीं रागानुगा के अंतर्गत शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है। सगुण भक्ति में रागानुगा भक्ति को महत्व दिया गया हैं। अलग-अलग भक्तों ने भिन्न-भिन्न भाव से प्रभु को भजा है। किसी के यहाँ दास्य भाव है तो कहीं वात्सल्य भाव। भागवत पुराण की नवधा भक्ति-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति- की भी सूर, तुलसी, मीरा की भक्ति-पद्धति में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

आगे सगुण भक्ति काव्य की शाखाओं-राम भक्ति काव्य एवं कृष्ण भक्ति काव्य की विस्तृत चर्चा की जाएगी।

9.5 भक्तिकाव्य: प्रक्रिया एवं विकास

9.5.1 संत काव्य

संतकाव्य जिसे ज्ञानाश्रयी शाखा कहा जाता है, इसकी शुरुआत महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव से होती है। भक्ति आंदोलन के क्रमिक विकास का अवलोकन करने पर विदित होता है कि आलवारों की भक्ति का प्रसार दक्षिण के बाद महाराष्ट्र में होता है। महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव (1270-1350) ने मराठी और हिन्दी दोनों में रचना की है, उनके यहाँ सगुण-निर्गुण दोनों भक्ति की प्रवृत्तियाँ मिलती है। ज्ञानदेव के कारण उन पर नाथपंथ का भी प्रभाव था। उन्होंने एक ऐसे भक्ति मार्ग के लिए रास्ता निर्मित किया, जो हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए हो। उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार-प्रसार करते हैं, रामानंद। जो रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में आते हैं। रामानंद का समय 14वीं शता0 माना जाता है। रामानंद का भक्ति मार्ग उदार था, उसमें न जातिगत, संकीर्णता है और न ही निर्गुण-सगुण का विवाद। स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी बिना किसी भेद-भाव के उन्होंने निम्न जाति के लोगों को भी दीक्षा दिया। उनके शिष्यों में कबीर, रैदास, धन्ना, सेना, पीपा प्रसिद्ध है। रामानंद के शिष्यों में निर्गुण संत भी हैं और सगुण भक्त भी। एक निश्चित मत के रूप में संत काव्य के प्रवर्तक निस्संदेह कबीर हैं (15वीं सदी) हैं। कबीर ने जिस निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया है, उसकी परंपरा नामदेव से शुरू होती है। सिद्धों, नाथों, वैष्णवों, सूफियों से वह बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। आचार्य

शुक्ल लिखते हैं- 'निर्गुण पंथ के लिए राह निकालने वाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। जहाँ तक पता चलता है 'निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानंद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किये। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिये। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' वाले दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है तो कहीं योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदाबाद की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्त्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलाजुला भाव इनकी बानी में मिलता है। इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो। बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी (हिंसा) नमाज, रोजा, आदि की असारता दिखाते हुए, ब्रह्म माया, जीव, अनहदनाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्म ज्ञानी बनकर करते थे। सारांश यह है कि ईश्वरपूजा की उन भिन्न-भिन्न बाह्य विधियों पर ये ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन का प्रसार करना चाहते थे।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 45-46) दरअसल संत काव्य धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों- विषमताओं के खिलाफ एक प्रतिक्रिया हैं, इसकी पृष्ठभूमि हमें सिद्धों-नाथों के यहाँ दिखलाई पड़ती है। परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था जिसमें एक बड़े वर्ग को हाशिये पर ढकेल दिया गया था, उस निचले वर्ग की व्यापक हिस्सेदारी हमें संत मार्ग में दिखलाई पड़ती हैं। मुक्तिबोध लिखते हैं-'पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर रैदास, नाभा, सेना नाई आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरूद्ध आवाज बुलंद की।' (नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध पृ0 88)

कबीर के अतिरिक्त रैदास, दादू, रज्जब, सुंदरदास, मलूकदास, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, गुरुनानक, चरणदास, बाबरी साहिब, जगजीवन दास, तुलसी साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, अक्षर अनन्य इत्यादि अन्य संत हैं जिन्होंने संत काव्य परम्परा को आगे बढ़ाया। भक्ति आंदोलन के दौरान निर्गुण पंथी कई सम्प्रदाय भी अस्तित्व में आये जैसे नानक पंथ, कबीर पंथ, निरंजनी संप्रदाय, दादू पंथ इत्यादि। संतमत एक लोक परम्परा है। संतों ने लोक भाषा, जिसे सधुक्कड़ी कहा गया है, का प्रयोग किया है, वे दोहा और गेय पदों में अपनी बात कहते है, बिल्कुल सीधे-सादे ढंग से। उनकी वाणियों में सरलता जन्य सरसता है। उलटवासियों का प्रयोग भी हुआ है जो सिद्धों नाथों के प्रभाव-स्वरुप है। संत काव्य के प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

रचनाकार	**रचना**
कबीर	बीजक (धर्मदास द्वारा संकलित)
नानक	जपुजी, असा दी वार, रहिरास, साहिला, नसीहत नामा
हरिदास निरंजनी	अष्टपदी जोग पग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजायोग ग्रंथ, समाधिजोग, ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ
संतदास एवं जगन्नाथ दास (संग्रहकर्त्ता)	'हरडे वाणी- (दादू की वाणियों का संग्रह)
रज्जब	'अंगवधू' (दादू की वाणियों का संग्रह)
मलूकदास	ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, ज्ञानपरोछि,

	बारहखड़ी, रामअवतार लीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभवविभूति, सुखसागर, शब्द
सुंदरदास	ज्ञानसमुद्र, सुंदरविलास
रज्जब	सुब्बंगी
गुरु अर्जुनदेव	सुखमनी, बावनअखरी, बारहमासा
निपट निरंजन स्वामी	शांत सरसी, निरंजन-संग्रह

9.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य-

सूफी मत से प्रभावित 'प्रेम' को वर्ण्य विषय बनाकर चलने वाली निर्गुणपंथी काव्य धारा ही प्रेममार्गी सूफी काव्य है, जिसे प्रेमाश्रयी शाखा भी कहा जाता है। सूफी मत इस्लाम का एक उदारवादी रूप है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। सूफी कवियों ने प्रेम के दो रूप माने है- इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी। इश्क मिजाजी अर्थात् लौकिक प्रेम, स्त्री-पुरुष का सामान्य प्रेम। इश्क हकीकी अर्थात् ईश्वरीय प्रेम। उन्होंने, लौकिक प्रेमकथाओं का चित्रण करते हुए ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत किया है, ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना की है। उनके यहाँ नायक आत्मा के प्रतीक रूप में और नायिका, परमात्मा के प्रतीक के रूप में आती है। नायक का नायिका से मिलन कई सारी मुसीबतों का सामना करने के उपरांत होता है। प्रायः इन कवियों ने प्रचलित लोक कथाओं को चुना है, उनके प्रबंधों में ऐतिहासिक यथार्थ और कल्पना का योग है। कथा का विकास वे लोक कथा पद्धति के सूत्रों का इस्तेमाल करते हुए कहते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी करते हैं- 'कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही है, जैसे-चित्र दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मंदिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नई कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गयी हैं, जैसे प्रेम व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमार का प्रेमी को गिरफ्तार करा लेना, इत्यादि। परन्तु इन नई कथानक शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। अधिकांश सूफी, काव्यों का मूल आधार भारतीय लोक-कथाएँ हैं।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 163) इन कवियों ने फारसी की मसनवी शैली की पद्धति पर अपने काव्य का प्रणयन किया है। ग्रंथारंभ में ईश्वर और मुहम्मद साहब की स्तुति, गुरु-स्मरण ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख, तत्कालीन बादशाह का उल्लेख इत्यादि मसनवी शैली की विशेषता है। इन कवियों की शैली भले ही फारसी हो लेकिन कथावस्तु से लेकर भाषा तक उस पर भारतीय परिवेश की छाप है। इन काव्यों की आत्मा भारतीय है। सिर्फ लोक प्रचलित भारतीय लोक कथाओं का आधार ही ग्रहण नहीं किया गया है, भारतीय दर्शन और योग-साधना का भी गहरा प्रभाव, दिखलाई पड़ता है।

सूफी कवियों ने प्रबंधात्मक काव्य की रचना की है। प्रायः दोहा-चौपाई की शैली और अवधी भाषा इन काव्यों की विशेषता है। रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी दिखलाई पड़ती है। आत्मा-परमात्मा के प्रेम का निरुपण होने के कारण भावात्मक रहस्यवाद तो है ही, इसके अतिरिक्त यौगिक साधना सम्बन्धी बातें होने के कारण साधनात्मक रहस्यवाद भी आया है। सूफियों के रहस्यवाद के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- 'सूफियों का रहस्यवाद अद्वैतवाद भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रुप में देखता है और उससे मिलने के

लिए व्याकुल रहता है। जिस प्रकार मेघ और समद्र के पानी में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार भक्त भगवान में कोई भेद नहीं है दोनों एक ही हैं। फिर भी मेघ का पानी, नदी का रुप धारण करके समुद्र के पानी में मिल जाने को आतुर रहता है। उसी श्रेणी की आतुरता भक्त में भी होती है। सूफी, कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना है। जायसी भी सूफियों की इस भक्ति भावना के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा को प्रिया के रुप में देखते हैं, और जगत् के समस्त रूपों को उसकी छाया से उद्भाषित बताते हैं। उनके काव्य में प्रकृति उस परम प्रिय के समागम के लिए उत्कंठित और व्याकुल पाई जाती है।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 167)

सूफी काव्य का जहाँ एक धार्मिक-आध्यात्मिक आशय है, वहीं उसका एक लौकिक पक्ष भी है। जिस प्रेम का इन कवियों ने निरुपण किया वह अत्यंत मार्मिक है। शुक्ल जी लिखते हैं- 'सूफियों के प्रेम प्रबंधों में खंडन-मंडन की बुद्धि को किनारे रखकर, मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने का ही प्रयत्न किया गया है जिससे इनका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से पड़ता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 21) इन कवियों ने लोक तत्वों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया हैं। लोकपक्ष की दृष्टि से यह काव्य अत्यंत समृद्ध है। मुसलमान होते हुए सूफी कवियों ने जिस खुले मन से हिन्दू लोक कथाओं, धार्मिक मतों-विश्वासों का सर्जनात्मक उपयोग किया है, वह उनकी उदारता, उनके सेकुलर चरित्र का प्रमाण है। हिन्दू-मुसलमान के बीच नजदीकी लाने, सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया को तीव्र करने में इन सूफी कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है।

सूफी काव्य परंपरा में जायसी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी कृत 'पद्मावत' में सूफी काव्य की सभी विशेषताओं को बखूबी देखा जा सकता है। सपनावति, मुगुधावति, मिरगावति, मधुमालती, प्रेमावती जायसी द्वारा उल्लेखित इन प्रेमाख्यानकों में केवल मिरगावति और मधुमालती ही प्राप्त हुए हैं, बाकी अप्राप्य हैं। बहरहाल, यह तो स्पष्ट हे कि जायसी के पूर्व में प्रेमाख्यानक काव्य रचे गए है। जायसी के अतिरिक्त इस परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाऊद, मंझन, उसमान, शेखनवी, कासिम शाह, नूरमुहम्मद आदि कवि भी हैं। प्रेममार्गी सूफी काव्य परम्परा की प्रथम कृति कौन सी, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार कुतुबन कृत 'मृगावती' इस धारा की प्रथम कृति है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' को, राम कुमार वर्मा मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' को पहली कृति मानते हैं हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य निम्नलिखित है।

ग्रंथ	**रचनाकार**
हंसावली (1370 ई.)	असाइत
चंदायन (1379 ई.)	मुल्ल दाऊद
लखमसेन पद्मावती कथा (1459)	दामोदर कवि
सत्यवती कथा (1501)	ईश्वरदास
मृगावती (1503)	कुतुबन
माधवानल कामकंदला (1527)	गणपति
पद्मावत (1540)	जायसी
मधुमालती (1545)	मंझन

रूपमंजरी (1568)	नंददास
प्रेमविलास प्रेमलता की कथा (1556)	जटमल
छिताईवार्ता (1590)	नारायण दास
माधवानल-कामकंदला (1584)	आलम
चित्रावली (1613)	उसमान
रसरतन (1618)	पुहकर
ज्ञानदीप (1619)	शेखनवी
नल-दमयंती (1625)	नरपति व्यास
नल चरित्र (1641)	कुंद सिंह
हंस जवाहिर (1731)	कासिम शाह
इंद्रावती (1744)	नुरमुहम्मद
अनुराग बाँसुरी (1764)	नुरमुहम्मद
कथा रतनावली, कथा कनकावती, कथा कंवलावति, कथा मोहिनी, कथा कलंदर इत्यादि (रचनाकाल 1612-1664 ई. तक)	जान कवि

9.5.3 रामभक्ति काव्य-

आदिकाल से ही राम काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है। दरअसल उच्चतर मानवीय मूल्यों पर आधारित राम का व्यक्तित्व एवं जीवन हमेशा रचनाकारों को आकृष्ट करता रहा है। भारतीय संस्कृति के वह केन्द्रीय चरित्र हैं। राम एक ऐतिहासिक चरित्र हैं या मिथकीय यह विवाद का मुद्दा भले हो, किन्तु भारतीय समाज-संस्कृति में राम की अत्यंत गहरी और व्यापक उपस्थिति एक यथार्थ है। बहरहाल आदिकवि बाल्मीकि कृत आदिग्रंथ 'रामायण' में सर्वप्रथम रामकथा का निरूपण किया गया है। बाल्मीकि के पूर्व रामकथा की वाचिक और लिखित परम्परा निश्चित तौर पर रही होगी। लेकिन अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध हुआ है। 'रामायण' का रचनाकाल चौथी सदी ई.पू0 माना जाता है। रामायण का भिन्न क्षेत्रों-समाजों, भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप में रूपांतर-विकास हुआ है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी रामकथा का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। संस्कृत, पालि, प्राकृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, गुजराती, बंग्ला, हिन्दी, काश्मीरी, असमी, नेपाली आदि कई भाषाओं में रामकथा का प्रणयन हुआ। इनमें कालिदास कृत 'रघुवंश' भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित', कम्बन कृत 'तमिल रामायण', कृत्तिवास कृत बंग्ला में 'कृतिवासीय रामायण' तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस', माधव कन्दलि कृत 'असमिया रामायण' इत्यादि को विशेष ख्याति मिली।

हिन्दी में राम काव्य परम्परा में सर्वोच्च स्थान गोस्वामी तुलसीदास का है। उन्होंने रामकथा को व्यापक फलक पर प्रतिष्ठित कर जनता का कंठहार बना दिया। समन्वय का विराट चेष्टा और लोकमंगल के विधान के कारण

तुलसी को अपार लोकप्रियता मिली। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'जगत् प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरुपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (सं. 1073) ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैत वाद के अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं। अतः इन जीवों के लिए उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्य लाभ करने का प्रयत्न करें। रामानुज जी की शिष्य परंपरा देश में बराबर फैलती गयी और जनता भक्ति मार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुज जी के श्री संप्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना है। इस संप्रदाय में अनेक साधु महात्मा बराबर होते गये।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 75)। रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में रामानंद हुए। वे काशी के राघवानंद जी के शिष्य थे। वास्तव में रामभक्ति को प्रतिष्ठित करते का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने भक्ति को शास्त्रीय घेरे बंदी से मुक्त कर लोक ग्राह्य बनाया, भक्ति मार्ग को सभी के लिए खुला रखा। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-''तत्वतः रामानुजाचार्य जी के मतावलंबी होने पर भी अपनी उपासना पद्धति को उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिए बैकुंठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करने वाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूल मंत्र हुआ राम नाम। सगुण ब्रह्म के आग्रही होते हुए भी रामानंद ने निर्गुण भक्ति को भी प्रोत्साहन दिया। रामानंद कृत दो ग्रंथ मिलते हैं- 'वैष्णवमताब्जभास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। दोनों संस्कृत में हैं। प्रसिद्ध प्रार्थना 'आरती कीजै हनुमान लला की' उन्हीं द्वारा रचित है। रामानंद जी की ही शिष्य परम्परा में तुलसीदास आते हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामभक्ति काव्य पंरपरा में अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास केशवदास भी हुए, किन्तु किसी को तुलसी जैसी ख्याति नहीं मिली। रामभक्ति धारा में दास्य-भाव की भक्ति प्रधान है, किन्तु कालांतर में अग्रदास के सखी सम्प्रदाय रामचरणदास द्वारा प्रवर्तित स्वसुखी शाखा और जीवाराम प्रवर्तित तत्सुखी शाखा द्वारा रामभक्ति में रसिक भावना का समावेश होता हैं। इन शाखाओं की कोई उल्लेखनीय काव्यात्मक उपलब्धि नहीं है।

रामभक्ति शाखा के प्रमुख रचनाकार और उनकी रचनाएँ हैं-

रचनाकार	**रचना**
1. विष्णुदास	महाभारत कथा, रूक्मिणी मंगल, र्स्वगारोहण, स्नेहलीला
2. रामानंद	वैष्णव मताब्ज भाष्कर, श्री रामार्चन पद्धति, रामरक्षास्रोत।
3. अग्रदास	ध्यान मंजरी, अष्टयाम, रामभजनमंजरी, उपासना-बावनी, पदावली।
4. ईश्वरदास	भरत मिलाप, अंगदपैज
5. तुलसीदास	दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितामानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली
6. नाभादास	भक्तमाल, अष्टयाम
7. केशवदास	रामचंद्रिका
8. प्राणचंद चौहान	रामायण महानाटक
9. माधवदास चारण	राम रासो, अध्यात्म रामायण
10. हृदयराम	हनुमन्नाटक
11. नरहरि बारहट	पौरुषेय रामायण
12. लालदास	अवध विलास

9.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य-

ईश्वरीय रूप में श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव कब हुआ, इस संदर्भ में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। पुराण काल में श्रीकृष्ण एक प्रमुख ईश्वर अवतार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। भागवत पुराण में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। गोपियों के साथ उनके प्रणय-प्रसंग का वर्णन मनोहारी है। ध्यान देने योग्य है कि भागवत में कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं मिलता। कृष्ण की प्रेयसी के रूप राधा 12वीं सदी के संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविंद' में आती है। जयदेव के पश्चात् बंग्लाकवि चंडीदास और मैथिल कवि विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का विशद वर्णन मिलता है। विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम तो अत्यंत मांसल हो उठा है। बहरहाल भागवत में वर्णित लीलाएँ ही कृष्ण भक्ति काव्य का आधार रही हैं। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भी कृष्णोपासना का प्रसार किया, उनकी भक्ति में माधुर्य भाव की प्रधानता है। कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार देकर प्रचारित-प्रसारित करने वालों में दो वैष्णव आचार्यों निम्बाकाचार्य (12-13 वीं सदी) और वल्लभाचार्य (15-16 वीं सदी) का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

वल्लभ ने देश भर घूम-घूमकर और विद्वानों से शास्त्रार्थ कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। अंत में ब्रज में उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की। उन्होंने श्री कृष्ण के लीलागान का उपदेश दिया। वल्लभ के पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य - कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्ण दास- सम्मिलित हैं। अष्टछाप के कवि पुष्टिमार्गी भक्त है, जिन्होंने कृष्ण की लीलाओं को विषय वस्तु बनाकर काव्य प्रणयन किया। इनमें सूरदास, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। 'सूरसागर' में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीला के अंतर्गत उन्होंने वात्सल्य और श्रृंगार का जितना सूक्ष्म, स्वाभाविक और मार्मिक अंकन किया है वह समूचे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। राग और रस के जिस आनंदोत्सव को सूर ने सूरसागर में दिखलाया है वह सहृदय को हमेशा आहलादित करता रहा है। उनकी कविता में समूचा व्रज अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ सजीव हो उठा है।

राधा वल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय (सखी संप्रदाय), गौड़ीय संप्रदाय का भी कृष्ण भक्ति काव्य में महम्वपूर्ण योगदान रहा है। राधा वल्लभ संप्रदाय में श्री कृष्ण से भी ज्यादा राधा को महत्व दिया गया है। राधावल्लभ संप्रदाय की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए विजेन्द्र स्नातक लिखते हैं- 'राधावल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण का प्रमुख स्थान नहीं है, राधा ही प्रमुख है। श्रीकृष्ण आनुवांशिक रूप से वर्णित हैं, किन्तु इस वर्णन में कृष्ण के भीतर सभी शक्तियों का समाहार अवश्य लक्षित होता है। वृदावन विहारी कृष्ण ही रसिक किशोर रूप में एकमात्र नित्यबिहारी पुरुष हैं। उनकी पराप्रकृति श्री राधा हैं, जो चित्-अचित् विशिष्ट अह्लादिनी निजशक्ति रूपा हैं। सारा चराचर जगत् इन्हीं रसिक युगलकिशोर का प्रतिबिम्ब हैं। भगवान कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परात्पर ब्रह्म के भी आदि कारण और ईश्वरों के भी ईश्वर है। श्रीकृष्ण का वृंदावनविहारी, मधुरावासी और द्वारकावासी के रूप में वर्णन मिलता है। ऐश्वर्य, ज्ञान, शक्ति और पराक्रम को अंतर्लीन कर, प्रेम और माधुर्य की साक्षात् मूर्ति बनकर वे गोप-गोपियों के साथ लीलारत रहते हैं। वे राधापति होकर रस राज श्रृंगार के सौन्दर्यमंडित रूप का विस्तार करने वाले हैं। इस संपदाय में श्रीकृष्ण का उपास्य नाम 'राधवल्लभ' है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं0 डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 186) हितहरिवंश, दामोदरदास (सेवकजी), हरिराम व्यास चतुर्भुजदास, ध्रुवदास, नेही नागरीदास आदि इस संप्रदाय के प्रमुख काव्य भक्त कवि हैं। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित सखी संप्रदाय में निकुंज बिहारी श्री कृष्ण को सर्वोपरि महत्ता दी गई है। चित्त को श्रृंगार रस से सराबोर कर श्रीकृष्ण की लीलाओं का दर्शन ही सखी (भक्त) को अभीष्ट है। इस संप्रदाय के प्रमुख कवि

हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, बीठल विपुल, बिहारिनदास आदि हैं। गौड़ीय संप्रदायय का प्रवर्तन चैतन्य महाप्रभु ने किया। उन्होंने गोलोक की लीलाओं, सहित ब्रज में बिहार करने वाले ब्रजेन्द्र कुमार श्री कृष्ण को उपास्य माना है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव या कांता भाव की है। रामराय, गदाधर भट्ट, चंद्रगोपाल, भगवत मुदित, माधवदास 'माधुरी' आदि इस संप्रदाय के प्रमुख कवि है। इनके अतिरिक्त कई संप्रदाय निरपेक्ष कवि भी हुए जिनमें रसखान और मीरा का विशेष स्थान है।

कृष्ण भक्ति काव्य में मुख्यतया श्री कृष्ण कृष्ण की लीलाओं का ही चित्रण है। यथा-श्रीकृष्ण जन्म, पूतनावध, दधि-माखनचोरी, बाल कृष्ण की विविध चेष्टाएँ, गोदोहन, गोचारण, कालिया दमन, गोवर्धन-धारण, दान लीला, मान लीला, चीर हरण लीला, रास लीला, श्री कृष्ण मथुरा गमन, कंस वध, कुब्जा प्रसंग, भ्रमर गीत प्रसंग इत्यादि। श्री कृष्ण के लोक रक्षक रूप की अपेक्षा उनके लोक रंजक रूप को प्रमुखता दी गयी हैं। वात्सल्य और श्रृंगार इन कवियों के प्रधान क्षेत्र हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में भ्रमरगीत प्रसंग काअपना एक अलग महत्व है। भ्रमरगीत गोपियों की निष्ठा और व्यथा के मार्मिक दस्तावेज के रूप में आता है, जहाँ उनकी वचनविदग्धता, वाक चातुरी भी प्रकट होती है। कृष्ण भक्ति काव्य के संदर्भ में, आचार्य शुक्ल कहते हैं- सब संप्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही अपनाया। पर्याप्त महत्त्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोकरक्षक और धर्मसंस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी। भगवान के मर्मस्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित होने और आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्ण भक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्ण भक्त कवि अधिकतर फुटकर श्रृंगारी पदों की रचना में ही लगे रहे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गंभीर पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए, न अनेकरूपता आयी। .... राधाकृष्ण की प्रेम लीला ही सब ने गायी।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 104) कृष्ण भक्ति काव्य का माधुर्य भाव कालांतर में अतिशय श्रृगारिकता में तब्दील हो जाता है, और रीतिकाल का जन्म होता है। कृष्ण भक्तिकाव्य प्रायः मुक्तकों के रूप में मिलता है, प्रबंध काव्य कम लिखे गये। भाषा प्रायः ब्रज रही है।

कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं-

रचना	**रचनाकार**
सूरदास	सूर सागर, साहित्य लहरी, सूर सूरावली
नंददास	अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बाहरखड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित, रूक्मिणी मंगल, भंवरगीत, रामपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, गोवर्धनलीला, दशमस्कंधभाषा, नंददास पदावली
हितहरिवंश	हित चौरासी, स्फुटवाणी, संस्कृत में-राधा सुधनिधि, यमुनाष्टक
चतुर्भुज दास	भक्ति प्रताप, द्वादशयज्ञ, हित जू को मंगल
हरिदास	सिद्धांत के पद, केलिमाल
मीरा	गीत गोविंद की टीका नरसी जी का

	मायरा, राग सोरठ कापद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभामानु रूसणं, मीरा की गरबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरीत, स्फुट पद
रसखान	सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम

9.6 भक्तिकाव्य का महत्व

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। यह सिर्फ आध्यात्मिक परितोष ही नहीं प्रदान करता, सन्मार्ग पर चलने की, एक उदार-मानवीय समाज निर्मित करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। भक्त कवियों ने भक्ति को सहज-सरल बनाकर उसे शास्त्र-पुरोहित-कर्मकाण्ड-बाह्याचार की जकड़बंदी से मुक्त किया, इससे सामान्य मनुष्य भी भक्ति का अधिकारी बन सका। भक्ति काव्य वर्गगत-वर्णगत-संप्रदायगत भेदभाव के ऊपर मानुष सत्य को महत्व देता है। जिस सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पद्धति की इन कवियों ने वकालत की है वह मनुष्य के जीवन को नैतिक बनाता है। इस काव्य, विशेषकर संत कवियों ने जिस तरह जातिगत भेद भाव को अर्थहीन साबित करते हुए मानव मात्र की एकता-समता का प्रतिपादन किया हैं उससे सदियों से वंचित-उपेक्षित वर्ग को एक नया बल मिलता है। सूफी कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता को प्रोत्साहित किया। रामकाव्य से समाज को जीवन-मानवीय सम्बन्धों का आदर्श मिलता है। तुलसी ने विविध प्रवृत्तियों में समन्वय की जो चेष्टा की है, वह अंततः लोक मंगलकारी सिद्ध होता है। कृष्णभक्ति काव्य से समाज में राग-रस का संचार होता हैं। भक्तिकाव्य ने कला, संगीत को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। कृष्ण भक्ति काव्य ने संगीत, विविध राग-रागनियों के विकास में बड़ा भारी योग दिया। भक्त कवियों ने संस्कृत, फारसी को न अपनाकर लोकभाषा को अपनाया, इससे लोक भाषाओं का साहित्यिक विकास होता है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी और व्रज भक्तिकाव्य की ही देन है। उच्चादर्शों से परिचालित होने के कारण ही भक्ति काव्य इतना प्रेरक और प्रभावी सिद्ध हुआ। भक्तिकाव्य के महत्व को रेखांकित करते हुए प्रेमशंकर लिखते हैं- ‘भक्तिकाव्य की लंबी यात्रा का कारण देवत्व नहीं है, इसके विपरीत उसकी मानवीय चिंता है, जो उसे आज भी किसी बिंदु पर प्रासंगिकता देती है, उसे और उसे खारिज कर पाना उनके लिए भी कठिन , जो स्वयं को भक्तिमार्गी कहने से बचना चाहते हैं। भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र है, समय-समाज से उसकी टकराहट जो कभी कबीर की तरह जुझारू दिखाई देती है, और अन्यत्र संयत, पर असंतोष सबमें है। समाजदर्शन है- नए विकल्प की खोज, नए मूल्य-संसार की तलाश। रामकृष्ण तो माध्यम हैं, वास्तविक लक्ष्य है, रचना स्तर पर उच्चतर भावलोक की प्राप्ति। समाजशास्त्र और समाज दर्शन के लिए भक्तिकाव्य ने जिस अभिव्यक्ति कौशल का आश्रय लिया, वह स्वतंत्र चर्चा का विषय है। पर रचना की प्रमाणिकता के लए इन सजग कवियों ने पूरा मुहावरा लोकजीवन से ही प्राप्त किया- भाषा, छंद आदि। भक्तिकवियों में मध्यकालीन लोकजीवन की उपस्थिति और एक वैकल्पिक मूल्य-संसार की तलाश उसकी सामर्थ्य का प्रमाण है। भक्तिकाव्य में समाजदर्शन मिलकर अपने रचना-संसार को ऐसी दीप्ति देते हैं कि उसे कालजयी काव्य कहा जाता है। उसका वैशिष्ट्य यह है कि वह अपने समय से संघर्ष करता हुआ?, उसे पार करने की क्षमता का प्रमाण देता है और लोक को सीधे ही संबोधित करता है, पूरे आत्मविश्वास के साथ। उसका वैकल्पिक भाव-विचार-लोक उसका ‘काव्य-सत्य’ है, जिसे व्यापक स्वीकृति मिली।’ (भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, पृ0 88)

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अष्टछाप की स्थापना किसने की?
2. रासपंचाध्यायी के रचयिता हैं?
3. कबीर की वाणियों का संग्रह हैं?
4. तुलसी द्वारा रचित कितने ग्रंथ माने जाते हैं?
5. तुलसी की भक्ति किस प्रकार की है?
6. 'मृगावती' के रचनाकार है?
7. रत्नसेन किस प्रेमाख्यानक काव्य का नाटक है?
8. 'भक्त माल' के रचयिता है?

9.7 सारांश

भक्तिकाव्य दो धाराओं में विभक्त है- निर्गुण भक्त काव्य और सगुण भक्ति काव्य। इनका भी क्रमशः संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य और रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य में विभाजन हुआ है। भक्ति काव्य की विविध धाराओं की विभिन्नता के बावजूद, ऐसी कुछ समान विशेषताएँ हैं जो समूचे भक्ति काव्य में दिखलाई पड़ती हैं यथा- भक्ति, गुरुमहिमा, नाम स्मरण का महत्व, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकधर्मिता इत्यादि। निर्गुण सगुण भक्ति में मुख्य भेद उपास्य के स्वरुप भक्ति, के आधार को लेकर है। निर्गुण भक्ति में ब्रह्म को निराकार, अजन्मा, अशरीरी, इंद्रियातीत माना गया है जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म सविशेष, साकार इंद्रिय गम्य है। अवतारवाद में निर्गुण संतों की कोई आस्था नहीं है, जबकि सगुण भक्त ईश्वर के अवतारों में विश्वास करते हैं। भक्तिकाव्य का उदय एवं विकास भक्ति आंदोलन के दौरान होता है। सिद्ध, नाथ, दक्षिण के आलवार, महाराष्ट्र के नामदेव, वैष्णव आचार्यों, सूफियों इन सभी की प्रेरणा प्रभाव स्वरुप संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति, कृष्ण भक्तिकाव्य का विकास होता है। भक्ति काव्य की इन चारों शाखाओं के क्रमशः प्रतिनिधि रचनाकार कबीर जायसी, तुलसीदास और सूरदास है। भक्तिकाव्य की मूल संवेदना भक्ति है, वह समाज की आध्यात्मिकक तृषा को तृप्ति प्रदान करता है, उसकी प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसे ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। भक्ति काव्य का सबसे बड़ा महत्व उसकी मानवीयता और लोकधर्मिता के कारण है।

9.8 शब्दावली

उलटबाँसी-लोक व्यवहार से उल्टी बात। उलटबाँसी के अंतर्गत ऐसी बातों का कथन होता है, जो व्यावहारिक जीवन में दिखाई पड़ने वाली बातों के विपरीत होती है। इसमें घुमा-फिराकर, प्रतीकों का सहारा लेकर अभीष्ट अर्थ को प्रकट किया जाता है। इससे कथन में चमत्कार आ जाता है। उलटवॉसी शैली सिद्धों नाथों की विशेषता थी। संत कवियों विशेषकर कबीरदास ने इस शैली को अपनाया है।

अंतस्साधना-अंतस्साधना का अर्थ है, वह साधना जो भीतर ही भीतर की जाती है, जिसमें बाह्य पूजा-विधान, कर्मकाण्ड इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं होती है। अंतस्साधना के दो रूप हैं-एक के अंतर्गत यौगिक क्रियाएँ-कुण्डलिनी-जागरण, चक्र-भेदन, शून्य समाधि इत्यादि आती हैं। दूसरे के अंतर्गत पूरी तन्मयता के साथ प्रभु का

चिंतन-मनन, नामस्मरण आता है। संत कवियों ने बाह्यसाधना का विरोध किया है और अंतस्साधना को महत्व दिया है।

रहस्यवाद-अव्यक्त, निराकार, ब्रह्म की जिज्ञासा, आत्मा-परमात्मा के एकात्म की अनुभूति रहस्यवाद है। इसके अंतर्गत अनुभवातीत ब्रह्म को अनुभव के दायरे में लाया जाता है, साधना की विविध स्थितियों का निरूपण आता है। शुक्ल जी रहस्यवाद के दो भेद मानते हैं- साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद।

सधुक्कड़ी भाषा- संतों की भाषा को सधुक्कड़ी कहा गया है। दरअसल सधुक्कड़ी भाषा विभिन्न भाषाओं-बोलियों-भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, पंजाबी, अरबी-फारसी का एक मिश्रित रूप है। संतों की धूमंतू प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में विविध क्षेत्रों, बोलियों के शब्द मिलते हैं।

पुष्टि-पुष्टि का अर्थ है पोषण, अनुग्रह। बल्लभाचार्य ने भगवत्नुग्रह अर्थात् पुष्टि की प्राप्ति को भक्त का लक्ष्य माना है। इसे प्रेमालक्षण भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। 'पुष्टि' पर बल देने के कारण ही बल्लभ के भक्ति मार्ग को पुष्टिमार्ग कहा गया है।

अष्टछाप-पुष्टिमार्ग भक्त कवियों को अष्टछाप के कवि कहा जाता है। अष्टछाप की स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य हैं। ये आठ कवि हैं- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। कृष्ण की लीलाओं का गान श्रीनाथ जी के अष्टयाम की सेवा इनका कार्य था। ये आठ कवि 'अष्टसखा' भी कहलाते हैं।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विट्ठलनाथ
2. नंददास
3. बीजक
4. 12
5. दास्य भाव की
6. कुतुबन
7. पद्मावत
8. नाभादास

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।

शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।

मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

मुक्तिबोध, गजानन माधव- नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, राजकमल प्रकाशन।

9.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य औरसंवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. नगेन्द्र
3. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1 - सं. धीरेन्द्र वर्मा
4. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्गुण सगुण भक्ति के साम्य-वैषम्य पर प्रकाश डालिए?
2. भक्ति काव्य के महत्व का उद्धाटन कीजिए?
3. भक्ति काव्य की विविध शाखाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।
4. भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ क्या हैं?

इकाई 10 कबीर : जीवन एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 कबीर : जीवन एवं रचनाएँ

10.3.1 कबीर : जीवन परिचय

10.3.2 कबीर : रचनाएॅं

10.4 कबीर : विचार एवं दर्शन

10.5 निर्गुण राम की परिकल्पना

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.10 सहायक पाठ्य सामग्री

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाईयों में आपने भक्तिकाल और भक्ति कविता के उद्भव एवं विकास को विस्तापूर्वक समझा, साथ ही आपने यह भी जाना कि भक्तिकालनी कविता के भीतर विभिन्न काव्य-रूपों का विकास किस प्रकार हुआ।

प्रस्तुत इकाई में आप विस्तारपूर्वक हिंदी भक्तिकाल के सबसे महत्वपूर्ण हस्ताक्षर कबीर के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व से परिचित होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निर्गुण भक्तिधारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्गीशाखा के कवि कबीर की कविता में व्याप्त साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न रूपों का आलोचनात्मक परिचय करेंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- आप कबीर के जीवन एवं उनकी रचनाओं के बारे में बता सकेंगे।
- आप कबीर की काव्य चेतना में व्याप्त ज्ञान एवं दर्शन को जान सकेंगे।
- कबीर के काव्य में समाहित विभिन्न महत्वपूर्ण घटकों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कबीर की भक्ति-भावना का परिचय प्राप्त करेंगे।
- हिंदी साहित्य के अन्तर्गत कवि कबीर का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

10.3 कबीर : जीवन एवं रचनाएँ

10.3.1 कबीर : जीवन परिचय

जन्म – कबीर के जन्म को लेकर स्पष्टत: कुछ भी कहा नहीं जा सकना लगभग असंभव माना जाता है। विभिन्न विद्वानों ने कबीर के जन्म के संबंध में अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर का जन्म लगभग 1270 ई. के आस-पास माना है। डा. परशुराम चतुर्वेदी, डा. फार्कुहर एवं डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार कबीर का जन्म 1425 ई. के पूर्व हो गया होगा। डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर का जन्म संवत् 1456 तथा डॉ.माताप्रसाद गुप्त के अनुसार इनका जन्म संवत् 1455 माना है। आधुनिक खोजों के बाद कबीर का जन्म काल संवत् 1518 (1398 ई.) को माना गया है।

स्थान – जन्मतिथि की ही तरह कबीर के जन्म स्थान को लेकर भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। प्राय: विद्वान कबीर का जन्म काशी में मानते हैं परन्तु कुछ विद्वानों ने उनका जन्म 'मगहर' में तथा कुछ विद्वान आजमगढ़ जिले के 'बेलहरा' गाँव में मानते हैं। उदाहरणत: श्यामसुंदर दास ने कबीर का जन्म काशी में माना है तथा डा. रामकुमार ने इनका जन्म मगहर माना है। 'बनारस डिस्ट्रिक्ट गजेटियर' के अनुसार कबीर का जन्म आजमगढ़ जिले के बेलहरा गॉव में हुआ था। विद्वानों द्वारा प्रतिपादित इन विभिन्न मतों का विश्लेषण करने पर विश्लेषकों ने काशी को ही कबीर का जन्म स्थान माना है।

जाति – जन्मतिथि एवं जन्म स्थान के साथ ही कवि कबीर की जाति के संबंध में भी विद्वानों में अब तक मतभेद बना हुआ है।

(क) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''कबीरदास का संबंध जुगी नामक जाति से था। यह जाति पहले न हिंदू थी और न मुसलमान। इनका संबंध अधिकतर वर्णाश्रम धर्मविहीन नाथपंथियों से था। अत: पूर्व संस्कार अभी तक बना हुआ था। आचार्य द्विवेदी के अनुसार कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो बार-बार कहा है किन्तु मुसलमान एक बार भी नहीं कहा है।

(ख) उनकी न हिंदू न मुसलमान वाली उक्ति उन्हीं वर्णाश्रम भ्रष्ट जुगी जाति के व्यक्तियों की ओर संकेत करती है।

(ग) कबीरदास जी ने अपनी उक्ति में यह स्वीकार किया है कि हिन्दू, मुसलमान और योगी अलग-अलग होते है।

(घ) कबीर दास के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बचे रहे थे जिनमें से आधे को हिन्दुओं ने जलाया और आधे को मुसलमानों ने दफनाया।

विश्लेषण के पश्चात् यह बात कही जा सकती है कि वस्तुत: कबीर जुलाहे थे जो काशी के निवासी थे। सम्भवत: उनके माता-पिता पहले हिंदू रहे हों, बाद में इस्लाम स्वीकार कर लिया होगा। कबीर के संबंध में विश्लेषण करने के पश्चात् विद्वानों ने कुछ सर्वमान्य निष्कर्ष प्रतिपादित किए जिन्हें विद्यार्थियों के ज्ञान-लाभ के लिए साभार उद्धृत किया जा रहा है।

"कबीर के संबंध में अन्त: साक्ष्य एवं बहि: साक्ष्य से उपलब्ध उपर्युक्त सामग्री के विवेचन से स्पष्ट है कि उनके विषय में इतनी पृथक्-पृथक् और परस्पर विरोधी बातें कही गयी हैं कि सर्वथा निभ्रांत एवं विवादरहित निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत कठिन है। मोटे तौर पर उनके संबंध में यह कहा जा सकता है –

1. उनका जन्म काशी में हुआ था और जीवन का अधिकांश काशी में ही बीता था। उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा की थी। मगहर से भी उनका किसी न किसी प्रकार का संबंध अवश्य था।
2. उनकी जन्म तिथि तथा मृत्यु तिथि के संबंध में बहुत विवाद है। मोटे तौर पर उनका समय विक्रम की 15वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से 16वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध प्रमाणित होता है। लगभग यही समय रामानंद (संवत् 1356-1427), नानक (सं. 1526-1515), और सिकंदर लोदी (सं. 1555-1574) का भी था। वे दीर्घजीवी थे और सौ वर्षों से अधिक जीवित रहे।
3. कबीर का जन्म चाहे जिस परिवार में हुआ हों, किन्तु वह जुलाहा-वंश में पाले गए थे। उनका पोषक-परिवार वयनजीवी था। यह परिवार ऐसा था जो मूलत: हिन्दू था, किन्तु दो पीढ़ी पूर्व मुसलमान हो गया था। कबीर यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम संकीर्णताओं से परे थे, उनके बाह्याचार के विरोधी थे तथापि उन पर हिन्दू-संस्कारों की गहरी छाप थी। उनमें अहिंसा का स्वर निश्चित रूप से हिंदू संस्कारों का प्रभाव माना जाएगा। इसी प्रकार उन्होंने हिन्दू पौराणिक कथाओं, देवी-देवताओं और सन्दर्भों का जिस प्रकार उल्लेख किया है, वह उनके हिन्दू धर्म की गहरी जानकारी का परिचायक है।
4. कबीर के गुरू के संबंध में प्राय: रामानंद और शेख तकी का उल्लेख किया गया है। अधिकांश लेखक, रामानंद को उनका गुरू मानने के पक्ष में हैं। शेख तकी कबीर के गुरू नहीं हो सकते। कबीर ने जिस ढंग से शेख तकी को सम्बोधित किया है, गुरू के प्रति ऐसा संबोधन कोई नहीं कर सकता। अधिकांश लेखकों की यह मान्यता भी है कि शेख तकी से द्वेष के कारण सिकन्दर लोदी ने कबीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी थीं। जहाँ तक रामानंद का प्रश्न है, उन्होंने कबीर को विधिवत् भले ही दीक्षित न किया हो, किन्तु उनका प्रभाव कबीर पर अवश्य था। कबीर ने गुरू का श्रद्धापूर्वक अनेक बार स्मरण किया है। उसे मार्गदर्शक सर्वश्रेष्ठ दानी और ईश्वर-तुल्य बताया है। पदों में सदगुरू की तुलना भृंग से की गई है, जो

शिष्य के मनो-दोहात्मक विकारों को दूर कर देता है। वस्तुत: साधना मार्ग में गुरू की सहायता एवं कृपा के बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। गुरू तीन प्रकार के माने गए है – मान गुरू, सिद्ध गुरू और दिव्य गुरू। ऐसा प्रतीत होता है कबीर के मानव गुरू रामानंद थे। उनसे कबीर को 'राम-नाम' का मंत्र प्राप्त हुआ था। लेकिन उनके अतिरिक्त कबीर को दिव्य गुरू का भी साक्षात्मकार हुआ था, जो स्वयं परमप्रभु ईश्वर ही थे।

मृत्यु – "अनंतदास की परचई में कबीर की आयु 120 वर्ष की बतायी गई है। सन् 1398 कबीर का जन्म-काल सिद्ध करने पर निधन-काल सन् 1518 (सं.1575) ही ठहरता है1 इसके अतिरिक्त कबीर का संकेत साखियों में जिस राणा की ओर रहा है वह भी इस समय तक अपने प्रताप की प्रखर किरणें विकीर्ण करने लगा था।" अतएव कबीर की मृत्यु तिथि सन् 1518 (सं. 1575) उचित जान पड़ता है। कबीर का यह जीवन-काल उन्हें रामानंद, सिकन्दर लोदी, पीपा, नानक तथा राणा संग्राम सिंह का समकालीन बना देता है।

10.3.2 कबीर : रचनाएँ

कबीर की रचनाओं के विषय में समय-समय पर विभिन्न अध्येताओं ने शोध किया है। इस संबंध में डा. जयदेव सिंह एवं डा.वासुदेव सिंह द्वारा किया गया विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

''कबीर पर 18वीं शताब्दी से कार्य प्रारम्भ हो गया था, किन्तु कबीर-साहित्य की वैज्ञानिक खोज का कार्य सन् 1903 में एच.एच. विल्सन ने किया। उन्हें कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रंथ मिले। उसके बाद बिशप जी.एच. वेस्टकॉट ने कबीर लिखित 84 पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की। रामदास गौड़ लिखित 'हिन्दुत्व' नामक ग्रंथ में कबीर की 71 पुस्तकें गिनायी हैं। मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी-नवरत्न' में 75 ग्रंथों की तालिका दी है। इसी प्रकार हरिऔध जी द्वारा संपादित 'कबीर वचनावली' में 21 ग्रंथों, युगलानंद द्वारा सम्पादित 'बोधसागर' मकें 40 ग्रंथों, डा. रामकुमार वर्मा के हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में 61 ग्रंथों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टो में 140 ग्रंथों की सूची मिलती है। कबीर द्वारा लिखित साहित्यिक रचनाओं को अध्येताओं ने तीन रूपों में विभाजित किया है (1) साखी (2) सबद अथवा पद और (3) रमैनी। कबीर के साहित्यिक संकलनों का विश्लेषण करते हुए विद्वानों ने लक्ष्य किया है कि इस दिशा में दो प्रकार के कार्य किए गए हैं एक, साहित्यिक विद्वानों द्वारा और दूसरे, कबीर पन्थी साधनों द्वारा साहित्यिक क्षेत्र में इस दिशा में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य बाबू श्याम सुन्दरदास ने किया। उन्होंने संवत् 1985 में दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'कबीर ग्रंथावली' का सम्पादन करके, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित कराया। उनके अनुसार ''कबीरदास के ग्रंथों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् 1561 की लिखी है और दूसरी संवत् 1881 की। पहली प्रति की अपेक्षा इसमें 131 दोहे और 5 पद अधिक है। इन दो प्रतियों के अतिरिक्त संवत् 1661 में संकलित 'गुरू-ग्रंथ साहिब' में सग्रंहीत कबीर के जो दोहे और पद उक्त प्रतियों में भी थे, उन्हें मूल अंश में सम्मिलित कर लिया गया है और शेष को परिशिष्ट में दे दिया गया है और शेष को परिशिष्ट में दे दिया गया है। इस प्रकार 'कबीर-ग्रंथावली' में कुल 809 साखियाँ, 403 पद और 7 रमैनियाँ संगृहीत है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में 192 साखियाँ और 222 पद और दे दिए गए हैं।''

"बाबू श्यामसुंदर दास की 'कबीर ग्रंथावली' के प्रकाशन के लगभग 15 वर्षो बाद संवत् संवत् 2000 (सन् 1933) में डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' नाम से कबीर की रचनाओं का अन्य संस्करण निकाला। उनके मत से ''नागरी प्रचारिणी, सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रंथावली' का पाठ संन्दिग्ध और अप्रामाणिक है1 पाठ का पंजाबीपन तो 'पूरब' निवासी कबीर की वाणी का विषय शीशे में पड़ा हुआ विकृत प्रतिबिम्ब-सा है।'' डा. वर्मा की दृष्टि में 'कबीर-ग्रंथावली' की भाषा अप्रामाणिक है ही, उसके पाठ निर्धारण में भी अनेक त्रुटियाँ है।''

कबीर साहित्य के वैज्ञानिक स्वरूप-निर्धारण का दूसरा कार्य डा. पारसनाथ तिवारी के 'कबीर-ग्रंथावली' नाम से किया है। इसके पश्चात् समय-समय विभिन्न विद्वानों ने कबीर की रचनाओं का शोधपूर्ण संकलन प्रस्तुत किया। जिनमें से कुछ प्रमुख संकलन निम्नांकित हैं।

1. कबीर ग्रंथावली – डा. माताप्रसाद गुप्त
2. कबीर वचनावली – कबीर साहब की शब्दावली
3. गोविन्द राम दुर्लभराम – ग्रंथ शब्दावली
4. मुंशी शिवव्रत लाल – सन्त कबीर की शब्दावली
5. मुंशी शिवव्रत लाल - सन्त कबीर की साखी
6. विचार दास शास्त्री – कबीर की साखी
7. हुज़ुर साहब – कबीर की साखी
8. विचारदास शास्त्री – सदुरू कबीर साहब का साखी ग्रंथ
9. महाराज राघवदास – सटीक साखी ग्रंथ
10. रामचंद्र श्रीवास्तव – कबीर साखी सुधा

इन संकलनों के अलावा कबीर द्वारा लिखित एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक 'बीजक' भी प्राप्त होती है कबीर साहित्य के अध्येता इस पुस्तक की महत्ता को रेखांकित करते हैं स्वयं कबीर पंथी साधु एवं संकलनकार्त्ता कबीरपंथ के भीतर भी इस पुस्तक की महत्ता एवं उपयोगिता का बखान करते रहते हैं। अनेकों विद्वानों और साधुओं ने समय-समय पर 'बीजक' का संपादन एवं प्रकाशन किया है। अनेक बीजकों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह बात सामने आई है कि अलग-अलग समय पर संकलित-संपादित होने के पश्चात् भी बीजक का मूल रूप अधिकांशत: समान ही है।

''कबीर का प्रमुख साहित्य तीन रूपों में विभक्त है – रमनी, साखी और सबद या पद। प्राय: यह माना जाता है कि रमैनी में जगत्, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म-सम्बंधी विचार हैं। 'रमैनी' शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है –

1. जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है।
2. परमतत्व में रमण कराने वाली और
3. एक छन्द-विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती है।''

''साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' का तद्भव है। साक्षी का अर्थ होता है – गवाह। 'गवाह' के लिए संस्कृत में 'साक्ष्य' शब्द है। साक्षी वह है जिसने स्वयं अपनी ऑखों से तथ्य देखा हो। 'साक्ष्य' का अर्थ है – ऑख से देखे हुए तथ्य का वर्णन। हिंदी में साखी शब्द 'साक्षी' और 'साक्ष्य' अर्थात् 'गवाह' और 'गवाही' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कबीर ने 'सबद' का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है – एक तो परमतत्व के अर्थ में और दूसरे पद के अर्थ में। ''रमैनी, साखी और सबद के अतिरिक्त कबीर के नाम से कहरा, वसत, बेलि, बिरहुली, चॉचरि हिंडोला, चौतीसी, विप्रममीसी आदि अन्य काव्य रूपों में लिखा साहित्य भी पाया जाता है। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि स्वयं कबीर द्वारा लिपिबद्ध न किए जाने के कारण तथा कबीरपन्थी भक्तों की उदारता और कबीर के नाम से प्रचुर साहित्य एकत्र हो गया हैं। उसकी प्रमाणिकता पर विभिनन विद्वानों द्वारा अद्यावधि जो अनेक श्रमसाध्य कार्य हुए है, वे भी अंतिम सत्य तक पहुँचाने वाले नहीं है। प्राय: सभी शोधकों एवं पाठालोचकों ने स्वीकार

किया है कि कबीर का साहित्य यही है अथवा इतना ही है, इसे अंतिम सत्य के रूप में नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: कबीर जैसे रमते साधुओं के संबंध में इस प्रकार का अंतिम निर्णय लिखा भी नहीं जा सकता।"

अभ्यास प्रश्न 1 –

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कबीर का जन्म कब हुआ।
2. कबीर की मृत्यु किस स्थान पर हुई।
3. किवंदतियों के अनुसार कबीर के गुरू कौन थे।
4. 'कबीर वचनावली' का सम्पादक कौन है।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर का जीवन परिचय दीजिए (शब्द संख्या 200 अधिकतम)
2. कबीर साहित्य पर अपनी संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (शब्द संख्या 200 अधिकतम)

10.4 कबीर : विचार एवं दर्शन

भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीर का महत्व अन्यतम है। कबीर अपनी महान प्रतिभा को साथ लेकर अवतरित हुए थेलेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए की कि कवि कबीर की सम्पूर्ण काव्य-प्रतिभा, समाज चेतना एवं सकल संसार की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक व्याख्या के पीछे वस्तुत: उनका समाज दर्शन ही कार्य कर रहा था। जैसा कि माना जाता है कि कबीर निर्गुण भक्ति धारा के ज्ञानमार्गी भक्त थे। जीवन मूल्यों के विकासवादी क्रम में मध्यकालीन साहित्य के अन्तर्गत जिस मूल्य को सम्पूर्ण भारतीय चेतना ने सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से आत्मसात् किया, वह भक्ति का ही मूल्य था। इसी भक्ति-मूल्य की विचार एवं कलात्मक भूमि, के आधार पर ही मध्यकालीन भारतीय एवं अन्तत: मध्यकालीन हिंदी भक्ति कविता का भी विकास हुआ।

कबीरदास कवि ही नहीं थे, वे एक दार्शनिक सन्त थे। वे उस परमतत्व को अन्यन्त अलख, निरंजन, निरभै, शून्य एवं स्थूल से भिन्न, दृश्य और अदृश्य से विलक्षण मानते है। उनका 'राम' निर्गुण ब्रह्म है, जो विश्वातीत विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय है। वह तो घट-घट व्यापी, अनादि, अनन्त है। वह देश-काल से परे है और जिससे प्रेम द्वारा ही मिलन संभव है। उनका निर्गुण ब्रह्म दशरथ नन्दन 'राम' नहीं है। वह ससीम नहीं वरन् असीम है। उनके मतानुसार 'आतम राम अवर नहि दूजा' अर्थात् 'आत्मा' और 'राम' एक ही है। सृष्टि कर्त्ता में ही सृष्टि है और सृष्टि में सृष्टि कर्त्ता ओत-प्रोत है। उनका जीवन दर्शन प्रेम का दर्शन है।

10.5 निगुर्ण राम की परिकल्पना

"परमार्थ के लिए, ईश्वर के लिए, परम चैतन्य के लिए कबीर ने 'राम' शब्द का प्रयोग किया है। उनका राम निर्गुण है। कुल लोगों ने शांकर वेदांत के निर्गुण ब्रह्म को ही कबीर का निर्गुण राम समझा है, किन्तु कबीर के निर्गुण राम सर्वथा शांकर वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म के समान नहीं है। निर्गुण ब्रह्म विश्व का चैतन्य मात्र अधिष्ठान है। वह सर्वथा निष्क्रिय है। समष्टि अज्ञान अथवा माया से उपहित होकर वह सगुण ब्रह्म कहलाता है। कबीर का राम तो विश्व से अतीत है, और विश्व में व्याप्त भी है। वह विश्वोत्तीर्ण है और विश्वमय भी है। वह घट-घट में समाया हुआ है। वह अवर्ण है किन्तु सभी वर्ण उसी के हैं। वह अरूप है, किन्तु सभी रूप उसी के है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों देश से

परिसीमित है। वह देश और काल से परे है। उसका न आदि है न अंत। वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म विश्व में व्याप्त नहीं है। वेदान्त का सगुण कबीर का निर्गुण राम विश्व से परे भी है और विश्व में व्याप्त भी। (कबीर वाणी पीयूष)

कबीर साहित्य में राम का अर्थ अन्तत: सर्वसत्तावादी, सर्वरूप, सर्वव्याप्त उस परम तत्व चेतना से है जिसे सगुण सम्प्रदाय राम अथवा अन्य ईश्वरीय संज्ञा पदों से जानता है। कबीर के वहाँ 'राम' संज्ञा स्पष्ट न होते हुए भी 'राम' की अवधारणा एकदम स्पष्ट है। कविजनोचित संस्कार के कारण कबीर ने राम को अन्यान्य संज्ञा पदों से भी पुकारा है। सगुण की तरह कबीर के राम एक रूपी चरित्र न होकर सर्वव्यापी ईश्वर की काव्योचित एवं भक्तिपूर्ण अवधारणा है। (कबीर वाणी पीयूष)

10.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

- कबीर के प्रारम्भिक एवं उत्तरवर्ती जीवन का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- कवि, दार्शनिक एवं समाजवेत्ता के रूप में कबीर के महत्व को जान चुके होंगे।
- कबीर के साहित्यिक महतव का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

10.7 शब्दावली

वर्णाश्रमभ्रष्ट – परम्परागत वर्ण विभाजन से अलग

अन्यतम – जिसका जैसा दूसरा कोई न हो

तुल्य – समान

अध्येता – शोधकर ज्ञान प्राप्त करने वाला

श्रमसाध्य – मेहनत द्वारा प्राप्त

सर्वव्याप्त – जो हर जगह हो, ईश्वर

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1270
2. मगहर
3. रामानंद
4. अयोध्या प्रसाद सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ. 16,17
2. उपरोक्त , पृष्ठ.19
3. उपरोक्त , पृष्ठ.19,20

4. उपरोक्त , पृष्ठ.21
5. उपरोक्त , पृष्ठ.28
6. काव्य गरिमा पृष्ठ.26
7. कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ.30

10.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह, डा. जयदेव, सिंह, डॉ. शुकदेव सिंह, कबीर वाणी पीयूष, 1979,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. पाठक, मानवेन्द्र, काव्य गरिमा, 1991, गुरूदेव आफसेट नैनीताल।
3. दास, डा. श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली।
4. शर्मा, प्रो.सरनाम सिंह, कबीर – व्यक्तित्त्व , कृतित्व एवं सिद्धान्त, 2011, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली।

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कवि कबीर के प्रारम्भिक एवं साहित्यिक जीवन का विश्लेषण विस्तार से कीजिए।
2. कबीर के कवि रूप का मूल्यांकन करते हुए भारतीय भक्ति क्षेत्र में अनेक महत्व का आंकलन कीजिए।

इकाई 11 कबीर: पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 कबीर की कविता: आलोचना
11.4 कबीर का काव्य: व्याख्या
11.4.1 कबीर के पद: संदर्भ एवं व्याख्या
11.4.2 कबीर के दोहे: संदर्भ एंव व्याखा
11.5 कबीर का काव्य
11.5.1 कबीर के पद
11.5.2 कबीर के दोहे
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन के पूर्व की इकाई में आपने कबीर एवं उनके संबंध में सविस्तार अध्ययन किया। अब तक आपने कबीर के जीवन एवं उनकी कविता की साहित्यिक विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया प्रस्तुत इकाई में आप कबीर की कविता के विभिन्न रूपों का पाठ करेंगे तथा संदर्भ सहित कबीर काव्य की व्याख्या का अध्ययन भी करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- कबीर के काव्य का सीधा परिचय पा सकेंगे।
- कबीर के काव्य एवं कबीर के व्यक्तित्व के महत्व को जान सकेंगे।
- कबीर के पदों तथा दोहों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।

11.3 कबीर की कविता: आलोचना

जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे उसके कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इसलाम-जैसे एक सुसंगठित सम्प्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज-व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्त्तनीय समझी जानेवाली जाति-व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत-से पण्डितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग पर भारतीय समाज और धर्म-मत को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे।

यहाँ दो और प्रधान धार्मिक आन्दलनों की चर्चा कर लेनी चाहिए। पहली धारा पश्चिम से आयी। यह सूफी लोगों की साधना थी। मज़हबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्मस्थान पर चोट नहीं कर पाये थे, वे केवल उसके बाहरी शरीर को विक्षुब्ध कर सकते थे। पर सूफी लोग भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनके उदारतापूर्ण प्रेम-मार्ग ने भारतीय जनता का चित्त जीतना आरम्भ किया था। फिर भी ये लोग आचार-प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उसका सामंजस्य आचार-प्रधान हिन्दूधर्म के साथ नहीं हो सका। यहाँ यह बात स्मरण रखने की है कि न तो सूफी मतवाद और न योगमार्गीय निर्गुण परम-तत्व की साधना ही उस विपुल वैराग्य के भार को वहन कर सकी जो बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित था। देश में पहली बार वर्णाश्रम-व्यवस्था को एक अननुभूतपूर्व विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था। अब तक अब तक वर्णाश्रम-व्यवस्था का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। आचार-भ्रष्ट व्यक्ति व्यक्ति समाज से अलग कर दिए जाते थे और वे एक नयी जाति की रचना कर लेते थे। इस प्रकार सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ सृष्ट होते रहने पर भी वर्णाश्रम-व्यवस्था एक प्रकार से चलती ही जा रही थी। अब सामने एक जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी समाज था जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जाति को अंगीकार करने की बद्धपरिकर था। उसकी एकमात्र शर्त यह थी कि वह उसके विशेष प्रकार के धर्म-मत को स्वीकार कर ले। समाज से दण्ड पाने वाला बहिष्कृत व्यक्ति अब असहाय नहीं था। इच्छा करते ही वह एक सुसंघटित समाज का सहारा पा सकता था। ऐसे समय में दक्षिण से वेदान्त-भावित भक्ति का आगमन हुआ, जो इस विशाल भारतीय महाद्वीप के इस छोर से उस छोर तक फैल गया। डा. ग्रियर्सन ने कहा था, ‘‘बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त (धार्मिक मतों के) अन्धकार के ऊपर एक नयी बात दिखायी दी। यह भक्ति का आन्दोलन है। ’’इसने दो रूपों में आत्म-प्रकाश किया। पौराणिक अवतारों को केन्द्र करके सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण-परब्रह्म जो योगियों का ध्येय था, उसे केन्द्र करके

निर्गुण प्रेम-भक्ति की साधना के रूप में। पहली रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का; एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का; एक ने ऋद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को; एक ने सगुण भगवान् को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान् को। पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था; सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था; केवल बाह्याचार दोनों को सम्मत नहीं थे; आन्तरिक प्रेम-निवेदन दोनों को अभीष्ट था; अहैतुक भक्ति दोनों की काम्य थी; बिना शर्त के भगवान् के प्रति आत्म-समर्पण दोनों के विचारों में था। दोनों ही भगवान् की प्रेम-लीला में विश्वास करते थे। दोनों का ही अनुभव था कि भगवान् लीला के लिए इस जागतिक प्रपंच को सम्हाले हुए हैं। पर प्रधान भेद यह था कि सगुण-भाव से भजन करने वाले भक्त भगवान् को दूर से देखने में रस पाते रहे, जब कि निर्गुण-भाव से भजन करने वाले भक्त अपने-आप में रमे हुए भगवान् को ही परम काम्य मानते थे।

भक्त की भगवान के साथ यह जो आनन्द-केलि या प्रेम-लीला है ,वही मध्य-युग के समस्त भक्तों की साधना का के समस्त भक्तों की साधना का के भगवान के साथ यह रसमय लीला ही भक्त का परम काम्य है-लीला जिसका कोई प्रयोजन नहीं फल नहीं कारण नहीं आदि नहीं अन्त नहीं। इसी बात को मध्य-युग के अन्यतम वैष्णव भक्त विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा था, 'प्रेम ही परम पुरूषार्थ है-प्रेमाः पुमर्थो महान्।' साधारणः जिनको पुरूषार्थ कहा जाता है वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष भक्त के लिए कोई आकर्षण नहीं रखते। और कबीरदास ने इसी बात को और शक्तिशाली ढंग से कहा था:

राता- माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, मॉगें मुक्ति बलाय।।
और भक्ति के आदर्श की धोषणा करते हुए द्विधाहीन भाषा में कहा:
भाग बिना नहि पाइये, प्रेम - प्रीति की भक्त।
बिना प्रेम नहीं भक्ति कछु भक्ति -भरयो सब जक्त।।
प्रेम बिना जो भक्ति हैं, सो निज दम्भ-विचार।
उदर भरन के कारने, जनम गॅवायौ सार ।।

परन्तु कबीरदास अपने युग के सगुण - साधना - परायण भक्तों से कुछ भिन्न थे।

यद्यपि दोनों की साधना का केन्द्र - बिन्दु यह प्रेम - भक्ति हैं,- इसे आनन्दकेलि प्रीति ,

भक्ति ,प्रेमलीला आदि जो भी नाम दे दिया जाय,-तथापि एक बात में वे सबसे अलग हो जाते हैं। कबीरदास का रास्ता उल्टा था। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं वे प्राय: सभी उनके लिए बन्द थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु (=अगृहस्थ) नही थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान् की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे। वे भगवान् की नृसिंहावतार की मानव-प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे नाना असम्भव समझी जानेवाली परिस्थितियों के मिलन-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। हिरण्यकशिपु ने वर मांग लिया था कि उसकोमार सकनेवाला न मनुष्य हो न पशु; मारे जाने का समय न दिन हो न रात; मारे जाने का स्थान न पृथ्वी हो न आकाश; मार सकनेवाले का हथियार न धातु का हो न पाषाण का- इत्यादि। इसीलिए उसे मार सकना एक असम्भव और आश्यर्चजनक व्यापार था। नृसिंह ने इसीलिए नाना कोटियों के मिलन-बिन्दु को चुना था। असम्भव व्यापार के लिए शायद ऐसी ही परस्पर-विरोधी कोटियों का मिलन-बिन्दु पर खड़े थे। जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता हैओर दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरीओर अशिक्षा; जहाँ पर

एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग; जहाँ से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना,- उसी प्रशस्त चौरास्ते पर वे खड़े थे। वे दोनों और देख सकते थे और परस्पर-विरूद्ध दिशा में गए हुए मार्गो के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवत सौभागय था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया।

जैसा कि शुरू में ही बताया गया है, कबीरदास ने अपनी प्रेम-भक्तिमूला साधना का अभ्यास एकदम दूसरे किनारे से किया था। भगवत्-प्रेम पर उनकी दृष्टि इतनी दृढ़-निबद्ध थी कि इस ढाई अक्षर (प्रेम) को ही वे प्रधान मानते थे :

पढि पढि के पत्थर भया, लिखि लिखि भया जु ईट।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छींट।।
पोथी पढि पढि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ।।

यह प्रेम ही सब-कुछ है, वेद नहीं, शास्त्र नहीं, कुरान नहीं, जप नहीं, माला नहीं, तस्वीह नहीं, मन्दिर नहीं, मस्जिद नहीं, अवतार नहीं, नबी नहीं, पीर नहीं, पैगम्बर नहीं। यह प्रेम समस्त बाह्वाचारों की पहुँच के बहुत ऊपर है। समस्त संस्कारों के प्रतिपाद्य से कहीं श्रेष्ठ है। जो कुछ भी इसके रास्ते में खड़ा होता है वह हेय है।

उन्होंने समस्त व्रतों, उपवासों और तीर्थो को एक साथ अस्वीकार कर दिया। इनकी संगति लगाकर और अधिकार-भेद की कल्पना करके इनके लिए भी दुनिया के मान-सम्मान की व्यवस्था कर जाने का उन्होंने बेकार परिश्रम समझा। उन्होंने एक अल्लाह निरंजन निर्लेप के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यह प्रेम ही है; और कोई भी मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधन-व्रत भी नहीं, मुहरम भी नहीं; पूजा भी नहीं, नमाज भी नही; हज भी नहीं; तीर्थ भी नहीं :

एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरूक दुहूँ नहिं मेरा।
राखूँ व्रत न महरम जांनां, तिस ही सुमिरूँ जो रहै निदांनां।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै मनसकारूँ।
नां हज जाऊँ न तीरथ-पूजा, एक पिछाण्यां तौ क्या दूजा।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन-सूँ मन लागा।

कबीर ने जो समस्त बाह्वाचारों को अस्वीकार करके मनुष्य को साधारण मनुष्य के आसन पर और भगवान् को 'निरपख' भगवान् के आसन पर बैठाने की साधना की थी, उसका परिणामक्या हुआ और भविष्य में वह उपयोगी होगा या नहीं, यह प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं। सफलता महिमाकी एकमात्र कसौटी नहीं है। आज शायद यह सत्य निबिड़ भाव से अनुभव किया जानेवाला है कि सबकी विशेषताओं को रखकर मानव-मिलन की साधारण भूमिका नहीं तैयार की जा सकती। जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत,सम्प्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहाँ एक मनुष्य दूसरे से मनुष्य की हैसियत से ही मिले। जब तक यह नहीं होता तब तक अशान्ति रहेगी,मारामारी रहेगी, हिंसा-प्रतिस्पर्द्धा रहेगी। कबीरदास ने इस महती साधना का बीज बोया था। फल क्या हुआ, यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है।

कबीरदास की साधना भी न तो लोप हो गयी है, न खो गयी है। उनका पक्का विश्वास था कि जिससे साथ भगवान् हैं और जिसे अपने इष्ट पर अखण्ड विश्वास है उसकी साधना को करोड़-करोड़ काल भी झकझोरकर विचलित नहीं कर सकते :

जाके मन विश्वास है, सदा गुरू है संग।
कोटि काल झकझोर हीं, तऊ न हो चित भंग।।

('कबीर : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से साभार)

11.4 कबीर का काव्य: व्याख्या

प्रस्तुत इकाई के इस भाग में संत कबीर के काव्य जगत से चयनित पद एवं 10 दोहों की ससंदर्भ व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। विद्यार्थी इस काव्य चयन को सावधानी पूर्वक पढ़ कर सूक्ष्म मनोयोग से इसका मनन करें।

11.4.1 कबीर के पद: संदर्भ एवं व्याख्या

1. संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सभै उड़ानी माया रहै न बांधी रे।।
दुचिते की दोह थूँनि गिरानी मोह बलेंड़ा टूटा।
त्रिसनां छानि परी घर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा।
आंधी पाछै जो जल बरसै तिहिं तेरा जन भीनां।
कहै कबीर मनि मया प्रगासा उदे मानु जब चीनां।।

शब्दार्थ -

टाटी - टरिया या पर्दा
दुचिते - चित्त की दो अवस्थाएँ - 1. विषयासक्ति 2. बाह्याचार
थूँनि - खम्भा, स्तम्भ
बलेंडा - छाजन में बीच का बेड़ा या बल्ली, बड़ेर।
भीनां - भीग गया, रससिक्त
मनि - मन में, जन - भक्त, सेवक
खीना - क्षीण

संदर्भ - इस पद में कबीर ने बताया है कि अज्ञान का आवरण हटने पर ही ज्ञान का प्रकाश होता है और भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस तथ्य को उन्होंने छप्पर, आँधी और वर्षा के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है।

व्याख्या - इस रूपक में ज्ञान को आँधी बताया गया है। आँधी आने पर छप्पर या छाजन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। ज्ञान की आँधी आने पर भ्रम की टटिया उड़ गई। वह टटिया माया की रस्सी से ही बँधी थी। वह रस्सी भी छिन्न-भिन्न हो गई। छप्पर को रोकने के लिए खम्बे लगे थे, वे भी आँधी के थपेड़ों से ध्वस्त हो गए। ये दो खम्भे चित्त की दो अवस्थाओं – विषयासक्ति और बाह्याचार - के थे। ज्ञानरूपी आँधी के थपेड़े से वे भी नष्ट हो गए। उस तृष्णारूपी

छप्पर का मुख्य आधार मोहरूपी बड़ेर (बांस या बल्ली) भी मग्न हो गया। फलस्वरूप वह छप्पर धराशायी हो गया अर्थात् तृष्णा विनष्ट हो गई। छप्पर के गिरने पर अर्थात् तृष्णा के नष्ट होने पर कुमति रूपी बर्तन भी टूट गए। सामान्यतः आँधी के बाद वर्षा होती है। ज्ञान की आँधी के बाद प्रेम भक्ति रूपी जल की वर्षा हुई। इस प्रेमाभक्ति की वर्षा से प्रभु का भक्त रसस्नात हो गया। कबीर कहते हैं कि ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर उसके मन में दिव्य प्रकाश छा गया और उसने अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया।

टिप्पणी -

इससे मिलता रूपक 'धम्मपद' के एक पद में मिलता है। भगवान बुद्ध के हृदय में प्रकाश या ज्ञान का आविर्भाव होने पर उनके मुख से जो प्रथम उद्गार निकला था वह इस पद में निबद्ध है –

अनेक जाति संसारं संधाविस्सं अनिब्बिसं
गहकारकं गवेसन्ती दुक्खा जाति पुनप्पुनं
गहकारक दिट्ठोऽसि पुन गेहं न काहसि
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं बिसंखितं
बिसंखारगतं चितं तण्हानं खयमज्झगा।

मैं इस शरीररूपी घर को बनाने वाले की खोज करता हुआ अज्ञानवश अनेक जन्मों में संसार में आता हुआ दौड़ लगाता रहा। बार-बार जन्म लेना दुखदायी है। हे घर के बनाने वाले। मैंने अब तुझे देख लिया है। अब तू पुनः घर न बना पाएगा। तेरा गृहकूट (बड़ेर) विश्रृंखलित हो गया है और उसमें लगी शहतीरे मग्न हो गई हैं। चित्त में सभी संस्कार नष्ट हो गए हैं और तृष्णा का क्षय हो गया है।

2. अवधू सो जोगी गुरू मेरा
जो या पद का करै निबेरा
तखर एक मूल बिन ठाढ़ा बिन फूलॉं फल लागा
साखा पत्र कुछ नहिं वाकै अष्ट गगन मुख बागा
पग बिन निरत करां बिनु बाजा जिम्या हीना गावै
गावनहार कै रूप न रेखा सतगुर होई लखायै
पंखी का खोज मीन का मासा कहै कबीर बिचारी
अपरम्पार पार परसोतम वा मूरति की बिलहारी।।

शब्दार्थ - अवधूत = अव (उपसर्ग) + घू (धातु) + क्त **(प्रत्यय)** = जिसने अपनी सभी निम्न प्रवृत्तियों और संस्कारों को झकझोर कर बाहर फेंक दिया है। नाथ सम्प्रदाय के साधक अपने को योगी अथवा अवधूत कहते थे। कबीर ने प्रायः अवधू या योगी सम्बोधन द्वारा अपर व्यंग्य किया है। निबेरा = स्पष्टीकरण, तरवर = वृक्ष प्रकृति या माया (मायां तु प्रकृति विद्यान् - श्वेताश्वर उपनिषद), अष्ट गगन - आठ दिशाएँ अथवा अष्टद्या प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार)। मुख = ओर, तरफ। बागा = व्याप्त हुआ, निरति = नृत्य, खोज = मार्ग।

संदर्भ - गीता में तीन तत्वों - क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, पुरूषोत्तम - का उल्लेख मिलता है। कबीर ने इस पद में इन्हीं तीन तत्वों की ओर संकेत किया है। क्षेत्र प्रकृति अथवा माया है, जिसमें क्षेत्रज अर्थात् जीवात्मा का क्रियाकलाप चलता रहता है। पुरूषोत्तम वह तत्व है जो क्षेत्र और क्षेत्रज दोनों को अपने में समेटे हुए है।

व्याख्या -वह कहते हैं कि हे अवधू! मैं तुम मैं तुम लोगों में उस योगी को अपना गुरू मानने को तैयार हूँ जो मेरे इस पद का स्पष्टीकरण कर दे। एक ऐसा वृक्ष है जो बिना मूल के स्थित है। उसमें बिना फूल के फल लगते हैं। यहाँ वृक्ष के द्वारा प्रकृति की ओर संकेत किया गया है। प्रकृति का कोई मूल और जड़ नहीं है। वह स्वयं सभी का मूल अर्थात् आधार है। सांख्य में उसे मूल प्रकृति कहा गया है, क्योंकि उसका और कोई मूल नहीं है - मूले मूलामावादमूलं मूलमसांख्यसूत्र। उस मूल प्रकृति रूपी वृक्ष में बिना फूल के विश्वरूपी फल लगा है अर्थात् सारा विश्व अत्यक्त प्रकृति का व्यक्त परिणाम है। यद्यपि उस वृक्ष में शाखाएँ और पत्ते नहीं है तथापि वह आठों दिशाओं में फैला है। आठ दिशाओं में अष्टघा प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि अहंकार) का संकेत है।

इन क्षेत्र में आत्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ का क्रिया कलाप चलता रहता है। वह ऐसा चेतन तत्व है कि बिना पैर के नृत्य करता है, बिना हाथों के बाजा बजाता है और बिना जिह्वा के गाता है अर्थात् सूक्ष्म रूप से ही वह सारे क्रियाकलापों का मूलभूत आधार है। उस चेतन की कोई आकृति नहीं है, केवल सद्गुरू ही उस निराकार का बोध या परिचय करा सकता है। अंतिम दो पंक्तियों में कबीर यह बताते हैं कि वह चेतन पुरूषोत्तम से किस प्रकार युक्त हो सकताहै। पुरूषोत्तम सभी सीमाओं से परे है, उसकी कोई सीमा नहीं। कबीरदास कहतेहैं ऐसा पुरूषोत्तम जो सभी सीमाओं से परे (पार) है, मैं उसके प्रति आत्मसमर्पण करता हूँ। उससे युक्त होने के दो मुख्य मार्ग हैं - बिहंगम मार्ग और मीन मार्ग।

टिप्पणी - सिद्धों और योगियों द्वारा मुक्ति या परमार्थ के तीन मार्ग बताये गए है - पिपीलिका मार्ग, विहंगम मार्ग और मीन मार्ग पिपीलिका का अर्थ है - चींटी। चींटी धीरे-धीरे क्रम से चलती है। वह न कूद सकती है और न उड़ सकती है। जिस साधना द्वारा क्रयमुक्ति प्राप्त होती है, उसे पिपीलिका मार्ग कहते है। यहाँ कबीर ने मुक्ति के लिए केवल दो मार्गों - विंहगम मार्ग और मीन मार्ग को चुना है।

विंहगम मार्ग के दो मुख्य लक्षण हैं -

1. विहंगम अर्थात् पक्षी अपने गन्तव्य स्थान को उड़कर पहुँचता है।
2. उसके गमन का कोई पद-चिन्ह नहीं रह जाता है।
3. पक्षी की उड़ान के द्वारा सद्योमुक्त का संकेत किया गया है और दूसरे लक्षण द्वारा आत्मा के परमात्मा तक गमन की रहस्यात्मकता को व्यक्त किया गया है।

मीन मार्ग के भी दो लक्षण है। मछली के जल में गमन का कोई चिन्ह नहीं रह जाता। यह लक्षण विंहगम मार्ग के ही समान है, किन्तु मीन की दूसरी विशेषता यह है कि वह जलधारा के विपरीत चलती है। इसके द्वारा यह संकेत किया गया है कि जीव की विषयों के प्रति जाने की जो पराड्.मुखी प्रवृत्ति होती है, परामात्मा तक जाने के लिए उसे उलटकर प्रत्यड्.मुखी बनाना होगा।

अलंकार - विभावना

राग - रामकली

3. तननां बुननां तज्यौ कबीर
राम नाम लिखि लियौ सरीर
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई
ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाई
जब लगि तागा बाहौं बेहि
तब लगि बिसरै राम सनेही
कहत कबीर सुनहु मेरी माई
पूरनहारा त्रिभुवनराई।

शब्दार्थ - मुसि मुसि = (सं0 मुषित) ठगी-सी। ए-यह। बारिक = बालक, लड़का। बाहौ = भरूँ। बेहि = वेध। छिद्र। पूरनहारा = आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला।

व्याख्या - कबीर ने वस्त्र बुनने का कार्य छोड़ दिया। उनके रोम-रोम में राम नाम भर गया। इस कारण कबीर की मॉ ठगी सी रोती है और कहती है कि हे प्रभु। यह बालक कैसे जीवन निर्वाह करेगा ? कबीर माँ को समझाते हुए कहते हैं कि मैं एक क्षण भी प्रिय राम को नहीं भुला सकता। मैं जब नली के छेद में तागा भरता रहूँगा, तब तक राम नाम बिसरा रहेगा। ऐ माँ! तू मेरे लिए चिन्ता मत कर। प्रभु सबकी आवश्यकाओं की पूर्ति करने वाला है।

टिप्पणी - यह पद कबीर के जीवन पर प्रकाश डालता है। कपड़ा बुनना उनका व्यवसाय था। किन्तु उनके उपर राम नाम की ऐसी घुन सवार थी कि वह एक क्षण भी उस नाम को बिसार नहीं सकते थे। उन्होंने अपनी माता को आश्वासन भी दिलाया था कि वह उनके लिए चिन्ता न करें। प्रभु उनके योग क्षेत्र का ध्यान रखेगा।

4. पिया मेरा मिलिया सत्त गियांनी
सब में व्यापक सबकी जांनै ऐसा अन्तरजामी
सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आनी
सील संतोख पहिरि दोइ कंगन होई रही मगम दिवांनी
कुमति जराइ करौ मैं काजर पढ़ी प्रेम रस बांनी
ऐसा पिय हमं कबहुँ न देखा सूरति देखि लुभानी
कहै कबीर मिला गुर पूरा तन की तपनि बुझांनी।।

शब्दार्थ - सत्त = सत्य। गियानी = ज्ञानी। चोला = वस्त्र। सुरति = प्रेमपूर्णध्यान। निरति = प्रेमपूर्ण ध्यान की उत्कृष्टावस्था।

व्याख्या - उपनिषदों, में कहा गया है कि ब्रह्मवाचक इन्हीं तीनों शब्दों का अपने ढंग से प्रयोग करते है कि मेरा प्रियतम मुझे मिल गया, जो कि सत्य है, ज्ञान रूप है और सबमें व्यापता है। वह ऐसा अन्तर्यामी है कि सबके भीतर विद्यमान रहते हुए, सभी की शुभ-अशुभ वासनाओं और कर्मो को जानता रहता है।

अपने प्रियतम से मिलने के लिए मैंने सहज श्रृंगार किया है। मैंने प्रेमपूर्ण ध्यान और लवलीनता के सुन्दर वस्त्र में अपने को सुसज्जित किया है। हाथों में शील और संतोष के दो कुंगन धारण कर मैं प्रेम में उन्मत्त हो रही हूँ। मैं कुमति को जलाकर उसके काजल से अपने नेत्रों को सजाऊँगी। मैंने प्रियतम को रिझाने के लिए प्रेम रस से परिपूर्ण

वाणी भी सीख ली है। मेरा प्रिय अनुपम है। उसके प्रथम दर्शन मात्र से मैं उसकी ओर आकृष्ट हो गई। कबीर कहते हैं कि मुझे वह रहस्य ज्ञात हो गया जिससे मैं प्रियतम को प्राप्त कर अपने त्रिताप को बुझाने में सफल हो गई हूँ।

अलंकार - सांग रूपक

राग - बिहंगड़ो (बिहागड़ा)

11.4.2 कबीर के दोहे: संदर्भ एंव व्याखा

1. **कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेस**
   राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस

शब्दार्थ - कथि = कह। ततसार = सारतत्व

व्याख्या - कबीर कहते है कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम नाम ही वास्तव में सार वस्तु है। यह उपदेश सबके लिए है अर्थात् बिना वर्ण, जाति, सम्प्रदाय और लिंग के भेद के राम की भक्ति का अधिकार सबको है।

2. **तूँ तूँ करता तू भया मुझ मैं रही न हूँ**
   वारी फेरी बलि गई जित देखौं तित तूँ ।।

शब्दार्थ - वारी = वरना, बलिहारी जाना

फेरी = भाँवरी, चक्कर

बलि गई = न्यौछावर होना।

व्याख्या - तू तू याद करते हुए मैं स्वयं 'तू' हो गया। मुझमें मेरा पन न रह गया अर्थात् मेरा अंहभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्वरूप से तेरे उपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूॅ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत ब्रह्ममय हो गया है।

टिप्पणी - दूसरी पंक्ति का अन्य पाठ इस प्रकार मिलता है -

- 'वारी तेरे नाऊँ पर' इसका भी अर्थ वही है कि मैंने तेरे नाम पर अपने को न्यौछावर कर दिया। 'वारीफेरी बलि गई' का एक दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है - वारी फेरी अर्थात संसार में चक्कर काटते रहना, आवागमन, बोलि गई बल गया, जल गया, नष्ट हो गया। मेरा पृथक भाव जाता रहा। संसरण समाप्त हो गया। अब जिधर देखता हूँ, तू ही तू दिखलाई देता है।

अलंकार - तद्गुण

3. **बिरहा - बुरहा जिमि कहा बिरहा है सुलतान**
   जा घट बिरह न संचरै सो घट सदा मसान

शब्दार्थ - बुरहा = विरह

सुलतान = राजा, श्रेष्ठ

मसान = श्मशान।

व्याख्या - विरह को बुरा मत कहो। बिरह तुच्छ, नहीं श्रेष्ठ है। जीवन का राजाधिराज है। वह सदा श्मशान के समान है अर्थात् जिस व्यक्ति में विरह का भाव नहीं है, वह मृत समान है, निर्जीव है।

टिप्पणी - तुलनीय - बिरहा-बिरहा आखिये, बिरहा है सुलतान फरीदा,
जिमुतन बिरह न उपजै, सोतणु जाणुमसाणु

4. कबीर माया पापिनी, फंद ले बैठी हाटि
जब जन तौ फन्देपरा, गया कबीरा काटि।।

शब्दार्थ - पापिनी = पाप में ले जाने वाली, दुष्टा

फंद = फंदा, पाश।

हाटि = बाजार में

काटि = काटकर।

कबीर कहते हैं कि पाप में ले जाने वाली माया इस संसार रूपी बाजार में फंदा लिए बैठी है। संसार के सारे लोग उसी पाश में फंस गए केवल कबीर (प्रभु-शरण में) उस फंदे को काटकर निकल गया अर्थात् उसके प्रलोभन से बच गया और परमार्थ को प्राप्त कर लिया।

अलंकार - व्यतिरेक।

5. सहजैं सहजैं सब गए, सुत वित कामिनि काम
एकमेव है मिलि रहा, दास कबीरा राम।

शब्दार्थ - सहजै-सहजै = सरलतापूर्वक।

सुत = पुत्र

वित = सम्पत्ति

कामिनि = स्त्री

व्याख्या - इस साखी में 'सहजैं-सहजैं' पारिभाषिक अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है यहाँ 'सहज' का अर्थ है - सरलतापूर्वक, स्वत: साधना दो प्रकार की होती है - एक तो नाना प्रकार की यन्त्रणाओं से इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को बलपूर्वक दबाना और दूसरे प्रभु में इतना तीव्र अनुराग हो जाना कि विषयों का आकर्षण स्वतः घूट जाय। कबीरदास

की साधना इसी दूसरे प्रकार की थी और उसी दृष्टि से वह कहते हैं कि मेरी पुत्र, धन, कामिनी और काम में आसक्ति सहज भाव से अर्थात! सरलतापूर्वक चली गई और मैं राम से एकरस हो गया। मैं तो इसी को 'सहज' कहता हूँ।

अलंकार - पुनरूक्तिप्रकाश।

11.5 कबीर का काव्य

कबीर की कविताई के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा ''उनकी वाणियों में सबकुछ को छाकर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है। कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई है। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक संभाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को कवि कहने में संतोष पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ता को कवि न कहा जाए तो और क्या कहा जाए। परंतु यह मूल नहीं जाना चाहिए कि यह कवि रूप धतुण् में मिली वस्तु है। कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बाते नहीं कही थी।''

कबीर का कवि व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है प्रसंगवश इतना कहना होगा कि हिंदी साहित्य के बहुमान्य समालोचकों ने कबीर की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भी कवि के रूप में कबीर की प्रतिष्ठा कम ही आँकी है। इकाई के इस भाग में विद्यार्थियों के अभ्यास हेतु कवि कबीर की कविताओं के कुछ चयनित अंश शब्दार्थों के साथ दिए जा रहे हैं जिन्हें विद्यार्थियों द्वारा स्वाध्याय द्वारा व्याख्यायित किया जाना है।

11.5.1 कबीर के पद (अभ्यास)

1. माया महागिनी हम जानी
तिरगुण फॉसि लिए कर डालै
बोलै मुधुरी बानी
केसव के कवंला होई बैठी
सिव कै भवन भवानी
पंडा कै मूरति होई बैठी
तीरथ हूँ मैं पानी
काहूँ के कौड़ी कानी
जोगी के जोगिनि होई बैठी
राजा के घरि रानी
मंगतां के भगतिनि होई बैठि
तुरकां के तुरकांनी
दास कबीर साहेब का बंदा
जाकै हाथ बिकानी।

शब्दार्थ - तिरगुण = तीन गुणों वाला (सत, रज, तम)
केसव = विष्णु
कवंला = लक्ष्मी
तुरकां = तुर्क

बिकानी = बिक गई, दास बन गई।

2. **हम न मेरें मरि है संसारा**
हम कूँ मिल्या जियावन हारा
अब न मरौ मरनै मन माना
तई मुए जिनि राम न जाना
साकत मेरे संत जन जीवै
भरि-भरि राम रसायन पीवै।
हरि भरि है तो हमदूँ मरि है।
हर न मेरे मेरें हम काहू कू मरि है।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा
अमर मये सुख सागर पावा।

शब्दार्थ - जियावन = जीवन देने वाला

नई मुए = वो मरेंगे

साकत = शाक्त मतावलम्बी

रसायन = सार तत्व

3. **माधौ कब करिहौ दाया**

काम क्रोध हंकार बिआपें ना छूटै माया

उतपति बिदुं भयौ जा दिन तैं कबहूँ सचुनहि पायौ
पंच चोर संग लाइ दिए हैं
इन संगि जनम गँवायौ
तन मन डस्यौ मुजंग भांमिनी
लहरइं वार न पारा
गुरू गारडू मिल्यौ नहि कबहूँ
पसन्यो बिरव बिकरारा
कहै कबीर दुख कासौं कहिए
कोई दरद न जानै
देहु दीदार बिकार दूरि करि
तब मेरा मन मानै।

शब्दार्थ - हंकार = अंहकार
बिआपै = व्याप्त होना
बिन्दु = वीर्य
सचु = आनंद

भामिनी = कामिनी
लहरे = विष के प्रभाव का झोंका
वार न पारा = ओर-छोर
गारडू = सर्प का विष उतारने वाला
बिकरारा = बिकराल
दीदार = दर्शन
बिकार = अवगुण
मन मानै = मन संतुष्ट होना।

11.5.2 कबीर के दोहे (अभ्यास के लिए)

1. मेरा मन सुमिरै राम, मेरा मन रामहिमाहि
अब मन रामहिं है रहा, सीस नवावौं काहि

सुमिरै = स्मरण करता है

माहि = में

नवावौं = नवाऊँ , झुकाऊँ

काहि = किसे।

2. नैन हमारे बावरे, छिन छिन लौरे तुज्झ
नाँ तूँ मिलै न मैं सुखी ऐसी वेदन मुज्झ

लौरे - लपकते हैं, उत्सुक होते हैं

तुज्झ - तुझे

वंदन - वंदना, पीड़ा

मुज्झ - मुझे

3. सुर नर थाके मुनि जनां ,जहाँ न कोई जाइ
मोटे भाग कबीर के , तहाँ रहे घर छाइ।

शब्दार्थ - जनाँ - लोग
मोटे - बड़े
छाइ - बना कर

4. कबीरा मन मिरतक मया
दुरबल मया सरीर
पाछै-पाछै हरि फिरै

कहत कबीर - कबीर

शब्दार्थ – मिरतक - मृतक तुल्य

दुरबल - दुर्बल

5. सुखिया सब संसार है
खायै अरू सौवै
दुखिया दास कबीर है
जागै अरू रोवै

अभ्यास प्रश्न

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए -

1. कबीर की कविता का संग्रह............है।
2. कबीर के कविता के..............भाग है।
3. साखी का अर्थ................है।
4. सबद में..............हैं।
5. साखी..............छन्द में है।

11.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- कबीर के कवि व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- कबीर द्वारा लिखित पदों एवं दोहों की सविस्तार व्याख्या को समझ चुके होंगे।
- कवि कबीर के कवि, दार्शनिक एवं सामाजिक रूप से चेतन व्यक्तित्त्व का साहित्यिक साक्ष्य प्राप्त कर चुके होंगे।

11.8 शब्दावली

आविर्भूत - प्रकट हुआ

विषयासक्ति - विषयों में आसक्ति

सम्प्रदाय - धर्म मत

क्रियाकलाप - विभिन्न प्रकार के कार्य

त्रिताप - तीन प्रकार के ताप (दैहिक दैविक, भौतिक)

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 1. बीजक

2. तीन

3. गवाह

4. पद

5. दोहा

11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, सरनाम सिंह, कबीर, व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, 2011, कल्पना प्रकाशन,दिल्ली।
2. अग्रवाल, पुरूषोत्तम, कबीर-साखी और सबद, 2007, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली।
3. दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, (सम्पादक - मुकुदं द्विवेदी) 1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

11.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, बनारस

2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

3. अग्रवाल, पुरूषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. वंशी, बलदेव, कबीर एक पुनर्मूल्यांकन आधार प्रकाशन पंचकूला

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. कबीर का जीवन परिचय देते हुए उनके काव्य की सविस्तार समालोचना कीजिए।
2. भारतीय धर्मसाधना में कबीर के महत्व पर प्रकाश डालते हुए अपने विचार सविस्तार रूप से लिखिए।

इकाई 12 : सूरदास : साहित्य एवं आलोचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 सूरदास : जीवन परिचय एवं रचनाएँ
12.3.1 सूरदास: जीवन
12.3.2 सूरदास: रचनाएँ
12.4 सूरदास : काव्यकला एवं विचार
12.4.1 सूरदास: काव्यकला
12.5 सूरदास: आलोचना
12.6 सूरदास: पाठ एवं व्याख्या
12.7 सारांश
12.8 शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.11 सहायक पाठ्य सामग्री
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने क्रमश:भक्ति काव्य के उदय, उसके विकास को समझा तथा सूरदास से पूर्व मध्यकालीन भक्ति कविता के प्रमुख कवि संत कबीर के जीवन एवं काव्य को गंभीरता से समझा होगा। प्रस्तुत इकाई में आप कविवर सूरदास के जीवन एवं साहित्यिक का परिचय प्राप्त करेंगे। साथ ही उनके साहित्य संसार में से चयनित कुछ प्रतिनिधि पदों का पाठ एवं व्याख्या का अध्ययन भी हो इस इकाई में करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सूरदास के जीवन का क्रमिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- सूरदास के काव्य का क्रमबद्ध विकासात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- सूरदास के सघन रसात्मक पदों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।
- मध्यकालीन भक्ति कविता के अंतर्गत महाकवि सूरदास के महत्व को समझ सकेंगे।

12.3 सूरदास:जीवन परिचय एवं रचनाएँ

भारत वर्ष की महान प्रतिभाओं का लौकिक जीवन साधारण अर्थों में अज्ञात है। महाकवि सूरदास का जीवन भी इतिहास के किसी अज्ञात कोने में छिपा हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'यह अन्धा गायक कौन था' नामक निबंध में लिखा है, "यह अन्धा मनुष्य जो महाप्रभु वल्लभचार्य की शरण में गया था, जो अपने को 'सब पतितन कौ टीको' जनमत ही कौ पातकी बताकर व्याकुल वेदना से घिघिया उठा था (स्वयं महाप्रभु ने ही इस शब्द का प्रयोग किया था) और अपने को भगवत्-लीला के विषय में अन्जान बताया था, वह कौन था? वह किन अवस्थाओं में अन्धा हुआ था; कहाँ-कहाँ भटकता हुआ गऊघाट पहुँचा था; कितना अपमान, कितनी अवहेलना, कितना तिरस्कार पा चुका था, इसका कुछ भी पता नहीं है। बड़भागी माता पिता ने उसको जन्म दिया था, किन निदारूण परिस्थितियों में उनका यह लाला दर-दर भटकने को मजबूर हुआ था, उसे कोई नहीं जानता। किसी ने जानने की परवाह भी नहीं की। जिसका दृढ़ विश्वास हो गया था कि 'मैं जनमत ही कौ पतित' हूँ, 'सब पतितन कौ नायक' हूँ, वह कितना उपेक्षित हो चुका होगा; कितना अपमानित जीवन बिता चुका होगा – हमें बिल्कुल नहीं मालूम।" महाकवि सूरदास के संदर्भ में आचार्य द्विवेदी का यह कथन महत्वपूर्ण है। हालाकि महाकवि के जीवन से संबंधित बहुत सी जानकारियाँ विभिन्न शोध अध्येताओं एवं विचारकों ने खोज निकाली हैं परन्तु यहाँ यह कह देना महत्वपूर्ण है कि महाकवि के जीवन से संबंधित यह तथ्य अन्त: साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्यों पर आधारित है तथा कभी-कभी यह कल्पना की सीमा तक पहुँच जाते हैं।

अन्त:साक्ष्य के अन्तर्गत स्वयं कवि द्वारा लिखित उन पदों को रखा जा सकता है जिनके आधार पर हमें महाकवि के जीवन संबंधी तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। हालांकि स्वयं ऐसे पदों की प्रमाणिकता पर भी विभिन्न विद्वानों ने संदेह प्रकट किया है। इसी तरह बहिर्साक्ष्यों के अन्तर्गत विद्वानों ने विभिन्न साहित्यिक एवं इतिहासपरक साक्ष्यों, प्रमाणों को सम्मिलित किया है । उदाहरण: (1) वार्ता साहित्य (2) साम्प्रदायिक साहित्य (3) समकालीन एवं परवर्ती भक्ति-साहित्य (4) ऐतिहासिक ग्रंथ (5) आलोचना एवं शोध।

12.3.1 सूरदास: जीवन

जन्म :- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की तरह कविवर सूरदास का जन्म भी इतिहास के गर्त में छिपा हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने शोधपूर्ण अध्ययन के पश्चात् महाकवि की जन्म तिथि, जन्म स्थान, जन्म स्थिति, प्रारम्भिक एवं उत्तरकालीन जीवन स्थितियों का विवरण दिया है। मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले वल्ल्भ सम्प्रदाय के आधार पर कुछ विद्वान महाकवि सूरदास का जन्म सं0 1535, वैशाख शुक्ल पंचमी, मंगलवार को मानते हैं। इस संदर्भ में मध्यकालीन भक्ति कविता के विशेषज्ञ डा. दीनदयाल गुप्त का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार पुष्टिमार्ग के आचार्य वल्लभ सूरदास से आयु में 10 दिन बड़े थे। महाप्रभु वल्ल्भाचार्य की जन्म तिथि सं0 1535 वि0 वैशाख कृष्ण एकादशी, रविवार मानी जाती है, इस आधार पर डा. दीनदयाल गुप्त एवं अन्य कई शोधकर्ता डा. सूरदास की जन्मतिथि वैशाख सुदी पंचमी को मानते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के एक अन्य वार्ताकार श्री गोकुल दास की पुस्तक 'निजवार्ता में भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है, उन्होंने लिखा है, ''सो श्री आचार्य जी सो दस दिन छोटे हुते।''

जन्म स्थान :- जैसा की पहले कहा जा चुका है कि सूरदास के जीवन की अन्य स्थितियों की ही तरह जन्म स्थान के संबंध में भी तथ्यात्मक घटाटोप बना हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर शोध के आधार पर अलग-अलग स्थानों को सूरदास का जन्मस्थान माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''सूरदास जी का वृत्त 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' से केवल इतना ज्ञात होता है कि वे पहले गऊघाट (आगरे और मथुरा के बीच) पर एक साधु या स्वामी के रूप में रहा करते थे और शिष्य करा करते थे।'' इसी प्रकार डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने वर्तमान ग्वालियर को 'गोपाचल' नामक स्थान मानकर वहाँ सूरदास का जन्म निश्चित किया है। हालांकि रामचंद्र शुक्ल ने गऊघाट को सूरदास का निवास स्थान माना है परन्तु वे रूनकता को सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं। "डा. मुंशीराम शर्मा ने 'साहित्यलहरी' में उल्लिखित, 'गोपाचल' और जनश्रुति में प्रचलित 'रूनकता' को गऊघाट या गौघाट बताया है जो आगरा मथुरा से 24 मील दूर है।" जो भी हो परन्तु इतना निश्चित है गऊघाट पर ही सूरदास और वल्लभाचार्य की भेंट हुई ओर वल्लभाचार्य की ही प्रेरणा से सूरदास ने भागवत की कथा को गेय पदों में परिवर्तित किया। आचार्य शुक्ल के अनुसार, इसके पश्चात् ही "उनकी सच्ची भक्ति और पदरचना की निपुणता देख वल्लभाचार्य जी ने उन्हें अपने श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी।" कुछ विद्वान सीही नामक स्थान को भी सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं।

जीवन स्थिति :- महाकवि सूरदास के जीवन से संबंधित एक तथ्य पर अधिसंख्य विद्वान एकमत हैं - वह तथ्य है कवि का जन्मान्ध होना। स्वयं सूरदास द्वारा लिखित कई पदों में कवि के अन्धे होने का उल्लेख मिलता है। परन्तु कुछ विद्वान मानते है कि कवि सूरदास अंधे अवश्य थे,परन्तु जन्म से नहीं। प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्तमाल', चौरासी वार्ता एवं गोस्वामी हरिराय के भावप्रकाश के अनुसार भी सूरदास जन्मान्ध थे। कवि की शिक्षा के संबंध में भी लगभग यही स्थिति है। सम्पूर्ण सूर-काव्य का अवगाहन करने के पश्चात् यह बात आसानी से कही जा सकती है कि सूरदास काव्य-ज्ञान के आधार पर शिक्षा सम्पन्न व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनकी रचनाओं को पढ़कर यह अनुभव होता है कि सूरदास को न केवल काव्यशास्त्र का अपितु संगीतशास्त्र का भी ज्ञान था। सूरदास का अनुभव क्षेत्र बृहद था यह बात भी सूरदास के पाठकों को भली प्रकार समझ में आ जाती है। हालांकि सूरदास की शिक्षा के संबंध में सभी अन्त: एवं बाह्य साक्ष्य मौन है तदापि सूरदास के काव्य को पढ़कर उनके विशिष्ट शास्त्रीय ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव को जानना कठिन नहीं है।

मृत्यु :- महाकवि सूरदास के जीवन के अंतिम चरण पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ’सूरसागर’ समाप्त करने पर सूर ने जो ‘सूरसागर सारावली’ लिखी है उसमें अपनी अवस्था 67 वर्ष की कही है – ‘गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन’। तात्पर्य यह कि 67 वर्ष के होने के कुछ पहले वे ‘सूरसागर’ समाप्त कर चुके थे। सूरसागर समाप्त होने के थोड़ा ही पीछे उन्होंने ‘सारावली’ लिखी होगी। एक और ग्रंथ सूरदास का ‘साहित्य लहरी’ है, जिसमें अलंकारों और नायिका भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने वाले कूट पद है। इसका रचनाकाल सूर ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

मुनि सुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल सम्बत पेख।।

इसके अनुसार संवत् 1607 में ‘साहित्य लहरी’ समाप्त हुई। यह तो मानना ही पड़ेगा कि साहित्यक्रीड़ा का यह ग्रंथ ‘सूरसागर’ से छुट्टी पाकर ही सूर ने संकलित किया होगा।

उसके दो वर्ष पहले यदि ‘सूरसारावली’ की रचना हुई तो कह सकते हैं कि संवत् 1605 में सूरदास जी 67 वर्ष के थे। अब यदि उनकी आयु 80 या 82 वर्ष की मानें तो उनका जन्मकाल सं0 1540 के आसपास तथा मृत्युकाल, सं0 1620 के आसपास अनुमानित होता है। डा. मुंशीराम शर्मा के अनुसार सूरदास संवत् 1628 एवं ‘सूर-निर्णय’ के लेखकों के अनुसार संवत् 1640 तक वर्तमान थे। सभी विद्वानों के शोधों का विश्लेषण करने पर यह अनुमित किया जा सकता है कि महाकवि सूरदास की मृत्यु संवत् 1635 से 1642 के मध्य कभी हुई होगी। सूर-साहित्य के अन्यतम विद्वान प्रोफेसर व्रजेश्वर वर्मा ने सूरदास के जीवन का आकलन करते हुए ठीक ही लिखा है कि, ‘’सूरदास उच्च कोटी के भक्त थे। महाप्रभु से भेंट होने के पूर्व से ही वे विरागी और संभ्रांत भक्त के रूप में भगवतद्भजन करते हुए गऊघाट पर रहते थे। उस समय भी वे पद-रचना और संगीत में पर्याप्त निपुण थे। वे इतने विज्ञ और अनुभवी थे कि उन्होंने तीन-चार दिन में ही ‘श्रीमद्भागवत’ और ‘सुबोधिनी’ का वास्तविक भाव हृदयंगम कर लिया और तत्संबंधी आशु पद-रचना से महाप्रभु पर गंभीर प्रभाव डाल दिया। यद्यपि दार्शनिक वादों के संबंध में उनका दृष्टिकोण पंडितों-जैसा नहीं था और न उन्होंने अपने काव्य में दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन या विवेचन किया है, फिर भी भक्ति-भाव के प्रकाशन के प्रसंगों से विदित होता है, कि उन्हें तत्कालीन दार्शनिक सिद्धान्तों की भक्ति-भावना का जैसा विशद और व्यावहारिक रूप उनके काव्य में मिलता है, वैसा कदाचित् अन्यत्र दुर्लभ है।‘’

12.3.2 सूरदास:रचनाएँ

सूरदास वास्तविक अर्थों में ‘महाकवि’ की पदवी धारण करने के अधिकारी हैं। ‘महाकवि’ के स्तर पर पहुँचने के लिए अनेकानेक वृहद काव्य ग्रंथों का निर्माता होना आवश्यक नहीं होता। ‘सूरदास’ की एकमात्र प्रमाणिक कृति ‘सूरसागर’ सूरदास को महाकवि कहने की प्रवृत्ति को प्रमाणिक बना देती है। अध्येताओं ने माना है कि ‘सूरसागर’ सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना है। इसके अतिरिक्त ‘सूरसारावली’ एवं ‘साहित्य लहरी’ नामक अन्य दो पुस्तकों को भी कुछ अध्येताओं ने सूरदास की पुस्तक माना है। हालांकि सूरदास के नाम से कतिपय अन्य पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं। **सूरसागर**–परम्परानुसार यह माना जाता रहा है कि महाकवि सूरदास द्वारा मूल रूप में लिखित ‘सूरसागर’ में सवा लाख पद थे, परन्तु वर्तमान में सूरसागर इतने वृहद रूप में प्राप्त नहीं होता है। ‘सूरसागर’ के एक परिमार्जित संस्करण का विस्तृत विवेचन करते हुए प्रोफेसर ब्रजेश्वर वर्मा ने निम्न तालिका प्रस्तुत की है –

स्कंध	**पद-संख्या**	**पृष्ठ-संख्या**
विनय के पद तथा प्रथम स्कंद	223+120=343	114

द्वितीय स्कंध	38	13
तृतीय स्कंध	13	10
चतुर्थ स्कंध	13	12
पंचम स्कंध	04	05
षष्ठ स्कंध	08	07
सप्तम स्कंध	08	08
अष्टम स्कंध	17	10
नवम् स्कंध	174	75
दशम स्कंध –पूर्वार्ध	4160	1392
दशम स्कंध –उत्तरार्ध	149	71
एकादश स्कंध	04	03
द्वादश स्कंध	05	04
	4936	1724

इससे स्पष्ट है कि यद्यपि दशम स्कंध-पूर्वार्ध अन्य स्कंधों की अपेक्षा आकार में बड़ा है, फिर भी उसमें दशम स्कंध-उत्तरार्ध से केवल 11, तृतीय से 48, चतुर्थ से 48 ओर एकादश से 61 पृष्ठ अधिक है। दशम स्कंध–पूर्वार्ध की पृष्ठ संख्या शेष स्कंधों की सम्मिलित पृष्ठ-संख्या का लगभग छठा भाग है। विस्तार की दृष्टि से दशम स्कंध- उत्तरार्ध का दूसरा, नवम् का सातवाँ और प्रथम का आठवाँ स्थान है।‘’

वर्तमान सूरसागर जिस रूप में मिलता है उसे दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. द्वादश स्कन्धात्मक
2. संग्रहात्मक

वैकटेश्वर प्रेस, मुम्बई द्वारा प्रकाशित 4578 पदों वाला ‘सूरसागर’ एवं नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित कुल 5206 पदों वाला ‘सूरसागर’ द्वादश स्कन्धात्मक है एवं नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित ‘सूरसागर’ संग्रहात्मक संस्करण है। इसके अतिरिक्त भी इलाहाबाद एंव वाराणसी के कुछ मान्य प्रकाशनों ने ‘सूरसागर’ के कुछ विशिष्ट संस्करणों का प्रकाशन किया है। सूरसागर की रचना अवधि सम्वत् 1567 से 1600 तक स्वीकृत है। इसका प्रेरणा-स्रोत श्रीमदभागवत है और उसी की भाँति इसमें भी द्वादश स्कन्ध हैं। श्रीमदभागवत को सूरदास ने अपनी प्रतिभा से पल्लिवित किया है। अत: सूरसागर को उसका अनुवाद कदापि नहीं माना जा सकता है। सम्पूर्ण सूरसागर एक मुक्तक के रूप में रचित है। संगीतात्मकता, नाद-सौन्दर्य, भावों की एकता विभिन्न रागरागनियाँ, विभिन्न रसों का प्रयोग तथा अद्भुत भावाभिव्यक्ति आदि न जाने कितनी विशेषताएँ इस ग्रंथ में एक साथ सिमट कर आ गई हैं। इसमें ब्रजभाषा की जो प्रांजलता है, वह घनानंद को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। सूरसागर का दशमस्कन्ध तो रीढ़ रज्जु है।

सूरसागर-सारावली :- इस रचना की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति आज तक नहीं मिली है। बंबई तथा लखनऊ से प्रकाशित ‘सूरसागर’ की प्रतियों में यह रचना मिलती है। परन्तु इसका आधार कौन सी हस्तलिखित प्रति है, इसका उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। वैंकटेश्वर प्रेस, मुंबई द्वारा प्रकाशित ‘सूरसागर’ के साथ प्रकाशित ’सूर-सागर सारावली’ का शीर्षक ‘अथ श्री सूरदास जी रचित सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र’ है। ‘’आरम्भ में ‘बन्दौ श्री हरिपद सुचादाई की टेक के साथ तनिक हेरफेर से ‘सूरसागर’ का प्रारंभिक वंदना वाला प्रसिद्ध पद है। तदनंतर

'सार' और 'सरसी; केवल दो छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक छंद के बाद उसकी संख्या लिखी हुई है, जो 1107 है। छंद संख्या 1102 और 1103 में बताया गया है कि "कर्मयोग, ज्ञान और उपासना के भ्रम में भटकने के बाद श्री बल्ल्भ गुरू ने तत्व सुनाया और लीला-भेद बताया। उसी दिन से 'एक लक्ष पद बंद' में हरि लीला गाई। उसका 'सार' 'सुरसारावली' अति आनन्द से गाते हैं।'' इस प्रकार इस रचना का विषय 'सूरसागर' के पदों की सूची अथवा सार कहा गया है। पद-संख्या 966 के बाद 'इति दृष्टकूट सूचनिका सम्पूर्ण' से भी यही सूचित होता है।"

हालांकि अधिसंख्य विद्वान 'सूरसागर' एवं 'सूरसागर सारावली' में अभिन्नता का भाव बताते हैं परन्तु वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के पश्चात् यह बात साफ हो जाती है कि अधिकांश में अभिन्नता होते हुए भी 'सूरसागर' एवं 'सूर-सारावली' में पारस्परिक भिन्नता विद्यमान है। सूर-सागर सारावली एक स्वतंत्र रचना है। इस कृति का रचनाकाल विद्वानों ने संवत् 1602 स्वीकार किया है, किन्तु डा. गोवर्द्धन नाथ शुक्ल को यह स्वीकार्य नहीं है। उन्होंने इसका रचनाकाल संवत् 1634 निर्धारित किया है। उनका कथन है –"जब सागर में ही सूर उसके रचनाकाल का संकेत नहीं दे सके, तो 1107 युग्मों की रचना तो उनके लिए खिलवाड़ मात्र थी। फिर भी संवत् 1602 की अपेक्षा 1634 कहीं अधिक जँच सकता, किन्तु कवि का लक्ष्य सारावली का प्रणयन-संवत् देना है ही नहीं, क्योंकि गुरूप्रसाद का महतव 1634 नहीं, अपितु 1567 में है।"

साहित्य लहरी :- 'सूरदास' के नाम पर एक अन्य काव्य–रचना को विद्वानों ने प्रमाणिक माना है, वह रचना है 'साहित्य-लहरी'। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इस पुस्तक का रचना काल सं0 1607 वि0 है परन्तु डा. मुंशीराम शर्मा एवं डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार उक्त रचना का निर्माणकाल क्रमश सं0 1627 या सं0 1617 है। 'साहित्यलहरी' का विषय अलंकार और नायिका भेद है। इन्हीं के साथ कुछ संचारी एवं स्थायी भाव का विश्लेषण भी किया गया है "दृष्टि कूट शैली में स्वयं रूपकातिश्योक्ति अलंकार माना जाता है। रूपकातिश्योक्ति को आधार बनाकर अन्य अलंकारों तथा नायिका, रस, भाव आदि के उदाहरण देने का विचार अत्यन्त विलक्षण है।" हालाकि सूरसाहित्य के गंभीर अध्येताओं ने 'साहित्य-लहरी' की विषय-वस्तु की सूरदास की महान काव्य-प्रतिभा एवं काव्य-कला की अपेक्षा कमतर माना है और सूरदास की कृति के रूप में साहित्यलहरी की प्रमाणिकता को संदिग्ध माना है। इस पर भी साहित्य के कुछ मर्मज्ञ समालोचकों ने 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की मौलिक रचना माना है। 'साहित्य लहरी की विषय-वस्तु पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए डा. अंकुर ने लिखा है, 'साहित्य-लहरी' एक चमत्कारपूर्ण रचना है। इसका सृजन 'दृष्टिकूट' पदों में हुआ है। दृष्टिकूट एक ऐसी रचना है, जिसमें चमक, श्लेष एवं अन्योक्ति के माध्यम से वाचक अर्थ या प्रसंग की कल्पना की जाती है। साथ ही अनेकार्थवाची विशिष्ट शब्दों का प्रयोग भी इसमें अपेक्षित है। श्रीमदभागवत में ऐसी रचना को 'वाच-कूट' की संज्ञा दी गई है। श्री प्रभुदयाल भीत्तल का कथन है कि ऐसी रचना किसी विशिष्ट उद्देश्य से की जाती है। 'दृष्टिकूट' का शाब्दिक अर्थ है – दृष्टि को छलने वाला। अर्थात् ऐसे शब्द जिनका अर्थ गोपनीय हो या लक्षणा-व्यंजना का आवरण लिए हुए हों उन्हें दृष्टिकूट कहते हैं।

महाकवि सूरदास एवं उनकी काव्य सामग्री का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- "पहले कहा गया है कि श्री वल्लभाचार्य जी की आज्ञा से सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत की कथा को पदों में गाया। इनके सूरसागर में वास्तव में भागवत के दशम स्कंध की कथा संक्षेपत: इतिवृत्त के रूप में थोड़े से पदों में कह दी गई है। सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में गाई गई है। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत मधुर और मनोहर पदों की झड़ी सी बांध दी है । इन पदों के संबंध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि

आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती है। अत: सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परम्परा का – चाहे वह मौखिक ही रही हो – पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।"

अभ्यास प्रश्न

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

i. सूरदास का जन्म कब हुआ था ?
ii. सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना कौन सी है ?
iii. सूरदास की तीन रचनाओं के नाम बताईए।

(ख) सही/गलत चुनिए –

i. सूरदास जन्मान्ध थे (सही/गलत)
ii. सूरसागर की कथा श्रीमद्भागवदपुराण पर आधारित है (सही/गलत)
iii. सूरसागर एकादश स्कन्धों में विभाजित है (सही/गलत)

12.4 सूरदास:काव्यकला एवं विचार

महाकवि सूरदास की काव्य कला को उसकी पृष्ठभूमि में समझाते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराईयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।"

12.4.1 सूरदास:काव्यकला

किसी भी कवि का विश्लेषण करने के लिए शास्त्रज्ञ आचार्यों द्वारा काव्य को दो अलग-अलग अवयवों में विभाजित किया गया है। इसे काव्य का आंतरिक एवं वाह्य विभाजन भी कहा जाता है। इस विभाजन में एक तरफ जहाँ काव्य की वस्तु का विश्लेषण किया जाता है वहीं दूसरी तरफ काव्य के स्वरूप की समीक्षा की जाती है। सूरदास की काव्य कला के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस विश्लेषण प्रक्रिया को निम्नांकित आधार से समझाने का प्रयास किया है। "कवि कर्म विधान के दो पक्ष होते हैं – विभाव पक्ष और भाव पक्ष। कवि एक ओर तो ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है, जो मन में कोई भाव उठाने या उठे भाव को और जगाने में समर्थ होते हैं, और दूसरी ओर उन वस्तुओं के अनुरूप भावों के अनेक स्वरूप शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। एक विभाव पक्ष है दूसरा भाव पक्ष है। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य में ये दोनों अन्योन्याश्रित है, अत: दोनों रहते हैं। जैसे नायिका के रूप का नखशिख का कोरा वर्णन लें, तो उसमें भी आश्रय का रतिभाव अव्यक्त रूप में वर्तमान रहता है।"

विभाव पक्ष के अंतर्गत वस्तुएँ दो रूपों में लाई जाती है – वस्तु रूप में और अलंकार रूप में; अर्थात् प्रस्तुत रूप में और अप्रस्तुत रूप में। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रदान किया गया आधार महाकवि सूरदास की काव्यकला को विश्लेषित करने हेतु महत्वूपर्ण प्रतिमान की तरह कार्य करता है। विभिन्न विद्वानों ने इसी आधार पर सूरदास की

काव्यकला का एकनिष्ठ विवेचन किया है। विद्वानों के अनुसार प्रथम अर्थात् भाव पक्ष के अंतर्गत भक्ति-भावना, विचार, दर्शन, प्रकृति व्यंजना, वात्सल्य, श्रंगार आदि तत्वों एवं काव्य अवयवों का समावेश किया गया है तथा दसरे अर्थात् विभाव पक्ष में काव्य सौष्ठव एवं सौन्दर्यशास्त्रीय तत्वों का विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत भाषा, लालित्य, छंद, रस एवं अलंकार, शैली इत्यादि तत्वों का समावेश किया गया है।

(क) भाव पक्ष (अनुभूति पक्ष) – महाकवि सूरदास की अनुभूति या भावपक्ष के अन्तर्गत भक्ति भावना, वात्सल्य, श्रृंगार, प्रकृति-चित्रण, दर्शन, व्यंग्य–विनोद, आदि तथ्यों पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है।

भक्ति-भावना – महाकवि सूरदास ने इस प्रपंचात्मक संसार से छूटने का एकमात्र उपाय हरि-भक्ति ही स्वीकार किया है । सूरदास की रचनाओं का सम्यक् अनुशीलन करने पर हमारे सामने दो प्रकार के पद आते हैं। एक तो विनय-भक्ति के पद और दूसरे सख्य-भक्ति के पद। विनय से आप्लावित भक्ति मुख्य रूप से दास्य भाव पर आधारित है। इस कोटि की भक्ति में भक्त कवि सूर ने अपने को निरीह, अंकिचन और पापी की सरणी में रखा है। अपने अराध्य की श्रेष्ठता को उन्होंने पग-पग पर स्वीकार किया है।

"श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति में से सूर ने अन्तिम तीन को ही मुख्य रूप से ग्रहण किया है, जिसमें आत्म-निवेदन, दास्य एवं सख्य के नाम उल्लेख्य है।" सूरदास के काव्य में समाविष्ट संपूर्ण भक्ति तत्व का आधार उपासक एवं उपास्य के बीच अनन्य प्रेमपूर्ण काव्य का केन्द्र बिन्दु है। यही पारस्परिक प्रेम एक तरफ सूर के काव्य में माधुर्य ओज एवं लालित्य का सृजन करता है वहीं दूसरी तरफ श्रृंगार और वात्सल्य के सभी पारम्परिक एवं मौलिक तत्वों का समावेश कराता है।

वात्सल्य – सूरदास का काव्य प्रारम्भिक स्तर पर अधिकांशत: उपास्य की बाल सुलभ चेष्टाओं का मौलिक काव्यात्मक उदाहरण कहा जा सकता है। वात्सल्य के अंतर्गत दो काव्य रूप हमारे सामने हैं -

(1) संयोग वात्सल्य (2) वियोग वात्सल्य

(1) संयोग वात्सल्य के अन्तर्गत कृष्ण के जन्म से लेकर बाल्यकाल की संपूर्ण चेष्टाएँ अत्यन्त काव्यात्मक एंव मौलिक रूप से सूरदास की कविता में समाविष्ट है।

कृष्ण जन्म, गोकुल प्रवेश, जन्मोत्सव से होते हुए सम्पूर्ण बाल्यकाल, कृष्ण का बाल रूप में वर्णन, बाल-चष्टाएँ, पारम्परिक बाल केलियाँ, माँ एवं शिशु का मनोवैज्ञानिक संबंध, शिशु की उत्तरोत्तर बढ़ती चेष्टाएँ बाल-लीला, माखन चोरी एंव शिशुत्व का अद्भुद समागम, सूर के काव्य को स्वयं में एक प्रतिमान बना देते हैं।

वियोग वात्सल्य - सूर के वात्सल्य-वर्णन का संयोग पक्ष जितना मार्मिक एवं अद्वितीय बन पड़ा है, वियोग पक्ष उतना ही हृदयद्रावक और अनूठा हो चला है। वियोग वात्सल्य की सबसे सुन्दर झलक श्रीकृष्ण के माथुरागमन के अवसर पर लक्षित होती है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि वात्सल्य रस के अन्तर्गत सूरदास के विश्लेषकों ने लक्षित भी किया है, सूर बाल-लीला-वर्णन में अपना सानी नहीं रखते हैं। उन्होंने वात्सल्य के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस क्षेत्र में अन्य कवि उनकी सरणी में बैठने में असमर्थ हैं। तभी तो आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा है – "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झाँक आये।"

श्रृंगार - वात्सल्य की ही तरह सूरसागर में वर्णित श्रृंगार भावना का चित्रण भी अद्वितीय है। यह भी सूरदास ने पारम्परिक श्रृंगार भावनाओं -संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार - का चित्रण बेहद सधे हुए पारम्परिक एंव नवीन उद्धावनाओं वाले मौलिक रूप से किया है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की विवेचना प्रस्तुत की जा सकती है।

श्रृंगार एवं वात्सल्य के क्षेत्र में सूर की समता को और कोई कवि नहीं पहुँचा है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। वृन्दावन में कृष्ण और गोपियों का सम्पूर्ण जीवन क्रीड़ामय है और वह सम्पूर्ण क्रीड़ा संयोगपक्ष है। उसके अन्तर्गत विभागो की परिपूर्णता, कृष्ण और राधा के अंगप्रत्यंग की शोभा के अत्यन्त प्रचुर और चमत्कारपूर्ण वर्णन में तथा वृन्दावन के करील कुंजों, लताओं, हरेभरे कछारों, खिली हुई चाँदनी,कोकिल कूजन संचारियों का इतना बाहुल्य कहाँ मिलेगा। सारांश यह कि संयोगमुख के जितने प्रकार के क्रीड़ाविधान हो सकते हैं, वे सब सूर ने लाकर इकट्ठे कर दिए हैं। यहाँ तक कि कन्धे पर चढ़कर फिरने का राधा का आग्रह जो कुछ कम रसिक लोगों को अरूचिकर स्त्रैणता प्रतीत होगी।

सूर का संयोगवर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता। राधाकृष्ण के रंग रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम की नाना उमंगों का अक्षय भण्डार प्रतीत होता है। प्रेमोदयकाल की विनोदवृत्ति और हृदयप्रेरित भावों की छाया चारों ओर छलक पड़ती है। कहने का सारांश यह कि प्रेम नाम की मनोवृत्ति का जैसा ज्ञान सूरदास को था वैसा किसी अन्य कवि को नहीं। इनका सारा संयोगवर्णन लम्बी चौड़ी प्रेमचर्या है जिसमें आनन्दोल्लास के न जाने कितने स्वरूपों का विधान है। रासलीला, दानलीला, मानलीला इत्यादि सब उसी के अन्तर्गत हैं। सूर के संयोग वर्णन की बात हो चुकी, इनका विप्रलम्भ भी ऐसा ही विस्तृत और व्यापक है। वियोग की जितन अन्तर्दशाएँ हो सकती है, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है, वे उसके भीतर मौजूद हैं। आरम्भ वात्सलय रस के वियोगपक्ष से हुआ है। आगे चलकर गोपियों की वियोगदशा का जो धाराप्रवाह वर्णन है उसका तो कहना ही क्या है। न जाने कितनी मानसिक दशाओं का संचार उसके भीतर है। कौन गिना सकता है ? संयोग और वियोग दो अंग होने से श्रृंगार की व्यापकता बहुत अधिक है। इसी से वह रसराज कहलाता है। इस दृष्टि से यदि सूरसागर को हम रससागर कहें तो बेखट के कह सकते हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार का उत्कृष्टतम रूप सूरदास के काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने विरह-दशा के अन्तर्गत सभी अन्तर्दशाओं का चित्रण किया है। इसमें गोपियों के निश्छल हृदय एवं सहज प्रेम आत्मानुभूति का विषय बन गया है, प्रिय का अतीन्द्रिय स्वरूप आत्मानुभव से ही ग्राह्य है। प्रिय और प्रिया का, भक्त और भगवान का, ज्ञाता और ज्ञेय का यह पूर्ण एकात्म्य ही प्रेम, भक्ति और ज्ञान की सिद्धावस्था है। इस प्रकार सूर का श्रृंगार वर्णन रम्य, मौलिक और संपूर्ण विश्व-साहित्य के लिए अद्भूत है।

प्रकृति - सूरदास के काव्य में प्रकृति की उपस्थिति अनिवार्य चरित्र के रूप में है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लक्षित करते हुए लिखा है, ''सूरदास जी का विहार स्थल जिस प्रकार घर की चाहरदीवारी के भीतर तक ही न रहकर यमुना के हरे-भरे कछारों, करील के कुंजों और वनस्थलियों तक फैला है, उसी प्रकार उनका विरह विर्णन भी 'बैरिन भइँ रतियाँ' और 'साँपिन, भई सेजिया' तक ही न रहकर प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर-दूर तक पहुँचता है। मनुष्य के आदिम वन्य जीवन के परम्परागत मधुर संस्कार को उद्दीप्त करने वाले इन शब्दों में कितना माधुर्य है – 'एक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढौ, कतहूँ न श्याम लहौं।' ऋतुओं का आना-जाना उसी प्रकार लगा है। प्रकृति पर उनका रंग वैसा ही

चढ़ता-उतरता दिखाई पड़ता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं की वस्तुएँ देख जैसे गोपियों के हृदय में मिलने की उत्कंठा उत्पन्न होती है वैसे ही कृष्ण के हृदय में क्यों नहीं उत्पन्न होती ? जान पड़ता है कि ये सब उधर जाती है नहीं, जिधर कृष्ण बसते हैं। अपनी अन्तर्दशा को ऋतु-सुलभ व्यापारों के बीच बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में देखना भावमग्न अन्तः करण की एक विशेषता है। इसके वर्णन में प्रस्तुत अप्रस्तुत का भेद मिट सा जाता है।" सूरदास के काव्य में प्रकृति आलम्बन एवं उड़पीन दोनों रूपों में विद्यमान रही है। संयोग के क्षणों में जो प्रकृति सुखदायिनी होती है, वियोग पक्ष में वही प्रकृति दुखदायिनी बनकर प्रकट होती है।

कला पक्ष:

भाषा - भाषा के रूप में महाकवि सूरदास ने ब्रजभाषा को अपनी साहित्य रचना का आश्रय बनाया। भाषा के सभी आंतरिक एवं बाह्यगुणों का उद्घाटन हमें सूरदास की कविता में दृष्टिगोचर होता है। भाषा की भावात्मकता, लालित्य, गीतात्मकता एवं सहज प्रांजल प्रवाह का उत्कृष्टतम उदाहरण महाकवि सूरदास की भाषा है। सूरदास की कविता में पाठक को ब्रज भाषा के लगभग सभी गुण एवं रूप देखने को मिलते है। शब्दों के तत्सम रूप तद्भव रूप, अप्रस्तुत योजना के लिए मौलिक शब्द विन्यास, लोकोक्तियों एवं मुहावरे का प्रयोग, सहजता, उक्ति वैचित्रय, शब्द की तीनों शक्तियों-अमिधा, लक्षणा एवं व्यंजना - का उत्कृष्ट प्रयोग आदि कुछ सूरदास की काव्य-भाषा की मौलिक विशेषताएँ हैं। सूरदास जी ने जन-प्रचलित लोकभाषा को साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित किया। फलस्वरूप उनकी भाषा में विभिन्न प्रकार के शब्द आ गए। सबसे अधिक शब्द उन्होंने संस्कृत से लिए। बोलचाल में संस्कृत शब्दों के विकृत रूप प्रयुक्त होते रहते हैं। सूरदास ने संस्कृत के इन तद्भव शब्दों की बहुलता है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों तथा अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्द-समूह को निम्नांकित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

1. तत्सम, 2. तद्भव, 3. देशज या ग्रामीण शब्दावली, 4. प्रान्तीय भाषाओं के शब्द तथा 5. विदेशी शब्द।

सूरदास जी ने तत्सम शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक सिद्धान्त निरूपण, स्तोत्र रचना तथा अप्रस्तुत योजना के प्रसंगों में किया है। इसके अतिरिक्त सूर-साहित्य में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का ही मिलता है। सूरदास ने देशज शब्दों का भी प्रचुर परिमाण में प्रयोग किया है। कुछ देशज शब्द इस प्रकार हैं- बगदाइ, मोट, डहकावै, मॉड़ी, विगोवै आदि। सूर ने ब्रज भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध करने के लिए गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, अवधी आदि प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। यथा -

(क) गुजराती - बियौ = दूसरा

'काके सरन जाऊं जदुनन्दन नाहिंन और बियौ।

(ख) राजस्थानी - पूरबली = पूर्वकालीन

'विभीषन को लंका दीन्ही पूरबली पहिचानि।'

(ग) पंजाबी - बिरियाँ = बेला, समय

'आवहु कान्ह सांझ की बिरियाँ '

(घ) अवधी - इहाँ - उहाँ = यहाँ - वहाँ

'हरि बिनु सुख नहिं न उहाँ '

सूर-काल में फारसी-अरबी अनेक भाषाओं के शब्द सामान्य हो गए थे। सूरदास ने ब्रज-भाषा को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए फारसी और अरबी शब्दों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है किन्तु उन्होंने इन शब्दों के तत्सम रूप की सुरक्षा की चिन्ता नहीं की। यथा -

(अ) 'साँची सो लिखहार कहाबै'

(ब) 'हरि हौ ऐसा अमल कमायौ।'

(स) 'जनम साहिबी करत गयो।' आदि ऐसे पद हैं कि जिनमें कवि ने फारसी-अरबी शब्दों की भरमार कर दी है।

रस एवं छंद - जैसा की पहले कहा गया है कि वाल्सल्य (उसके दोनों रूप संयोग वात्सल्य एवं वियोग वात्सल्य) एवं श्रृंगार (दोनों रूप) दोनों ही रस-क्षेत्रों में सूरदास का काव्य अपना मौलिक स्वरूप प्रकट करता है, इसे 'रस-तत्व' के संबंध में भी समझा जा सकता है। अध्येताओं के अनुसार, ध्यातव्य है कि कविवर सूर ने अपने सृजन में जिन रसों की निबन्धना की है, उनमें वात्सल्य और श्रृंगार ही प्रमुख हैं। अन्य रस तो प्रसंगवश ही आ गये हैं। इसका प्रमुख कारण है कि सूर की दृष्टि जीवन की विविधता की ओर नहीं गई है। उनकी दृष्टि बाल-क्रीड़ा, प्रेम के रंग-रहस्य और उसकी अतृप्त वासना तक ही परिसीमित है। जहाँ तक वात्सलय और श्रृंगार का प्रश्न है, मैंने पीछे इसका विस्तृत वर्णन कर दिया है। अब शेष अन्य रसों पर दृष्टिपात कर लेना है, जो सूर-साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं।

कविवर सूर विनोदी प्रकृति के व्यक्ति हैं। कृष्ण की बाल-छवि एवं क्रिया-कलापों तथा राधा की सरल सामान्य उक्तियों में हास्य रस के सुन्दर परिपाक को देखा जा सकता है। नटवर नागर कृष्ण दही की चोरी के निमित्त किसी के घर में घुस जाते हैं ओर चोरी करते हुए ग्वालिन के द्वारा रंगे हाथ पकड़ जाते हैं। इनकार कर पाने की स्थिति न देखकर कृष्ण फौरन बात को घुमा देते हैं। उनका कथन हास्यास्पद है कि मैं अपना ही घर समझकर यहाँ आ गया था। दही में चींटी देखकर उसे निकालने लगा। कृष्ण की इस प्रकार की चतुरतापूर्ण बातें सुनकर ग्वालिन के अधरों पर मुस्कान थिरक उठती है। प्रमाण के लिए उदाहरण दृष्टव्य है –

मैं जान्यौ यह मेरो घर है, ता धोखे में आयौ।
देखत ही गोरस में चींटी, काढ़न को करनायौ।।

इसी प्रकार संयोग और वियोग वर्णन में हास्यरस के अनेकानेक चित्र 'सूर-सागर' में विद्यमान हैं। 'भहरात झहरात दावानल आयौ' वाले पद में भयानक रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। दावानल-प्रसंग के अन्य पदों में करूण रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। 'प्रथमहिं देउँ गिरिहि बहाइ' वाले पद में रौद्ररस तथा 'आजु हौं हरिहि न सरल बहाऊँ' जैसे पदों में वीररस, 'नन्दहिं कहत जसोदा रानी' वाले पद में अद्भुत रस तथा 'को को न तरयो हरिनाम' या 'मेरो मन अनत कहाँ सुखपावै' जैसे पदों में भक्तिरस की व्यंजना देखी जा सकती है।

कविवर सूर एक रससिद्ध कवि हैं। वात्सल्य और श्रृंगार रस के वर्णन में तो उन्होंने अपना सानी नहीं छोड़ा है। साथ ही अन्य रसों का यथाक्रम प्रवेश भी न्यूनाधिक रूप में अपने सृजन में कराया है। इस प्रकार रस की बूँदा-बाँदी से 'सूरसागर' सराबोर हो गया है।

अलंकार - अत: अलंकारों का सम्यक् विवेचन हो जाने के पश्चात् अब हम आलोच्य कवि सूर के अलंकार-विधान को देखना चाहेंगे। वस्तुत: अलंकारों का सर्वोत्तम प्रयोग उनकी स्वाभाविकता है। भावों के उद्रेक में स्वत: आये हुए अलंकार ही उत्तम माने जाते हैं। अलंकारों का सायास प्रयोग अच्छा नहीं है। इससे कविता का महत्व घट जाता है। कविवर सूर को अलंकारों के प्रति कोई विशेष मोह नहीं दिखाई पड़ता है। फिर भी सृजन-काल में अगर कोई अलंकार स्वभावत: आ गया है तो उन्हेंाने उसका उपयोग कर लिया है। वैसे सौंदर्य-चित्रण में उन्होंने अलंकारों का प्रयोग कुछ अधिक ही किया है। वर्णन को प्रभावेत्पादक और हृदयग्राही बनाने के लिए सादृश्यमूलक अलंकार अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि कविवर सूर ने राधा-कृष्ण तथा गोपियों के रूप-सौंदर्य के वर्णन में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अपह्नुति, समासोक्ति तथा दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग बहुतायत से किया है।

रूपक अलंकार का प्रयोग करते हुए कवि ने कई स्थलों पर भावों में चमत्कार उत्पन्न किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

प्रीति कर दीन्ही गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाइ कपट-कन पाछे करत बुरी।
मुरली मधुर चेंप काँपा करि, मोर चन्द्र फँदवारि।
बंक विलोकनि, लगौ लोभबस, सकी न पंख पसारि।
तरुत छाँडि गये मधुवन कौ, बहुरि न कीन्ही सारि।
सूरदास प्रभु संग कलप तरू, उलटि न बैठी डारि।।

सादृश्यमूलक अंलकारों में उपमा का प्रमुख स्थान है। सूर ने कुछ पदों में परम्परागत उपमा का प्रयोग किया है और कुछ नवीन उपमाओं की उद्धावना भी की है। 'ज्यों जलहीन मीन तरुत त्यों व्याकुल प्रान हमारौ', 'उर भयो कुलिस समान', तथा 'लोचन चातक ज्यों हैं चातक' आदि पदों में उपमा के सुन्दर प्रयोग को देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'जसुदा मदन गोपाल सोवावै', 'देखियत काजिन्दी अति कारी' तथा 'देखियत चहुँ दिसि तैं घनघोरे' आदि छन्दों में उत्प्रेक्षा की छटा दर्शनीय है। रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग कवि ने वहाँ पर किया है, जहाँ गुह्यांगों या श्रृंगारिक अवसर आया है। 'अद्भुत एक अनूपम बाग' वाला पद रूपकातिशयोक्ति का अच्छा उदाहरण है। इसी प्रकार 'सखी री चातक मोहि जियावत' तथा 'हमारै हृदय कुलिसहु जीत्यौ' वाले पदों में प्रतीक तथा 'नैना सावन भादौं जीते' एवं 'ऊधौ अब हम समुझि भई' जैसे पदों में व्यतिरेक की सुन्दर निदर्शना हुई है। 'चातक न होइ कोइ बिरहिन नारि' वाला पद अपह्नाति का अच्छा उदाहरण है। 'बिनु पावस-पावस करि राखी' वाले पद में विभावना तथा 'ऊधौ तुम हौ अति बड़भागी जैसे पदों में विशेषोक्ति की छटा दर्शनीय है। विरोध मूलक अलंकारों में विभावना, विशेषोक्ति के साथ परिकर आदि अलंकारों की भी गणना होती है। इसमें साभिप्राय शोभा बढ़ाने-हेतु विशेषण का प्रयोग किया जाता है। 'सखी इन नैनति ते घन हारे' वाला पद परिकर अलंकार का अनुपम उदाहरण है।

12.5 सूरदास: आलोचना

महाकवि सूरदास का समग्र काव्य-जगत अत्यन्त कलात्मक एवं भावूपर्ण है। इसमें उनकी अनूठी उद्धावनाएँ हैं। संयोग श्रृंगार रस की तरह विप्रलम्भ श्रृंगार भी अत्यन्त विस्तृत, व्यापक एवं सर्वांग पूर्ण है। 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि ''वियोग की जितनी अन्तर्दशाएँ हो सकती है, जिनते ढंगों से उनका साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यत: हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।'' उनका विरह-वर्णन

इतना गहन और व्यापक है कि वह देश-काल और पात्र-मुक्त बन गया है। वास्तव में, सूर के विरह-वर्णन में एक दर्द है, टीस है, कसक है और विह्वलता है। सूरदास के वात्सल्य-भाव के पदों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्हें पढ़कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को विस्मृत कर उनमें तन्यम हो जाता है। सूर ने यदि वात्सल्य को अपने काव्य का विषय चुना तो वात्सलय ने भी सूर को ही अपना एक मात्र आश्रय बनाया है। उनके वात्सल्य रस के आलम्बन है – बालकृष्ण। उनका बाल मनोहर स्वरूप एवं बाल सुलभ चेष्टाएँ-उद्दीपन हैं, आश्रय हैं – यशोदा और नन्द। इस क्षेत्र में सूर ने इतने भावों, अनुभवों और संचारी भावों की योजना की है कि वे साहित्य-शास्त्र को भी पीछे छोड़ गए हैं। आचार्य शुक्ल का मत है कि 'जिस क्षेत्र को सूर ने चुना है, उस पर उनका अधिकार अपरिमित है, उसके वे सम्राट है।''

सामान्य रूप से देखा जाए तो वात्सलय रस के दो रूप है- संयोग वात्सलय और वियोग वात्सल्य। सूर की अनुभूतियाँ अत्यधिक सहज, सरस, सुकुमार और सत्य के निकट हैं। उन्होंने अपने काव्य में बाल सुलभ हृदय की चपलता, स्पर्धा, ईर्ष्या आदि सभी बालोचित गुण, क्रिया-व्यापार और सामान्य मातृहृदय के वात्सल्यमय स्नेह की समस्त अवस्थाओं का नैसर्गिक सौन्दर्य प्रस्तुत किया है। उनके वात्सलय रस युक्त पदों में एक माता के हृदय का मधुर स्पन्दन है। सूर के वात्सल्य वर्णन पर रीझकर ही श्री वियोगी हरि ने उचित ही कहा है कि ''सूर का दूसरा नाम वात्सल्य है और वात्सलय का दूसरा नाम है सूर। दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है।'' सूरदास के भाव पक्ष का विश्लेषण करते हुए तथा उन्हें मधुर एवं कोमल भावनओं के चतुर चितेरे, रस के आक्षय स्रोत, आध्यात्मिक प्रेम के प्रवीण पारखी बताते हुए डा. सावित्री शुक्ला का मत है कि ''सूरदास भारतीय संस्कृति का सहज रूप से कलात्मक उद्घाटन करते हुए आज भी सरसता, अभिनवता, सुचारूता और मनोवैज्ञानिकता को रसज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।''

श्री कृष्ण के अनन्य भक्त सूर ने भगवत् अनुग्रह की प्राप्ति हेतु हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति जिस रूप में की है, वह भक्ति का रूप है। सूर के काव्य में प्रत्यक्ष ओर परोक्ष रूप में भक्ति के महत्व एवं उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन दृष्टिगत होता है। उनके विनय संबंधी पदों में भक्ति योग के शरणगति-सिद्धान्त की षड् विधियों के अलावा वैष्णव सम्प्रदाय की दैन्य, मान-मर्षता, भय दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण सप्त भूमिकाओं का निदर्शन हुआ है। विनय के पदों में अनन्यता, आत्मनिवेदन और वैराग्य-भावना के साथ-साथ उपालम्भ, साग्रह निवेदन तथा उद्बोधन के भावों का भी समावेश है। सूर की भक्ति सख्य भाव की है। अत: उन्होंने एक सखा के नाते कृष्ण के अन्तरंग जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को अपना स्वर दिया है। 'सूरसागर' में सख्य-भक्ति का दो रूपों में प्रस्फुटन हुआ है। पहला रूप है-ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण का सखारूप में विचरण करना और दूसरा रूप है-ब्रजांगनाओं का श्रीकृष्ण के प्रति सहज प्रेम-भाव। सूरदास की काव्य-कला के दो पक्ष हैं- अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष। अनुभूति पक्ष तो सूर-काव्य का प्राण है। अनुभूति पक्ष ही उनकी सफलता है, सिद्धि है और सुख्याति है। उनकी अनुभूतियाँ अत्यन्त सहज, सरल, सुकुमार और सत्य के निकट हैं। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के जिन मौलिक विषयों ने उनकी काव्य-कला का श्रृंगार किया है, उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-बाल-लीला, राधा-कृष्ण तथा गोपी-लीला और भ्रमरगीत। सूरदास एक भाषानिष्ठ कलाकार थे। जिस भाषा को उन्होंने अपने काव्य का माध्यम बनाया, वह उस क्षेत्र की जनभाषा थी। पारसौली, गोबर्द्धन, मथुरा तीनों ही ब्रजभाषा क्षेत्रों में स्थित है। ब्रजभाषा को ही सूर ने अपनी प्रतिभा एवं कला के द्वारा सरस, संगीतमय, सुमधुर एवं सम्पन्न बना दिया। सूरदास जी के समय से पूर्व ब्रजभाषा का प्रयोग लोकगीतों में तो अवश्य हुआ होगा, किन्तु उनसे पहले की ब्रजभाषा में लिखी हुई कोई महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं होती। इससे प्रकट होता है कि सर्वप्रथम सूरदासजी ने ही ब्रजभाषा को साहित्यिक महत्व प्रदान किया। आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट शब्दों में कहा है-''इन पदों के सम्बन्ध में

सबसे पहली बात ध्यान देने योग्य है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। यह रचना प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की उक्तियाँ सूर की जूठन-सी जान पड़ती है।''

12.6 सूरदास : पाठ एवं व्याख्या

**1. जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलरावै मल्हावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं बेगि सों आवै ताहे कौं कान्ह बुलावै।।
के बहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं, अधर कबहुँ फटकावै।
सोवत जानि मौन है बैठी कर-कर सैन बतावै।।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावैं।।**

संदर्भ – प्रस्तुत पद सूर द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है।

प्रसंग – माता यशोदा घर के काम-काज निबटाने हेतु बालक श्री कृष्ण को पालने में झूला, झूलाकर सुलाने का प्रयास कर रही है। बालक माता का सानिध्य पाने के लिए सोने और जागने का बहाना करता है। इस पद में माता का पुत्र के प्रति और पुत्र का माता के प्रति स्नेह भाव देखते ही बनता है।

व्याख्या – सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा कृष्ण को पालने में झूला, झूला कर सुला रही है इस क्रम में कभी पालने को हिलाती है, कभी बच्चे को पुचकारती है, हवा करती है साथ ही लोरी गाती हुयी नींद से आग्रह करती है कि तुझे कोई साधारण बालक नहीं अपितु मेरा कान्हा तुम्हें बुला रहा है अत: जल्दी से आकर मेरे बालक को क्यों नहीं सुला देती। बाल सुलभ क्रीड़ा में बाल भगवान कृष्ण कभी अपनी पलक बंद कर लेते हैं, और कभी अपनी पलकों को अधखुला सा कर लेते हैं। माता यशोदा सोचती हैं कि बालक को नींद आ गयी है तब पालना हिलाना व गाना बन्द कर देती है तब-तब बालक इशारा कर-करके बताता है कि अभी मैं सोया नहीं हूँ। इस प्रकार की बाल लीला देखकर माता का हृदय ममत्व भाव से भर उठता है, कवि सूरदास जी कहते हैं कि यह वह सुख है जो माता यशोदा प्राप्त कर रही है जैसा अमर मुनियों को भी दुर्लभ है।

शब्दार्थ – दुलराई-प्यार करना, निंदरिया-नींद, सोवत-सोता, सैन-इसारा, अन्तर-हृदय, नंद यामिनि-नंद की पत्नी (यशोदा)

विशेष –

1. बाल सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है।
2. वात्सल्य रस एवं माधुर्य गुण का समावेश हुआ है।
3. माता के हृदय को ममत्व भाव का अगाद्य सुख प्राप्ति हुई है।

4. ब्रजभाषा में तुकान्त शैली का लयात्मक क्रम है।

2. मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ।।
देखि तु हि सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने, छींका केहि विधि पायौ।।
मुख दधि पौंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाय जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।।
बाल-विनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमत को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ।।

शब्दार्थ – ख्याल-खेलना, भाजन-बर्तन, नान्हे-नन्हें, छोटे, दुरायो-छिपना, सींके-छींका, कर-हाथ, साँटि-छड़ी, सिव-शिव भगवान, बिरंचि-ब्रह्मा।

प्रसंग – श्री कृष्ण माखन चोटी करते रंगें हाथों पकड़े गये, तब ग्वालिन उलाहना लेकर माता यशोदा के पास जाती है, माता यशोदा रोज-रोज शिकायत से तंग आकर बालक कृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठाती है, बालक किस चतुरता से माँ की मार से बचने के लिए अपनी सफाई पेश करता है।

व्याख्या - सूरदास जी कहते हैं कि श्री कृष्ण अत्यन्त दुलार भरी वाणी में अपनी माता यशोदा से अनुनय विनय करने लगे कि माता मैंने मक्खन की चोरी नहीं की और न ही मैंने मक्खन खाया। मेरे साथ सखा खेलते हैं उनमें बड़े लड़के मक्खन की चोरी करते हैं और मुझ जैसे छोटे बच्चे के मुख पर पकड़े जाने के भय से लिपटा देते हैं। अब तू ही बता कि छोटी बाँहों वाला बच्चा हूँ, मैं इतने ऊँचे पर लटके छींके के बर्तन तक कैसे पहुँच सकता हूँ, प्रयास करने पर भी छींके तक नहीं पहुँच सकता। इतनी सफाई देने पर भी जब माँ का क्रोध शान्त नहीं हुआ तब कृष्ण का ध्यान अपनी शारीरिक स्थिति पर गया तब बड़ी चतुरता से उन्होंने शीघ्रता से मुँह पर लिपटा मक्खन पौंछा और हाथ में पकड़ा हुआ मक्खन से भरा दोना पीठ के पीछे छिपा दिया। कृष्ण के इस बाल सुलभ भेले नटखट रूप का कौतुक देख कर यशोदा हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह से भर गयी, सारा क्रोध विस्तृत कर उन्होंने कृष्ण को गले लगा लिया। कृष्ण ने बाल सुलभ क्रीड़ाओं के आनन्द से माँ का मन मोह लिया और भक्ति के प्रताप का यशोदा को दर्शन करा दिए। अन्त में सूर कहते हैं कि बाल-लीला का जो सुख यशोदा को प्राप्त हुआ वह वात्सलय सुख ब्रह्मा और शिव भी नहीं पा सके। यह सुख तो अवर्णनीय और हृदय से अनुभूत करने वाला है।

विशेष –

1. मेया मोरी मैं.............में अनुप्रास अलंकार है।
2. इस पद में बाल लीला के मक्खन चोरी प्रसंग का सहृदयता एवं विद्गधता से बिंब या भव-चित्र उपस्थित हुआ है।
3. इस पद में बालकों की अन्तवृत्तियों का प्रकृत स्वभाव निरूपित हुआ है।
4. इस पद में लाक-चेतना का संकेत हुआ है।

5. ब्रजभाषा की लोक संगीत परम्परा का प्रभाव भी इस पद में देखा जा सकता है।

3. ऊधो, मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस।।
देह अति शिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिन सीस।
स्वासां अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोरि-बरीस।।
तुम तो सखा स्याम सुन्दर के, सकत जोग के ईस।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुखौ मन जगदीश।।

शब्दार्थ – ऊधौ-उध्रव (कृष्ण का मित्र), हुतो, जो पास था, स्याम-श्री कृशण, आरौ-आराधना, सीस-सिर, स्वासौ-श्वास, जीवहिं-जी रही हैं सखा-मित्र, रसिकन-प्रेम पूर्ण, बलियाँ-बातें।

संदर्भ- प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है।

प्रसंग – उद्धव निर्गुण ज्ञान के प्रसाद हेतु ब्रज में आता है और गोपियों से श्री कृष्ण के निर्गुण रूप की अराधना की बात कहता है। उसका उत्तर गोपियाँ इस पद में देती है। साथ ही अपने लौकिक प्रेम की स्थापना करती है। उद्धव के निर्गुण ज्ञान को ग्रहण न करने की विवशता भी दर्शाती हैं।

व्याख्या – सूरदास गोपियों के माध्यम से कहते हैं कि हे उद्धव, हमारे पास तो केवल एक ही मन था, हमारे पास दस-बीस मन होते तो एक मन हम तुम्हें भी देती, निराश नहीं करती किन्तु हमारी इस विवशता पर भी आप ध्यान देवें। हमारे पास जो एक मन था वो तो श्री कृष्ण अपने साथ मथुरा ले गये, फिर निर्गुण कृष्ण की अराधना बिना मन हम कैसे करें। श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम के कारण हम कितनी कमजोर हो गयी हैं मानो बिना सूर के हमारे पास शरीर शेष रह गया है। इस शरीर में श्वास अटकी हैं वो भी उनके आने की आशा से, उनके आने की बात तो हम करोड़ों वर्षों तक करती रहेंगी। हे उद्धव तुम तो श्री कृष्ण के मित्र हो उनसे तुम्हारा लौकिक सम्बन्ध भी है, तुम्हारी ये कठोर बातें हमारे पल्ले नहीं पड़ेगी। अन्त में सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों को श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम की बातें करने से ही हमारे द्वारा हमारे इष्ट की सच्ची अराधना है।

विशेष –

1. इस पद में निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय दर्शायी गयी है।
2. वैष्णव परम्परा की सगुण भक्ति में लीला वर्णन में आनन्द का जो स्रोत फूटता है – वह जनता के मन को स्पर्श करता है। इसी स्थिति के कारण सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है।
3. लौकिक प्रेम के प्रति पूर्णशक्ति का भाव चित्रित हुआ है।
4. बोलचाल की ब्रजभाषा में शब्दों का लयात्मक क्रम मिलता है।

4. लरिकाई कौ प्रेम, कहौ अलि, कैसे, करिकै छूटत?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब, अन्तरगति यों लूटत।।
चंचल चाल मनोहर चितवन, वह मुसुकाति मंद धुन गावत।

नटवर भेस नंदनंदन को, वह विनोद गृह इनतें आवत।।

चरनकमल की सपथ करति, हौं, यह संदेश मोहि विष सम लागत
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत, मोहन मूरति सोवत जागत

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद वात्सल्य रस के सम्राट महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।
प्रसंग - गोपियाँ बाल साहचर्य-संभूत प्रेम की एकनिष्ठता का मार्मिक वर्णन कर रही हैं।
व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि, हे उद्धव! यह बताओ कि बाल साहचर्य से उत्पन्न प्रेम किस प्रकार छूट सकता है। हम ब्रज के स्वामी कृष्ण की लीलाओं का कहाँ तक वर्णन करें ? उनकी लीलाओं का ध्यान हमारे मन को सहज रूप से उनकी ओर आकर्षित करता रहता है। अर्थात् उनका स्मरण आते ही हम अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं। उनकी वह चंचलता से युक्त चाल, वह मनोहर दृष्टि, वह मधुर मुस्कान और धीमे-धीमे स्वर में गाना हमें कभी भी नहीं भूलता। उनका वह नटवर का वेश धारण करके विनोद करते हुए वन से घर को लौटना-हमारी स्मृति में सदैव छाया रहता है।
हम श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की सौगन्ध खाकर करती हैं कि उनका यह संदेश (उन्हें भूलकर ब्रह्म की आराधना करने का संदेश) हमें विष के समान घातक लगता है। हमें तो सोते और जागते हुए कृष्ण की वह मोहक मूरति एक पल के लिए भी नहीं भूलती है।
शब्दार्थ - लरिकाई-बचपन। अन्तरगति-मन, चित्त की वृत्ति।
निमिष-पलभर को भी। बिसरत-भूलना।

विशेष -
1. यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बचपन के संस्कार अमिट रहते हैं।
2. 'लरिकाई कौ प्रेम' में एक अद्भुत मार्मिकता और हृदय को छू लेने की क्षमता है।
3. 'स्मृति' संचारी भाव का चित्रण हैं
4. विप्रलंभ श्रृंगार रस है।
5. अनुप्रास, उपमा व रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

5. निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर! हंसी समुझाय, सौंह दै बूझति सांच , न हांसी ।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।।
कैसो बरन, भेस है कैसो, केहि रस में अभिलासी।।
पवेगो पुनि कियो आपनो, जो रे कहैगो गाँसी ।
सुनत मौन रह्यो ठग्यो सौ, सूर सबै मति नासी।।
संदर्भ - प्रस्तुत पद सगुण उपासक, कृष्ण के अनन्य भक्त महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'भ्रमर गीत सार' में से लिया गया है।
प्रसंग - प्रस्तुत पद्यांश में सूरदास ने गोपियों के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म की उपेक्षा और सगुण ब्रह्म की स्थापना का प्रयास किया है।

व्याख्या – गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म पर व्यंग्य करती हुई उद्धव से पूछती हैं कि, हे उद्धव! तुम्हारा निर्गुण किस देश का रहने वाला है। (हम तो अपने सगुण कृष्ण का निवास जानती है) हे मधुकर! हमें हँसकर अर्थात प्रसन्न मन से यह सब समझा दो। हम तुम्हें सौगंध देकर सच-सच पूछ रही हैं। तुम्हारे साथ मजाक नहीं कर रही हैं। अब यह बताओं कि तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म का पिता कौन है, उनकी माँ कौन हैं, कौन उनकी पत्नी है और उनकी सेवा करने वाली दासी कौन है? उसका रंग और वेश-भूषा कैसी है और उसे कौन सा रस अच्छा लगता है ?

फिर गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से कहती हैं कि - हे भ्रमर! यदि तूने कोई कपट की बात कही, झूठ कहा तो तुझे अपनी करनी का फल भुगतना पड़ेगा। गोपियों के मुख से निकली इन बातों को सुनकर उद्धव मौन हो गए और ठगे से रह गए। ऐसा लग रहा था कि जैसे उनकी सारी बुद्धि ही नष्ट हो गई। अर्थात् वह किंकर्त्तवविमूढ़ हो कुछ भी उत्तर नहीं दे सके।

शब्दार्थ - सौंह-सौगन्ध, कसम। बरन-वर्ण, रंग। गाँसी-गाँस सा कपट की बात। ठग्यो सौ-ठगा हुआ सा, स्तम्भित। नासी-नष्ट हो गई।

विशेष -

1. प्रस्तुत पद में व्यंग्यात्मक शेली में निर्गुण ब्रह्म का खण्डन किया गया है।
2. गोपियों का वाग्वैदग्ध दृष्टव्य है।
3. उपनिषदों ने जिस ब्रह्म के संबंध में नेति-नेति कहा है, उस ब्रह्म का निरूपण बेचारे उद्धव कैसे कर पाते!

6. अंखियाँ हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहें रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहीं झूखी।
अब इन जोग-संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी।।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद रागानुराग भक्ति के उपासक, कृष्ण प्रेम व सौन्दर्य के चितेरे महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - गोपियों की कृष्ण के प्रति प्रेम की अनन्यता एवं एकनिष्ठता का महाकवि सूर ने हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि हमारे ये नेत्र सदैव कृष्ण दर्शन के लिए लालायित रहते हैं। ये आँखे कृष्ण के रूप और उनके प्रेम रस में पगी हुई हैं, उनमें ही पूर्णतः अनुरक्त है। फिर तुम्हारे नीरस योग की बातें सुनकर ये कैसे धैर्य धारण कर सकती हैं? जब ये आँखे कृष्ण के लौटकर अपने की अवधि का एक-एक दिन गिनती हुई टकटकी बाँधे मार्ग की ओर देखा करती थीं, उस समय भी इतनी संतप्त नहीं हुई थी। परन्तु अब तुम्हारे इन योग के संदेशों को सुनकर व्याकुल और दुःखी हो उठी हैं। हमारी तुमसे केवल यही प्रार्थना है कि हमें कृष्ण के उस मुख के एक बार दर्शन करा दो, जिस मुख से वह पत्ते के दोने में दूध दुहकर पान किया करते थे। तुम हमें योग का उपदेश देकर वैसा ही असंभव कार्य करने का प्रयत्न कर रहे हो, जैसे कोई सूखी हुई नदी की बालू में

हठपूर्वक नाव चलाने का प्रयत्न करे। अर्थात कृष्ण-प्रेम में अनुरक्त हमारे हृदय पर तुम्हारे योग का प्रभाव पड़ना असंभव है।

शब्दार्थ - भूखी-व्याकुल। रूपरस राची-रूप के रस में पगी हुई। गनत-गिनते हुए। झूखी-संतप्त, दुखी। बारक-एक बार। दुहि-दुहकर। पय-दूध। पतूखी-पत्ते का दोना। सिकत-रेत, बालू।

विशेष -

1. वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय विचारधारा का प्रभाव है।
2. रागानुराग भक्ति में उपास्य के रूप और रस की प्रधानता रहती है।
3. सूखी नदी में नाव चलाने का प्रयत्न करने के लौकिक व्यवहार के उदाहरण द्वारा निर्गुण ब्रह्म का निराकरण और संभाव्यता प्रदर्शित की गई है।
4. बारक...........पतूखी में स्मरण अलंकार,
   सूर..........सूखी में निदर्शना अलंकार
5. 'ये सरिता है सूखी' में रूपकातिश्योक्ति अलंकार है।

7. हमारे हरि हारिल की लकरी
मन-बच-क्रम नंद नंदन सों, उर यह दृढ़ करि पकरी।।
जागत, सोवत, सपने, सौंतुख, कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनतहि जोग लगत ऐसौ अलि! ज्यों करूई ककरी।।
सोई व्याधि हमें लै आए, देखी, सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हें लै दीजै, जिनके मन चकरी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य, अष्टछाप के प्रमुख कवि, दिव्य दृष्टि संपन्न महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - सूरदास ने कृष्ण के प्रति गोपियों के एकनिष्ठ व दृढ़ प्रेम का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या - गोपियाँ उद्धव से कहती है कि कृष्ण तो हमारे लिए हारिल पक्षी की लकड़ी के समान बन गए हैं। अर्थात् जिस प्रकार हारिल पक्षी, चाहे किसी भी स्थिति में हो, वह सदैव अपने पंजों में लकड़ी को पकड़े रहता है। उसी प्रकार हम भी निरन्तर कृष्ण का ही ध्यान करती रहती हैं। हमने मन, वचन और कर्म से नन्द नन्दन रूपी लकड़ी को, अर्थात् कृष्ण के रूप और उसकी स्मृति को अपने मन द्वारा कसकर पकड़ लिया है। अब उसे हमसे कोई नहीं छुड़ा सकता। हमारा मन जागते, सोते, स्वप्न या प्रत्यक्ष में, चाहे किसी भी दशा में क्यों न हो, सदैव 'कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाये रहता है, उन्हीं का स्मरण करता रहता है।

हे उद्धव! तुम्हारी योग की बातें सुनते ही हमें ऐसा लगता है, मानो कड़वी ककड़ी खा ली हो। अर्थात् योग की बातें हमें नितान्त अरूचिकर लगती हैं। तुम हमारे लिए योग रूपी ऐसा बीमारी ले आए हो, जिसे हमने न कभी देखा, न सुना और न कभी भुगता ही है। इसलिए तुम अपनी इस बीमारी को तो उन लोगों को जाकर दो, जिनके मन चकई के समान सदैव चंचल रहते हैं। योग का उपदेश तो अस्थिर मन वालों को दिया जाता है, जबकि हमारे मन तो पहले से ही कृष्ण प्रेम में स्थिर हैं।

शब्दार्थ - हारिल की लकरी-एक पक्षी, जो अपने पंजों में सदैव कोई-न-कोई लकड़ी का टुकड़ा या तिना दृढ़ता से पकड़े रहता है। क्रम-कर्म। सौंतुख-प्रत्यक्ष। जक-रट,धुन। करूई-कडवी। ककरी-ककड़ी। व्याधि-बीमारी। चकरी-चंचल, चकई के समान सदैव अस्थिर रहने वाला।

विशेष -

1. यहाँ निर्गुण के उपदेश को 'व्याधि' कहकर उसकी अवहेलना की गई हैं
2. विरह की प्रलापावस्था का चित्रण हैं
3. ब्रजभाषा का माधुर्य है।
4. सुनतहि.........ककरी में उपमालंकार, हारिल की लकरी में रूपक अलंकार है।

8. अति मलीन वृषभानु कुमारी
हरि-श्रमजल अंतर-तनु भीगो, ता लालच न धुआवति सारी।
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति, ज्यों हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
हरि-संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिनि दूजे अलि जारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवति है, ब्रजबनिता सब स्याम दुलारी।

संदर्भ - प्रस्तुत पद हिंदी साहित्याकाश के सूर्य, भगवान कृष्ण की माधुर्यमयी लीलाओं के चितेरे महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - कवि ने कृष्ण विरह में सन्तप्त राधा की अत्यन्तज दीन-हीन दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि वृषभानु कुमारी राधा कृष्ण के विरह में अत्यन्त मलीन रहने लगी हैं। यह अपने वस्त्रों को साफ नहीं करतीं, मैली साड़ी पहने रहती है। इसका कारण है कि कृष्ण के साथ केलि-क्रीड़ा करते समय प्रेमावेश के कारण कृष्ण के शरीर से निकले हुए पसीने से राधा का सर्वांग और साड़ी भीग गई थी। इसी लालच के कारण वह उस साड़ी को नहीं धुलवाती। वह सदैव मुख नीचा किए हुए उन्हीं पूर्व मधुर स्मृतियों में खोई रहती है, कभी मुख उठाकर ऊपर नहीं देखती। उसकी दशा उस जुआरी के समान हो गई है, जो जुए में अपनी सारी पूँजी हार गया हो और नीचा मुख किए उदास बैठा हो।

उसके बाल बिखरे रहते हैं और मुख कुम्हलाया रहता है। उसकी दशा उस कमलिनी के समान निष्प्रभ और दयनीय हो उठी है, जिस पर पाला पड़ गया हो। वह एक तो पहले ही कृष्ण की विहिरणी बनी हुई थी, उस पर भौंरा बार-बार उसके पास आकर अपने रूप और गुण-सादृश्य द्वारा कृष्ण का स्मरण कराकर उसे व्यथित करता रहता है। एक तो उसका यह दुःख ही असहनीय था, ऊपर से उद्धव द्वारा लाए गए संदेश को सुनकर तो वह मृतप्राय हो गई है। ऐसी विषम स्थिति उस अकेली राधा की ही नहीं है, कृष्ण की दुलारी सभी ब्रजवनिताओं की भी ऐसी ही स्थिति है।

शब्दार्थ - मलीन-मैली, उदास। हरि श्रमजल-कृष्ण के साथ की गई प्रेम-क्रीड़ओं के समय शरीर से निकला हुआ पसीना। गथ-पूँजी। चिहुर-केश। बदन-मुख। नलिनी-कमलिनी। हिमकर-ओस।

विशेष -

1. विरहिणी राधा की स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है।
2. विरह की अन्तिम अवस्था 'मरण' का चित्रण है।

3. उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

12.7 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- महाकवि सूरदास के जीवन एवं उनकी कृतियों से परिचित हो चुके होंगे।
- महाकवि सूर के जन्म स्थान, उनकी जन्म तिथि तथा उनकी रचनाओं की प्रमाणिकता के विवादों एवं सर्वमान्य तथ्यों से परिचित हो चुके होंगे।
- महाकवि सूरदास की रस प्रवाहिनी काव्य कला का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- महाकवि सूरदास के ललित पदों का आनंद प्राप्त कर चुके होंगे।

12.8 शब्दावली

पतितन - पापी

निदारूण - कष्टकारी

अन्त:साक्ष्य - भीतर के प्रमाण

बड़भागी - भाग्यशाली

उत्तरकालीन - बाद के समय की

जन्मांध - जन्म से अन्धा

स्कंध - अध्याय

द्वादश - बारह

शात्रज्ञ - शास्त्र जानने वाला, विद्वान

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

i. संवत् 1535
ii. सूरसागर
iii. सूरसागर, सूर सारावली, साहित्यलहरी

(ख) सही उत्तर चुनिए

i. सही
ii. सही
iii. गलत

12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संचयिता हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 222
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली, खण्ड 01, पृष्ठ 257
3. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 9
4. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 105
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली, खण्ड 1, पृष्ठ 259
6. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 10
7. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 41-42
8. अंकुर, ए0 अजीज़, कविवर सूर सृष्टि और दृष्टि, पृष्ठ 15-16
9. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 61
10. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 61
11. डा. गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, (सम्पा), पृष्ठ 22
12. डा. हरवंश लाल शर्मा, पृष्ठ 83
13. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 84
14. अंकुर, ए0 अजीज़, कविवर सूर : सृष्टि और दृष्टि/19-20
15. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास/109
16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-1/286
17. उपरोक्त/288
18. अंकुर, ए0 अजीज़, कविवर सूर: सृष्टि और दृष्टि
19. कविवर (उपरोक्त/26)
20. उपरोक्त/27
21. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-1/295-296
22. उपरोक्त/300
23. ग्रंथावली-1/301

12.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिंदी साहित्य का इतिहास एवं सूरदास काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका एवं सूर-साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वाजपेयी, नंद दुलारे, सूरदास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

12.12 निबंधात्मक प्रश्न

(क) महाकवि सूरदास का सम्पूर्ण जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्य कृतियों की प्रमाणिकता का विश्लेषण कीजिए।

(ख) 'महाकवि सूरदास हिंदी भक्ति कविता के सूर्य है' इस संबंध में अपना समालोचनात्मक दृष्टिकोण प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 13 जायसी-जीवन एवं साहित्यालोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 जायसी का परिचय
13.3.1 सामान्य सूचनाएँ
13.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व
13.3.3 रचनाएँ
13.4 सूफ़ी मत एवं निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा
13.4.1 सूफी मत का उद्भव और विकास
13.4.2 निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा का उद्भव और विकास
13.4.3 निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा से जुड़ी रचनाएँ
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.8 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले आप हिन्दी-साहित्य के इतिहास में वर्णित काल-विभाजन और नामकरण तथा भक्ति-काल के उद्भव और विकास से परिचित हो चुके हैं। यहाँ दी गई पाठ-सामग्री को पढ़कर आप मलिक मुहम्मद जायसी के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं के साथ-साथ प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य और सूफ़ी मत तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। भक्ति-काल में निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य का विकास, लौकिक प्रेमगाथाओं की सुदीर्घ परम्परा पर आधारित है। आचार्य शुक्ल ने इस प्रसंग को स्पष्ट करते हुए लिखा है - ''दूसरी शाखा प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की है जिनकी प्रेम-गाथाएँ वास्तव में साहित्य कोटि के भीतर आती हैं। इस शाखा के सब कवियों ने कल्पित कहानियों के द्वारा प्रेममार्ग का महत्त्व दिखाया है। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस 'प्रेमतत्व' का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है। इन प्रेम कहानियों का विषय तो वही साधारण होता है अर्थात् किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के अलौकिक सौन्दर्य की बात सुनकर उसके प्रेम में पागल होना और घर-बार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट और आपत्तियाँ झेलकर अन्त में उस राजकुमारी को प्राप्त करना; पर 'प्रेम की पीर' की जो व्यंजना होती है, वह ऐसे विश्वव्यापक रूप में होती है कि वह प्रेम इस लोक से परे दिखाई पड़ता है। हमारा अनुमान है कि सूफ़ी कवियों ने जो कहानियाँ ली हैं वे सब हिन्दुओं के घर में बहुत दिनों से चली आती कहानियाँ हैं जिनमें आवश्यकतानुसार उन्होंने हेरफेर किया है। कहानियों का मार्मिक आधार हिन्दू है।''

भारतीय प्रेमकथा परम्परा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत यह है कि - ''गोस्वामी तुलसी दास जी के पहले लोक भाषा में प्रेमकथानकों का ऐसा साहित्य काफ़ी अधिक संख्या में लिखा गया था जिसके कथा-अंश का आधार लोक-प्रचलित कथानक थे। कभी-कभी ये काव्य किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के नाम के साथ जुड़े होते थे और कभी इनमें के चरित-नायक बिल्कुल कल्पित व्यक्ति हुआ करते थे। जब तुलसी दास ने कहा था, '' कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना'' तो उनके मन में दोनों प्रकार की रचनाएँ थीं। उन दिनों मधुमालती, मृगावती, हीर और राँझा, ढोला और मारू, सारंगा और सदावृक्ष आदि निजंधरी नायक-नायिकाओं की प्रेम-कहानियाँ आजकल के सस्ते ढंग के उपन्यासों का काम करती थीं। इन प्रेम-सम्बन्धी कहानियों को लोग बड़े चाव से पढ़ते थे।'' जायसी का सृजनशील व्यक्तित्व सामान्यतः भक्ति-आन्दोलन और विशेषतः प्रेमाश्रयी शाखा से जुड़ी प्रवृत्तिगत विशिष्टताओं का प्रतिनिधि माना जाता है। वे अपने रचना-संसार के आधार भूत घटकों में सम्प्रदायबद्ध संकीर्णता तथा शास्त्रीय और मान्य (प्रतिष्ठित) जीवन-विधि को छोड़कर सहज मानवीय उदारता; लोक-परम्परा द्वारा प्रदत्त तथा स्वीकृत मान्यताओं और मूल्यों; लोक-रुचि और लोक-भाषा को स्थान देते हैं। यह विशेषता सामान्य और साधारण को महत्व देने के उस ऐतिहासिक रचनात्मक सन्दर्भ से उपजी है जो भक्ति-साहित्य की विविध रूपी धाराओं की सामान्य विशेषता है। यही रचनात्मक सन्दर्भ, वह उपजाऊ जमीन है जिससे 'प्रेम की पीर' की बेल रस पाती है। इसी रस ने जायसी और उनकी सृजनात्मकता को तब से अब तक न केवल जीवित बल्कि जीवन्त बनाए रखा है। यह उस रचना-भूमि की उर्वरता है जिसने जायसी जैसा महाकवि और पद्मावत जैसा महाकाव्य दिया और जिसे समझे बिना न केवल भक्ति-साहित्य की स्वरुपगत समग्रता को समझना असम्भव है बल्कि समसामयिक भारत में सांस्कृतिक समंजस की सम्भावना को भी।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की रचनाओं में मिलने वाली भक्ति की प्रवृत्ति को मुख्यतः दो धाराओं में वर्गीकृत किया जाता है- सगुण और निर्गुण। इनमें पारस्परिक भेद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार ब्रह्म के स्वरुप की धारणा में पाया जाने वाला मतान्तर है। सगुण धारा के अनुसार ब्रह्म निर्गुण निराकार न होकर सगुण साकार है तो अन्य के अनुसार निर्गुण निराकार। कहना न होगा कि इन दोनों धारणाओं के निश्चित सामाजिक और राजनैतिक प्रभावों की ऐसी श्रृंखला है जो सामाजिक परिवर्तन की धारा को दिशा-गति देने

की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रही है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के विस्तार और विविधता की दृष्टि से इसमें सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक और सांसकृतिक परिवर्तन की प्रस्तावना करने वाली किसी भी विचार-धारा में अनिवार्य रुप से इतना लचीलापन होना ही था जितना भक्ति में है। यह मात्र संयोग नहीं कि भक्ति-संसार के दिक्पालों में कबीर, जायसी, सूर और तुलसी जैसे विलक्षण सृजनात्मक बोध के महान रचनाकार एक ही मंच पर आ खड़े हुए हैं।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत अध्ययन के उपरान्त आप –

- मलिक मुहम्मद जायसी के संक्षिप्त जीवन परिचय को जान सकेंगे।
- भक्ति की निर्गुण धारा के अन्तर्गत प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- सूफ़ी मत का संक्षिप्त परिचय जान सकेंगे।
- प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य और सूफ़ी मत के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- हिन्दी-साहित्य की प्रेमगाथा परम्परा का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिन्दी-साहित्य की प्रेमगाथा परम्परा में पद्मावत और जायसी को समझ सकेंगे।
- जायसी-साहित्य के प्रधान आलोचकों के अभिमत से परिचित हो सकेंगे।

13.3 जायसी का परिचय

13.3.1 परिचय

पद्मावत के रचयिता मलिक मुहम्मद वर्त्तमान उत्तरप्रदेश में अमेठी के पास जायस के रहने वाले थे, इसी से इन्हें जायसी के नाम से जाना जाता है। इनकी रचनाओं में मिले साक्ष्यों के आधार पर इनके जन्म तथा जीवन-प्रसंग के बारे में अनेक अनुमान किये गये हैं। पर ध्यान में रखना चाहिए कि इनकी रचनाओं में उपलब्ध होने वाले इन साक्ष्यों के आधार पर कोई साफ़ तस्वीर बना पाना आसान नहीं है। बहरहाल 936 हिजरी (सन् 1528 ई.) के आस-पास इनके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अभिमत निम्नलिखित है -''इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के संबंध में लिखा है - 'भा अवतार मोर नवसदी, तीस बरस ऊपर कवि बदी'। इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। 'नवसदी' ही पाठ मानने से जन्म काल 900 हिजरी अर्थात 1452 ई. के आस-पास ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा की जन्म के तीस वर्ष बाद जायसी अच्छी कविता करने लगे। जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ है पद्मावत, जिसका निर्माण-काल इस प्रकार दिया है -

''सन् नौ सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।।''

इसका अर्थ होता है पद्मावत कथा के प्रारंभिक वचन 'आरंभ बैन' कवि ने सन् 927 हिजरी यानी सन् 1520 ई. के लगभग कहे थे। पर ग्रंथ के आरंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार शाह-ए-वक्त शेरशाह की प्रशंसा की है। जिसके शासन-काल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात 1540 ई. से हुआ है। इस दशा में यही जान पड़ता है कि

कवि ने कुछ थोड़े से पद 1520 ई. में बनाये थे पर ग्रंथ को 19 या 20 वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया।'' इस प्रसंग में वासुदेव शरण अग्रवाल का मानना है कि -''9वीं सदी हिजरी (1398 ई. से 1494 ई.) के बीच में किसी समय जायसी का जन्म हुआ। नवसदी से यह अर्थ लेना कि ठीक 900 हिजरी अर्थात 1494 ई. में जायसी का जन्म हुआ था, कवि के जीवन की अन्य तिथियों से संगत नहीं ठहरता। पद्मावत की रचना 1527-1540 ई. के बीच किसी समय हुई। उस समय वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। अतः 1494 को उनका जन्म संवत मानना कठिन है। आखिरी कलाम का निर्माण उन्होंने 1535 ई. अर्थात 936 हिजरी में किया। उससे पहले बादशाह बाबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ चुके थे। जिसका उल्लेख कवि ने किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने यह संकेत भी किया है कि उनके जन्म के आस-पास एक बड़ा भूकम्प आया था।'' मनेर शरीफ (बिहार) वाले ख़ानकाह के पुस्तकालय से मिली अखरावट की प्रति के आधार पर प्रोफेसर सैयद हसन असकरी ने अखरावट का रचनाकाल 1505 ई. माना है। 1505 ई. में 30 वर्ष का समय घटाकर 1475 ई. को जायसी का जन्म वर्ष माना जा सकता है। इसी क्रम में 910-11 हिजरी के उस प्रचंड भूकम्प की चर्चा भी की जा सकती है जिसका उल्लेख 'तारीख़ दाउदी' (अब्दुल्लाह) तथा बदायूँनी की 'मुनतख़वुल तारीख़' आदि में है।

उपरलिखित विवरणों से स्पष्ट है कि जायसी के जन्म संवत को लेकर किसी ठोस निर्णय पर पहुँचना बहुत मुश्किल है। अतः जायसी को 15वीं सदी के मध्य में कभी जन्मा हुआ मानने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं बचता। विवाद इस बात को लेकर भी है कि इनका जन्म जायस में हुआ था या ये कहीं और से आकर वहाँ बस गये थे। पद्मावत में उन्होंने अपने चार मित्रों की चर्चा भी की है। इन मित्रों में युसूफ मलिक को पंडित के रूप में, सालार तथा मियाँ सलोने को वीर योद्धा के रूप में तथा बड़े शेख़ को वे सिद्ध के रूप में याद करते हैं। जनश्रुतियों में इनका एक आँख और एक कान से हीन होना साथ ही कुरूप होना प्रसिद्ध है। इन बातों की चर्चा उन्होंने स्वयं रचना-प्रसंगों के भीतर भी की है। पर यह स्पष्ट नहीं है कि ये चुनौतियाँ उन्हें जन्म से ही मिली थीं या बाद में। इन्होंने अनेक सिद्ध गुरुओं की चर्चा की है जिनकी सहायता से जायसी को वह रास्ता मिला जिसकी उन्हें तलाश थी। इनमें सैयद अशरफ, शेख़ हाज़ी, शेख़ मुबारक और शेख़ कमाल आदि का नाम लिया है। इनके अलावा मौहदी या महदी गुरु शेख़ बुरहान की चर्चा भी की है। इस प्रसंग में उपलब्ध साक्ष्य यह बताते हैं कि जायसी ने शास्त्रीय ज्ञान के लिये कम से कम दो या दो से अधिक धाराओं से संबंध रखने वाले सूफ़ी संतों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है। इससे स्पष्ट है कि वे किसी सम्प्रदाय की सीमा में बँधने की जगह जीवनानुभूति और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उदारता के हामी हैं। उनकी यही उदारता संस्कृतियों के संगम पर खड़े उनके विलक्षण संश्लेषक कवि-व्यक्तित्व की आधारशिला है।

13.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व

मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य परम्परा में विलक्षण रचनाकार हैं। ये भक्ति-काव्य की निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों ने कथ्य के आधार के रूप में लोक में प्रचलित प्रेम-कथाओं को अपनाया है। इसी आधार पर उन्होंने अपनी जीवन-दृष्टि को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेममार्गी भक्ति शाखा और जायसी का परिचय देते हुये हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि -''कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखायी पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ, हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुयी परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता

बनी थी, यह जायसी द्वारा पूरी हुयी।'' इस प्रसंग की तह तक पहुँचते हुए आचार्य शुक्ल निर्गुण भक्ति की दानों धाराओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखकर अपना निष्कर्ष इस प्रकार देते हैं -''कबीर ने अपनी झाड़-फटकार के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को कम करने का जो प्रयास किया वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करनेवाला नहीं। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ।'' जाहिर है कि आचार्य शुक्ल इस काल की रचनाओं के माध्यम से उस समय और समाज के परिदृश्य को उसकी समग्र अन्विति में विश्लेषित करने का प्रयास कर रहे हैं। इस क्रम में कबीर के बारे में उनके मन्तव्यों के अतिरेक से सहमत होना सम्भव नहीं है किन्तु, जायसी के सृजनात्मक अवदान के महत्व के विषय में उनके द्वारा व्यक्त की गयी दिशा बहुत महत्वपूर्ण है। इसका संकेत देते हुये जायसी ग्रंथावली की भूमिका में उन्होंने लिखा है -''बहुत दिनों तक एक साथ रहते-रहते हिन्दू और मुसलमान एक-दुसरे के सामने अपना-अपना हृदय खोलने लग गये थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिन्दुओं की रामकहानी सुनने को तैयार हो गये थे और हिन्दू मुसलमान का दास्तानहमज़ा।'' यहाँ आचार्य शुक्ल मध्यकालीन भारतीय समाज के तमाम अन्तस्संघर्षों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और उससे भी बढ़कर हार्दिक एकता के बोध की सम्भावना का संकेत करते हैं -''सूफी मुसलमान फकीरों के सिवा कई सम्प्रदायों (जैसे गोरखपंथी, रसायनी, वेदान्ती) के हिन्दू साधुओं से भी उनका बहुत सत्संग रहा, जिनसे उन्होंने बहुत सी जानकारी प्राप्त की। ......इसी उदार सार ग्राहिणी प्रवृति के साथ ही साथ उन्हें अपने इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर भी पूरी आस्था थी। यद्यपि कबीरदास के समान उन्होंने भी उदारता पूर्वक ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों का होना तत्वतः स्वीकार किया है।'' जायसी के रचनात्मक अवदान के प्रसंग में उनकी निभ्रांत धारणा यह है कि -''पद्मावत को पढ़ने से यह प्रकट हो जाएगा कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में और क्या भगवत् पक्ष में, दोनों ओर उनकी गूढ़ता और गम्भीरता विलक्षण दिखायी देती है।''

कहना न होगा कि, मलिक मुहम्मद जायसी को भक्ति-काव्य-धारा में अत्यंत गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि -''सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी थे, जो कहीं बाहर से जायस में आए थे और इसी धर्म-स्थान को अपना निवास-स्थान बना लिया था। इनकी प्रसिद्ध रचना पद्मावत है; अखरावट और आखिरी क़लाम नामक दो और रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। भगवान ने इन्हें रूप देने में बड़ी कंजूसी की थी किन्तु शुद्ध निर्मल और प्रेमपरायण हृदय देने में बड़ी उदारता से काम लिया था।'' जायसी के कवि व्यक्तित्व की विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि -''जायसी के संदर्भ में यह बात फिर उभर कर आती है कि कविता-मात्र साम्प्रदायिक नहीं होती। मुसलमान होकर हिन्दू शौर्य की गाथा - दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध - एक नाज़ुक प्रसंग है। पर जायसी पद्मावत के चित्रण में एकदम खरे उतरते हैं। यहाँ दोनों पक्षों का पूरे आदर और आत्मीयता के साथ उल्लेख हुआ है -'हिन्दू तुरक दुवौ रन गाजे।' और अगर आत्मीयता कहीं कुछ अधिक है तो चित्तौड़ के साथ न कि दिल्ली के।'' मलिक मुहम्मद जायसी और उनके रचना कर्म को देखने और दिखाने की पारंपरिक दृष्टि को सीधी चुनौती देते हुये विजयदेवनारायण साही ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'जायसी' में लिखा है -''उन्होंने (आलोचकों ने) जायसी को सैयद मुहम्मद महदी का चेला तो माना, लेकिन बिना इसकी छानबीन किये कि महदियत के चरित्र और तसव्वुफ़ के चरित्र में क्या अन्तर है, जायसी को उसी गुरु-परम्परा के आधार पर सूफ़ी मान लिया। यहाँ तक कि यह हिन्दी की लगभग बद्धमूल धारणा हो गयी है कि पद्मावत एक सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य है और इसकी चर्चा हिन्दी कविता के उस कोने में होनी चाहिए जहाँ जायसी के समकक्ष कुतबन और मंझन दिखते हैं। हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की शृंखला कबीर, जायसी, सूर और तुलसी की है, यह दृश्य अक्सर आँखों से ओझल हो जाता है।'' बहुत से ठोस तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर एक व्यवस्थित विवेचन प्रक्रिया

विकसित करते हुये उन्होंने जायसी के कवि व्यक्तित्व की मूलभूत विशेषताओं को सामने लाया है। वे जायसी के काव्य की विशेषताओं का उद्घाटन करने के क्रम में जायसी या पद्मावत पर सूफ़ी प्रभाव का प्रयास पूर्वक निषेध करते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा है कि जायसी का महत्व उनकी रचनात्मकता पर सूफ़ी प्रभाव को लेकर नहीं बल्कि उनके कवित्व को लेकर है।

सामान्यतः सभी कवियों और विशेषतः भक्ति-काव्य के प्रतिनिधि कवियों के बारे में बार-बार यह प्रश्न सामने आता है कि उनकी विशेषता का आधार उनकी वह चिंतन-धारा है जिससे वे आमतौर पर जुड़े हुये माने जाते हैं, या फिर उनका कवित्व। परम्परा और परिवर्तन को उसकी समग्रता में पहचानने का इतिहासधर्मी दबाव, कई बार रचनाकार या रचना के रचनात्मक परिप्रेक्ष्य अथवा वैयक्तिक वैशिष्ट्य की पहचान में बाधा बन जाता है। कवित्व का परिचय सामने आता तो है पर दबा-सहमा सा। वहाँ दर्शन की गरिमा साहित्यिक सृजनात्मकता पर भारी पड़ती है। जायसी बड़े सूफी संत हैं या नहीं ? वे महान समाजसुधारक हैं या नहीं ? ये प्रश्न साहित्य के विद्यार्थी के लिए भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं; लेकिन उनके कवित्व की असंदिग्ध प्रभावकता हमारे लिए निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण है।

13.3.3 रचनाएँ

जायसी की अनेक रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। इनमें पद्मावत, अखरावट और आखिरी क़लाम को प्रामाणिकता प्राप्त है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

पद्मावत - मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा ठेठ अवधी में रचित यह रचना हिन्दी-साहित्य के प्रेमाख्यानकों की परम्परा का उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसका रचना-काल, विद्वानों के बीच विवाद का विषय रहा है। कुछ ने इसे 1521 इसवी तो कुछ अन्य ने 1540 इसवी के आस-पास का माना है। इसमें चित्तौड़ के राजा रतनसेन, उसकी रानी नागमती, सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावत तथा अन्य अनेक पात्रों और आनुषंगिक कथाओं के कुशल संयोग से इस महाकाव्य की रचना की गई है। इसके रचना-विधान पर फारसी की मसनवी शैली का स्पष्ट प्रभाव है। पद्मावत के प्रसंग में अधिकांश आलोचकों का मानना है कि यह सूफ़ी प्रभाव से प्रेरित और सूफ़ी जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करने वाली रचना है। इस बद्धमूल धारणा का आधार निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं जिन्हें पाठ-कुंजी माना जाता रहा है-

''तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पद्मिनी चीन्हा।।
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।
प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।''

डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त ने इन पंक्तियों को प्रक्षिप्त सिद्ध किया है। विजयदेवनारायण साही ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'जायसी' में जायसी और पद्मावत को सूफ़ी प्रभाव से अलग करके देखने की पुरजोर वक़ालत की है। जायसी ने पद्मावत में लोक-जीवन के विविध अनुषंगों (लोक-कथा, लोक-भाषा, लोकोक्ति, लोकाचार आदि) का आधार लेकर न केवल कथा-सूत्र विकसित किया है, बल्कि अपना रचनात्मक संदेश भी इन्हीं आधारों पर सृजित किया है। ऐसा कहने और मानने का कारण यह है कि पद्मावत के कथ्य और उसके रूप से उसके परिवेश की पारस्परिक अन्विति बेजोड़ है। ऐसा किसी रचना या कवि के प्रसंग में तभी संभव हो पाता है जबकि रचनाकार का न केवल अपने कथ्य से, न केवल उस कथ्य के संप्रेषण के घटकों से, बल्कि उस परिवेश और अभीप्सित पाठक-श्रोता समुदाय

से भी गहरा तादात्म्य हो। जायसी की सृजनात्मक क्षमता का पुष्ट प्रमाण देता हुआपद्मावतपद्मावत यह भी साबित करता है कि उसे अपनी असंदिग्ध ताकत को प्रमाणित करने के लिए साहित्य से इतर किसी और सहारे की आवश्यकता नहीं। यहाँ कही गयी बातों को अगली इकाई में पद्मावत के मूल पाठ के विवेचन-विश्लेषण के क्रम में व्यावहारिक रूप से जाना जा सकता है।

अखरावट - अखरावट में जायसी का कथ्य सैद्धान्तिक है। जीवन और जगत की संरचना तथा इसके आधार के रूप में सक्रिय उस मूल सत्ता के स्वरूप और भूमिका को स्पष्ट करने वाली यह पुस्तक न केवल जायसी बल्कि उनके समय की प्रचलित धारणाओं को सामने लाती है। आचार्य शुक्ल ने इसके बारे में लिखा है -''अखरावट में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त सम्बन्धी, तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गयी हैं। इस छोटी सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर-प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।'' उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं।

दोहा

गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
ऐसेइ अंधकूप मँह रचा मुहम्मद नूर।।

सोरठा

साईं केरा नाँव, हिया पूर, काया भरी।
मुहमद रहा न ठाँव, दूसर कोइ न समाइ अब।।
आदिहु ते जे आदि गोसाईं। जेइ सब खेल रचा दुनियाई।।
जस खेलेसि तस जाइ न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा।।
एक अकेल न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भाँती।।
जौ वै आनि जोति निरमई। दीन्हेसि ज्ञान, समुझि मोहिं भई।।
औ उन्ह आनि बार मुख खोला। भइ मुख जीभ बोल मैं बोला।।
वै सब किछु, करता किछु नाहीं। जैसे चलै मेघ परिछाहीं।।
परगट गुपुत बिचारि सो बूझा। सो तजि दूसर और न सूझा।।

आख़िरी क़लाम - 'आखिरी क़लाम' में कयामत के समय अल्लाह के फैसले का विशद वर्णन है। विजयदेवनारायण साही ने इस प्रसंग में लिखा है कि -''आख़िरी कलाम की कयामत वह भावनात्मक और वैचारिक धुरी है जिस पर हमारे पुण्य, ईमान और बेइमानियाँ चक्कर काटते हैं - कल या परसों घटित होने वाला इतिहास नहीं।'' यह भी अवश्य याद रखना चाहिए कि जायसी के जीवन और उनकी रचनाओं के बारे में प्राप्त अधिकतर तथ्य परक सूचनाओं का आधार 'आखिरी क़लाम' ही है।

13.4 सूफ़ी मत एवं निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा

13.4.1 सूफ़ी मत का उद्भव और विकास

व्यक्तित्व का विकास उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से संसर्ग का ही प्रतिफल है। कवि जायसी के ठीक पहले और उनके रचना-काल की परिस्थितियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि इस दौर में सूफ़ी जीवन-दर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण बनकर सामने आया। इसके महत्वपूर्ण होने के पीछे ठोस ऐतिहासिक कारण थे। भारत में हिन्दू और मुसलमान अपनी तमाम आन्तरिक विविधताओं, विचित्रताओं और विरोधों के साथ आमने-सामने खड़े थे। इनमें परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य भी था। यह आदान-प्रदान न तो आकस्मिक था और न इतना नया ही। परन्तु इतने व्यापक पैमाने पर यह परिस्थिति पहली बार बनी थी, इसमें संदेह नहीं। दोनों-जन समूहों की परस्पर अन्तर्क्रिया से भारतीय संस्कृति को एक नयी दिशा और नया स्वरूप मिलना था। यह तभी सम्भव था जब दोनों जन-समूह अपने जीवन-दर्शन के स्तर पर एक हद तक उदार होते। हिन्दी समाज और साहित्य में सूफ़ी मत, इस्लाम के इसी उदार वैचारिक पहलू का प्रतिनिधि है। 'भारतीय चिन्तन परम्परा' में के. दामोदरन ने लिखा है -''सामंत काल में सूफ़ी सम्प्रदाय रहस्यवाद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धाराओं में से एक था। इसका उदय उन क्षेत्रों में हुआ, जिन्हें आठवीं अथवा नवीं शताब्दी में मुसलमानों ने जीत लिया था। भारत में इस्लाम का प्रसार होने के साथ ही सूफ़ी मत का भी तेज़ी से प्रसार हुआ। भारत में आने से पहले भी सूफ़ी मत बौद्ध धर्म और हिन्दू विचारधारा से परिचित था और उसने भारतीय आदर्शवाद के कुछ तत्वों को आत्मसात कर लिया था।''

सूफ़ी साधकों और संतों ने सादग़ी और एकनिष्ठता को साधना का आधार बनाया। वे वास्तविकता की सही पहचान के लिए साधक के जीवन में अनेक कठिन शर्तों के पालन को अनिवार्य मानते हैं। पारम्परिक इस्लाम के झंडाबरदारों में, इस्लाम के औपचारिक स्वरूप के प्रति जो कट्टरता दिखाई देती है, सूफ़ियों में उसका आभाव है। वे इस्लामी जीवन-विधि के दृश्यपक्ष को खास महत्व न देते हुए उसके आन्तरिक अनुशासन के प्रति समर्पित हैं। जहाँ परमानंद की प्राप्ति लक्ष्य है और इसके लिए एकनिष्ठ प्रेम ही इसका साधन है। सूफ़ी मत की व्याख्या के प्रसंग में अनेक विद्वानों ने वेदान्त-दर्शन से इसकी समानता को रेखांकित किया है। इस्लाम का मूल सिद्धांत -'सिर्फ एक ईश्वर का अस्तित्व है'- सूफ़ियों के यहाँ आकर -'खुदा के अलावा और कुछ नहीं खुदा ही सब जगह'- हो जाता है। इसे वहदतुलवजूद के रूप में जाना गया। सूफ़ी मत के बारे में कुछ विद्वानों का मानना यह है कि इसका जन्म मुहम्मद साहब के द्वारा प्रस्तुत की गई इस्लाम की अवधारणा के साथ ही हुआ। कुछ अन्य विद्वान इसे अपेक्षाकृत थोड़े बाद का मानते हैं। इस प्रसंग में ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम की पारम्परिक अवधारणा जहाँ बाहरी क्रिया कलापों तथा रोजा, नमाज़ आदि के प्रति एकनिष्ठ प्रतिबद्धता को महत्व देती है। वहीं सूफ़ी मत इस्लाम के रूप में प्रतिपादित धर्म के अन्तर्निहित रूपों, भावात्मक आधारों को लेकर विकास पाता है। मुहम्मद गोरी द्वारा भारत विजय के समय भारत में प्रविष्ट होने से पूर्व यह अनेक सिलसिलों में विभाजित हो चुका था। इनमें से बारह सिलसिले मुख्य माने जाते हैं। भारत में इन बारह सिलसिलों में से केवल चार ही अपना विस्तार पा सके। इनके नाम क्रमशः चिश्तिया, सोहरावर्दी, कादरी, नक्सबंदी हैं। इनमें भी ज्यादा प्रभावशाली चिस्ती और सोहरावर्दी रहे हैं। ख्वाज़ा मोईनुद्दीन चिस्ती और शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, शेख हमीदुदीन नागौरी, शेख फ़रीद्दुदीन महमूद और ख्वाज़ा कुतुबुद्दीन बख्तियार क़ाक़ी जैसे कुछ संतों ने अपने विलक्षण प्रभाव से लम्बे समय तक भारतीय समाज को दिशा दी।

इस्लाम की कठोर हदबंदियों को एक हद तक न मानते हुए आस्था के आन्तरिक पक्ष को मूल मानने वाले इन रहस्यवादियों ने हिन्दुओं के बीच इस्लाम के प्रचार और प्रसार की पृष्ठभूमि तैयार की। दिल्ली सल्तनत के तथा मुगल वंश के महानतम विजेताओं ने यदि भारत में राजनीतिक विजय हासिल की (जमीन और धन कमाया) तो

शौक़ से मुफ़लिसी में जीने वाले इन सूफ़ी संतों ने लाखों लोगों के हृदयों पर राज किया। इस्लाम की दोनों धाराओं के अन्दर और ख़ासतौर पर सूफ़ी मत में अनेक कबीलों से चली आयी पारंपरिक मान्यताओं और जीवन-विधियों का मेल दिखायी देता है। भारत में आकर अपनी स्वभावगत उदारता के बल पर इन्होंने हिन्दू जीवन-विधि के कुछ अंशों को भी अपना लिया। यही कारण है कि तब से लेकर इन सूफी संतों के मजारों और इनके द्वारा स्थापित खानकाहों में न केवल मुसलमान बल्कि हिन्दू भी श्रद्धा से अपना मत्था टेकते आये हैं। इस तरह यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि इस्लाम के भारत में आगमन से लेकर अब तक दो परस्पर भिन्न एवं एक हद तक परस्पर विरोधी प्रवृत्ति वाली संस्कृतियों के मेल से एक नयी संस्कृति और सभ्यता के विकास की दिशा में सूफी मत का योगदान अविस्मरणीय है। ठीक उसी काल में तथाकथित हिन्दू दलित जातियों के सदस्यों को उनका सम्मान देने और दिलाने के क्रम में भक्ति की विविध प्रवृत्तियों की जैसी भूमिका रही है ठीक वैसी ही भूमिका उपेक्षित और प्रताडित मुसलमानों को उनका हक दिलाने में सूफ़ी मत की रही है। यह महज संयोग नहीं है कि सूफ़ी मत को आधार बना कर चलने वाली निर्गुण प्रेममार्गी शाखा को भक्ति-आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में पहचाना गया है।

13.4.2 निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा का उद्भव और विकास

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के पूर्व मध्यकाल को भक्ति-काल कहा जाता है। इस काल में उपलब्ध साहित्यिक रचनाओं के आधार पर किये गये इस नामकरण को व्यापक स्वीकृति मिली है। इस काल की लगभग सभी रचनाओं में भक्ति की प्रवृति मुख्य रूप से सक्रिय है। साहित्य के विद्यार्थी को यह ध्यानपूर्वक देखना और समझना चाहिए कि भक्ति कोई एकरूपी अथवा समान तरीके अथवा समान उद्देश्य को लेकर चलने वाला जीवन-दर्शन नहीं है। भौगोलिक रूप से लगभग समूचे भारत में एक लम्बे काल-खण्ड (1400-1700 ई.) में रचनात्मक ऊर्जा का संचार करने वाली यह प्रवृत्ति विविध भाषा-भाषी क्षेत्रों, अनेकानेक भिन्न सांस्कृतिक समुदायों के विविध उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक ऐसा भावनात्मक और वैचारिक संदर्भ है जिसके बहुविध सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलु हैं। इस अर्थ में भक्ति, बेहद जटिल दार्शनिक अवधारणा है। यह अवधारणा उस काल-खण्ड की विविध और परस्पर विरोधी जीवन-विधियों और आदर्शों को एक ऐसा सृजनात्मक सांस्कृतिक मंच देती है, जो इससे पहले दुर्लभ था। यही कारण है कि यह प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के इतिहास में अर्जित की गई सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियों में एक है। जिसका प्रभाव भारतीय जीवन के विभिन्न संदर्भों में, बदले हुए रूपों में, आज भी देखा जा सकता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इसे चार मुख्य धाराओं में बाँटकर देखा गया है। जाहिर है कि इस बँटवारे का आधार इस युग में प्राप्त होने वाली रचनाएँ हैं। आचार्य शुक्ल ने इस काल की चार प्रमुख धाराओं का उल्लेख निम्नवत् किया है- ''इस प्रकार देश में सगुण और निर्गुण के नाम से भक्ति-काव्य की दो धाराएँ विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक समानान्तर चलती रही। ..... यह निर्गुण धारा दो शाखाओं में विभक्त हुई - एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी शुद्ध प्रेममार्गी शाखा (सूफियों की)।'' इस क्रम में वे आगे लिखते हैं -''दूसरी शाखा शुद्ध प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की है। जिनकी प्रेम गाथाएँ वास्तव में साहित्य कोटी के भीतर आती हैं। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्व का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलानेवाला है।

भक्ति आन्दोलन और इससे प्रेरित साहित्य को आराध्य की अवधारणा के आधार पर दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है - निर्गुण और सगुण। परमात्मा या परमशक्ति की अवधारणा के प्रसंग में निर्गुण और सगुण का यह अन्तर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। आपाततः परस्पर विरोधी दिखायी देने वाली ये दोनों अवधारणाएँ वस्तुतः अनेक अर्थों में एक दूसरे की विरोधी उतनी नहीं, जितनी की पूरक हैं। भारत जैसे वैविध्य पूर्ण

सांस्कृतिक विरासत वाले देश में किसी अवधारणा का लचीलेपन के बिना जीवित रहना असम्भव है। आश्चर्य नहीं कि भक्ति-आन्दोलन के पुरोधाओं के सामने भारतीय परम्परा ने जितने संभव विकल्प रखे थे, उन्होंने उन सब का आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग करते हुये इस भूभाग में बसने वाले विराट जन-समूह को सांस्कृतिक नेतृत्व दिया। पारम्परिक हिन्दू चिन्तन धारा में उपलब्ध निर्गुण मत और सूफ़ी मत में अवधारणागत समीपता के कारण भक्ति की निर्गुण धारा के क्रमशः दो भेद सामने आये -

1. ज्ञानाश्रयी निर्गुण मत और
2. प्रेमाश्रयी निर्गुण मत

जैसा नाम से ही स्पष्ट है ज्ञानमार्ग में उस परम शक्ति के बोध का आधार ज्ञान है, जो साधना का विषय है तो दूसरी ओर प्रेममार्गी शाखा में प्रेम का आधार ग्रहण किया गया है। इस धारा के अधिकतर रचनाकारों ने सूफ़ी मत के अनुरूप इश्क मज़ाज़ी (इस दुनियाँ का प्रेम) से इश्क हक़ीक़ी (पारलौकिक प्रेम) की अवधारणा को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ प्रेम के जिस स्वरूप को आधार बनाया गया है वह वस्तुतः गहन अन्तस्साधना के आधार पर पाया गया बोध है।

13.4.3 प्रेमाश्रयी निर्गुण मत से जुड़ी रचनाएँ

इस प्रेममार्गी शाखा की प्रमुख विशेषता लौकिक प्रेम कथाओं के आधार पर आध्यात्मिक उपलब्धि की यात्रा का सांकेतिक चित्रण है। इन कथाओं में प्रेमी और प्रेमिका के बीच अद्भुत आकर्षण, उनके मिलन-मार्ग की विकट बाधाओं और इन बाधाओं से नायक का जूझने और अन्त में उनके मिलन का चित्रण है। इस परम्परा की लौकिक कथाओं का हिन्दी क्षेत्र के भारतीय जन-समुदाय में व्यापक प्रचार-प्रसार था। इन कथाओं को आधार बनाकर अपनी बात को लोगों तक पहुँचाने का प्रयास प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों ने किया। इस धारा के कवियों में प्रथम स्थान चंदायन (1379 ई.) के रचयिता मुल्ला दाउद का है। चंदायन की भाषा अवधी है। इसका परिचय देते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि -''मुल्ला दाउद रायबरेली जिले के डलमउ के थे। वहीं चंदायन की उनहोंने रचना की। यह काव्य बहुत लोकप्रिय एवं सम्मानित था। दिल्ली में मखदुम शेख तक़ीउद्दीन रब्बानी जन समाज के बीच इसका पाठ किया करते थे। चंदायन पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना और उसकी विवाहिता प्रेमिका चंदा की प्रेम-कथा पर आधारित है। बीच-बीच में चंदा को इस काव्य में भी पद्मावत की भाँति अलौकिक सत्ता का प्रतीक बनाया गया है।'' इसी परम्परा में आने वाली दूसरी महत्वपूर्ण रचना 'मिरगावत' (1503-04) है। इसके रचनाकार कुतबन हैं। इस परम्परा को अपने शीर्ष पर पहुँचाने वाले मलिक मुहम्मद जायसी की जगत प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' है। 'पद्मावत' के कवि की सृजनात्मक विलक्षणता, उसकी दृष्टिगत व्यापकता और परस्पर विरूद्ध तत्वों को साथ-साथ देखने और दिखाने की क्षमता में निहित है। इस क्रम में अगला महत्वपूर्ण नाम कुतबन का है। इन्होंने 1503-1504 ई. के आस-पास 'मिरगावत' की रचना की। कुतुबन की 'मिरगावत' की विशेषताओं को रेखांकित करते हुये आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निम्नलिखित पंक्तियों में इस धारा के रचनाओं के बारे में कुछ बहुत महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं -''दो बातें इस कहानी में विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो पुरुष का एकान्तिक प्रेम और प्रिया को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना; दूसरा, प्रिया का धोखा देकर उड़ जाना और दूसरे देश में जाकर राज्य-शासन करना। इस प्रकार की कथानक-रूढ़ियाँ इस देश में नयी ही हैं। प्रेमपात्र में ऐश्वर्य-बुद्धि और कठिन साधना के द्वारा ही उसकी प्राप्ति तथा माधुर्य भाव के द्वारा ऐश्वर्य भाव का पराभव, ये सूफ़ियों के आध्यात्मिक आदर्श हैं। यहाँ प्रिय भगवान का प्रतीक है और धोखा देकर उड़ जाना उसके प्रेम की सचाई की परीक्षा है। सूफ़ी कवियों ने सदा प्रेमी को अनेक विघ्नों में से निकाल कर नायिका तक पहुँचाया है। लौकिक पक्ष में यह प्रेम की एकान्तिकता का सूचक है और पारलौकिक पक्ष में साधना की गहनता का।'' इस परम्परा में तीसरा नाम उस महान कवि का है जिसे इस धारा

का सर्वश्रेष्ठ कवि होने का गौरव प्राप्त है। हिन्दी-साहित्य के पाठक इन्हें मलिक मुहम्मद जायसी के नाम से जानते हैं। इनकी जगत प्रसिद्ध रचना पद्मावत इनके अखण्ड यश का दृढ़ आधार है। अखरावट और आखिरी कलाम नामक दो अन्य रचनाएँ भी इन्होंने लिखी हैं। लेकिन साहित्य की दृष्टि से पद्मावत सर्वोपरि है। इसकी आधार कथा सिंघल देश की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौर के राजा रतनसेन की प्रेम-कथा है। अनेक सहायक पात्रों के माध्यम से इस कथा का बहुत प्रभावी ताना-बाना जायसी ने प्रस्तुत किया है। इसके बारे में अधिकतर विद्वानों की धारणा है कि यह सूफ़ी मत का प्रतिनिधि काव्य है। परवर्ती दौर में प्रसिद्ध हिन्दी आलोचक विजयदेवनारायण साही ने इस रचना को सूफ़ी मत से अलग कर, इसकी साहित्यिक विलक्षणता को पहचानने की कोशिश की है। उनका प्रस्ताव यह है कि सूफ़ी मत से जायसी और पद्मावत का अनिवार्य संबंध मान लिये जाने के कारण इसकी व्याख्या और सही समझ विकसित करने में बाधा आती है। लिहाजा जायसी की काव्यगत विशेषताओं को तब तक नहीं पहचाना जा सकता जब तक कि हम पद्मावत को सूफ़ी सिद्धांत की छाया से मुक्त नहीं कर लेते। किन्तु विजयदेवनारायण साही की इस धारणा को व्यापक स्वीकृति मिल पाना अब तक भविष्य का विषय है।

इस परम्परा में अगले रचनाकार मंझन हैं। इनकी रचना का नाम 'मधुमालती' है, जिसका कथा-सूत्र काफ़ी लम्बा और जटिल है। आचार्य शुक्ल ने इन्हें जायसी का पूर्ववर्ती माना है, जबकि परवर्ती शोध इन्हें जायसी के बाद का मानने के पक्ष में हैं। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखा है कि -''कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना करके कथा को तो विस्तृत किया ही है, साथ ही प्रेम और ताराचंद के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपूर्व संयम और निःस्वार्थ भाव का चित्र दिखाया है। जन्म जन्मांतर और योन्यंतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखाकर मंझन ने प्रेमतत्व की व्यापकता और नित्यता का आभास दिखाया है।''

13.4.4 निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा की रचनाओं की सामान्य विशेषताएँ

इनमें रचनाकारों ने हिन्दु जन-मानस में प्रचलित लोक-कथाओं और लोक-भाषा (अवधी) का आधार ग्रहण किया है।

- ज़्यादातर रचनाएँ फ़ारसी की मसनवी शैली में लिखी गई हैं।
- इनमें सूफ़ी दर्शन के तत्व प्रकटतः देखे जा सकते हैं।
- इन कथाओं में अनेक कथानक रूढ़ियों का प्रयोग है जो दोनों संस्कृतियों के मेल का सूचक है।

{''कथानक को गति देने के लिए सूफ़ी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक-रूढ़ियों का व्यवहार किया है, जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं; जैसे चित्रदर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उसपर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मन्दिर या चित्रशाला में प्रिययुगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नयी कथानक-रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गयी हैं; जैसे - प्रेम-व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमारी का प्रेमी को गिरफ़्तार करा लेना, इत्यादि। परन्तु इन नयी कथानक-शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है।''} इन रचनाओं का मुख्य आधार प्रेम की भावना है, जो मनुष्य को सामान्य जीवन में पाये जाने वाले बन्धनों से मुक्त कर अनुभव के दूसरे लोक में पहुँचाता है।

चौपाई और दोहे के मेल से बने कड़वकों में ये कथाएँ निबद्ध हैं।

पाठ्यक्रम संख्या दस में पद्मावत के चयनित अंश की व्याख्या और जायसी की रचनात्मक विषेषताओं से व्यावहारिक परिचय के क्रम में हम प्रेममार्गी काव्यों की कतिपय अन्य विशेषताओं का परिचय भी पायेंगे।

13.5 सारांश

मध्यकालीन कविता की सातवीं इकाई जायसी जीवन एवं साहित्यलोचना का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सके कि –

- जायसी भक्ति काल निर्गुण शाखा के प्रेममार्गी धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। जायसी न केवल भक्ति काल के श्रेष्ठ कवि है, अपितु हिंदी साहित्य के भी श्रेष्ठ कवि है।
- जायसी का महत्व न केवल साहित्यिक है वरन् सांस्कृतिक भी है, जायसी जैसे कवियों ने हिन्दु-मुसलमानों को धार्मिक विभेद से मुक्त कर उन्हें लोक सामान्य की भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया।
- जायसी का श्रेष्ठ ग्रंथ पद्मावत है, जो हिंदी साहित्य का अनुपम रत्न है। यह ग्रंथ प्रेम काव्य नहीं है वरन् सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सेतु भी है।
- जायसी लोक भाषा एवं लोकतत्व के कवि हैं। उस प्रदेश के उस समय की प्रचलित लोक भाषा (ठेठ अवधी) का व्यवहार आपने किया है। पूरे काव्य में लोक अभिप्राय बिखरे पड़े हैं।

13.6 शब्दावली

- निर्गुण - संस्कृत/हिन्दी गुणों के परे, गुणों के दायरे से बाहर का, ईश्वर
- प्रेममार्गी - संस्कृत/हिन्दी सूफ़ी मत का आधार ग्रहण करने वाले संत अथवा भक्त कवि
- सूफ़ी (अरबी) अपेक्षाकृत उदार विचार वाले मुसलमानों का एक सम्प्रदाय
- इश्क़ हक़ीक़ी (अरबी) वास्तविक प्रेम (आध्यात्मिक, ईश्वरोन्मुख)
- इश्क़ मज़ाजी (अरबी) कृत्रिम, नकली, संसार या इहलोक सम्बन्धी
- मसनवी (अरबी) कविता का एक प्रकार जिसमें दो-दो तुकान्त चरण एक साथ रहते हैं। अल्लाह और शाह ए वक्त की प्रार्थना से युक्त प्रबन्धात्मक रचना।
- कड़वक संस्कृत/हिन्दी 5 से लेकर 8 चौपाइयों और एक दोहे के मेल से बनने वाले सम्मुच्चय, जो जैन चरित काव्यों, प्रेमाख्यानकों में प्रयुक्त हैं।

13.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- शुक्ल, रामचन्द्र,जायसी ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 110002
- अग्रवाल, वासुदेव शरण, पद्मावत, सं0- ,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली 110002
- साही, विजयदेवनारायण, जायसी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद 211001
- त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरिएन्ट लांगमैन, नई दिल्ली 110002
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1

- बाशम, ए. एल., अ कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस
- दामोदरन, के0, भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-55
- रिज़वी, एस.ए.ए., द वन्डर दैट वाज इंडिया(भाग दो), रूपा एंड कम्पनी-नई दिल्ली 110002

13.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर जायसी के रचनाकार व्यक्तित्व का परिचय दें।
2. जायसी की विभिन्न रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देते हुये निर्गुण धारा की प्रेममार्गी शाखा में उनके महत्व का रेखांकन करें।
3. निम्नलिखित में से किसी एक की चरित्रगत विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दें -
   1. पद्मावती, 2. राघवचेतन, 3. रतनसेन, 4. अलाउद्दीन
4. पद्मावत और जायसी के संदर्भ में तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य पर प्रकाश डालें।

इकाई 14 - तुलसीदास: परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 परिचय

- 14.3.1 सामान्य सूचनाएँ
- 14.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व
- 14.3.3 प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

14.4 सगुण भक्तिधारा की राम-भक्ति शाखा

- 14.4.1 भक्ति-आन्दोलन का परिप्रेक्ष्य (समय और समाज)
- 14.4.2 राम-भक्ति शाखा का दार्शनिक आधार (विशिष्टाद्वैत मत)
- 14.4.3 राम-भक्ति शाखा का स्वरूप

14.5 चयनित पाठ

- 14.5.1 रामचरित मानस (चयनित अंश एवं व्याख्या)
- 14.5.2 कवितावली (चयनित अंश एवं व्याख्या)
- 14.5.3 विनयपत्रिका (चयनित अंश एवं व्याख्या)

14.6 सारांश

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.8 शब्दावली

14.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से आप महाकवि तुलसीदास के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं के साथ-साथ रामभक्ति शाखा के साहित्य और विशिष्टाद्वैत मत तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्व मध्यकाल - भक्ति काल के नाम से जाना जाता है। इस काल की रचनाओं और रचनाकारों की जीवन-दृष्टि और व्यवहार में भक्ति की सर्वातिशायी सक्रियता के कारण इस काल को भक्ति-काल कहा गया है। भक्ति काल के अन्तर्गत रामभक्ति शाखा का विकास सृजनधर्मी उपलब्धियों और व्यापक प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-काल की समस्त रचनाशीलता को दो मुख्य धाराओं और पुनः इनकी दो-दो उपधाराओं के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप में श्रेणीबद्ध किया है, जिसे हम आगे की बिन्दुओं में अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

1. तुलसीदास के जीवन और साहित्य का संक्षिप्त परिचय जान सकेंगे।
2. भक्ति की सगुण धारा के अन्तर्गत राम-भक्ति शाखा के साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. विशिष्टाद्वैत मत का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
4. राम-भक्ति शाखा और विशिष्टाद्वैत मत के पारस्परिक संबंध को जान सकेंगे।
5. राम-भक्ति शाखा के अन्तर्गत तुलसीदास और उनकी रचनाओं का स्थान निर्धारण कर सकेंगे।
6. चयनित पाठ के आधार पर तुलसी-साहित्य की विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

14.3 परिचय

महाकवि तुलसीदास हिन्दी साहित्य की सगुण भक्ति धारा की राममार्गी शाखा के शीर्षस्थ सर्जक हैं। इनका सृजन-संसार अत्यन्त व्यापक और गहन है। सृजन कर्म की व्यापकता और गहराई के कारण ये न केवल अपने समकालीनों में बल्कि समग्र हिन्दी-काव्य के इतिहास में अत्यन्त विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। हिन्दी की पारम्परिक और अद्यतन आलोचनात्मक दृष्टि, अनेक अंतर्विरोधों और मूल्यगत भेदों के बावजूद इनकी सृजन-क्षमता और विलक्षण जीवन-दृष्टि के प्रति सम्मान प्रकट करती आयी है। तुलसी-साहित्य की समग्रतामूलक समझ के लिए इनकी रचना-दृष्टि में निहित अन्तर्विरोधों और मूल्यगत संरचना से अद्यतन जीवन-दृष्टि के अन्तर को जानना अत्यंत आवश्यक है। तुलसी साहित्य की समझ को विकसित करना इसलिए भी जरुरी है कि इसके बिना हिन्दी-क्षेत्र के व्यापक जन-मानस की मूल संरचना को जानना और पहचानना असंभव है।

14.3.1 सामान्य सूचनाएँ

जनश्रुतियों के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी प्रसिद्ध है। हिन्दी भक्ति-साहित्य के सर्वोतकृष्ट कवियों में सुप्रतिष्ठित तुलसीदास के जन्म की तिथि के प्रसंग में मुख्यतः तीन भिन्न मत हैं। 'गोसाईचरित' के लेखक बेनीमाधव दास और 'तुलसीचरित' के लेखक महात्मा रघुबार दास के अनुसार इनका जन्म-वर्ष संवत् 1554 (1497) है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर द्वारा रचित 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म-वर्ष संवत् 1583 (1526ई.) है और पंडित रामगुलाम द्विवेदी तथा अन्य विद्वानों को अनुसार इनका जन्म-वर्ष संवत् 1589 (1532ई.) है। इनमें सर्वाधिक मान्य तिथि संवत् 1589 (1532ई.) है। इनके देहावसान के वर्ष को लेकर भी मतान्तर रहे हैं किन्तु संवत् 1680 (1623 ई.) इस प्रसंग में मान्य है। उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों के बीच

मतान्तर हैं। सोरों (जिला एटा, उत्तर प्रदेश), राजापुर (जिला बाँदा, उत्तरप्रदेश), सूकर खेत (जिला गोंडा, उत्तर प्रदेश), अयोध्या आदि को लेकर विभिन्न मत व्यक्त किये जाते रहे हैं। इनमें से किसी भी स्थान के बारे में निश्चयात्मक आधार का अभाव है। प्रामाणिक रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास सोलहवीं सदी की भारतीय मनीषा की महत्तम उपलब्धि हैं। अवधी भाषा और लोक-जीवन से इनका घनिष्ठ रागात्मक सम्बन्ध है, जिसके प्रमाण इनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं। तुलसी साहित्य से प्राप्त अन्तःसाक्ष्यों से उनके जीवन और सामाजिक परिवेश के बारे में अनेक महत्वपूर्ण संकेत मिलते हैं। इन्हीं संकेतों के आधार पर इनके जीवनवृत के बारे में लोक-प्रसिद्ध जनश्रुतियों से प्राप्त सूचनाओं को सामानान्तर रखकर निष्कर्षों तक पहुँचने की चेष्टाएँ की जाती रही हैं।

14.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व

तुलसीदास हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक हैं। उनकी रचनाएँ भारतीय सामान्य जीवन के अतुलनीय विस्तार और सजीव चित्रण के कारण अप्रतिम हैं। जीवन-जगत के वैचारिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों का ऐसा सृजनधर्मी संयोजन अन्यत्र दुर्लभ है। अपने समय तक प्रचलित लगभग अधिकांश वैचारिक धाराओं के पारस्परिक सांस्कृतिक-संवाद को परम्परा प्राप्त रामकथा का आधार लेकर सामान्य जन समूह के लिए सामान्य जन-भाषा (अवधी और ब्रजभाषा) में सुलभ बनाकर उन्होंने भारतीय संस्कृतिक विकास में अतुलनीय योगदान किया है। उनकी कृतियों का मुख्य उपजीव्य हिन्दी-क्षेत्र का सामान्य भारतीय जन-जीवन और परम्परा-प्राप्त राम-कथा है। अपने समय और समाज में व्याप्त विसंगतियों और विडम्बनाओं से विचार और व्यवहार के धरातल पर सतत, सतर्क संघर्ष के आधार पर उन्होंने जीवन-व्यवस्था की नवीन संभावना प्रस्तुत की है। साधारण जन-जीवन में कष्टों और चुनौतियों से जूझते लोगों को उनके कवि-व्यक्तित्व में अपने सच्चे हितैषी की झलक मिलती आयी है, यही उनकी अद्वितीय लोकप्रियता का आधार है। उनकी रचनाएँ भारतीय पारम्परिक ज्ञान-धारा का विश्वकोष बनकर उपस्थित हैं। यही कारण है कि रामचरितमानस में की गयी -

''नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबद्धमतिमंजुलमातनोति।।''

की घोषणा, शब्दों के सच्चे अर्थ में उनकी रचनात्मकता की परिचायिका है। उन्होंने मध्यकाल में प्रचलित लगभग समस्त काव्य पद्धतियों में रचनात्मकता के मानक स्थापित किये हैं। वीरगाथा परम्परा में प्रयुक्त छप्पय-पद्धति; विद्यापति और सूरदास के काव्य में प्रयुक्त गीत-पद्धति; स्वयंभू के पऊमचरिउ, मुल्लादाउद के चंदायन और जायसी के पद्मावत में प्रयुक्त चौपाई-दोहे की पद्धति के साथ ही कवित्त-सवैया पद्धति; दोहे और बरवै की पद्धति में रचित उनकी अमूल्य रचनाएँ विगत लगभग पाँच सौ वर्षों से हिन्दी जन-मानस को रूपाकार और चेतना देती आयी हैं। भारतीय काव्य-परम्परा में प्रयुक्त छन्दों और अलंकारों पर उनका अधिकार अप्रतिम है। छन्दों में दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया और बरवै तथा अलंकारों में रूपक उन्हें विशेष रूप से प्रिय हैं। हिन्दी साहित्य की परम्परा में तुलसीदास के इस महत्वपूर्ण अवदान को ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपना सुचिंतित निष्कर्ष दिया है -''हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं। ...इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।''

14.3.3 प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

तुलसीदास का रचना-संसार मात्रात्मकता और गुणात्मकता दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध और विस्तृत है। इनकी लिखी रचनाओं में निम्नलिखित बारह ग्रन्थों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है - दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्न, विनयपत्रिका, रामललानहुछ, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवैरामायण, वैराग्यसंदीपनी और श्रीकृष्ण गीतावली। इनमें रामचरितमानस, कवितावली और विनयपत्रिका से परिचित हुए बिना तुलसीदास की रचनात्मक क्षमता का पता नहीं पाया जा सकता। अतः प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत चयनित अंश इन्हीं तीन रचनाओं से गृहीत हैं। 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की अमूल्य निधि है। हिन्दी भाषा एवं साहित्य की सम्पूर्ण रचना-परम्परा की चरम उपलब्धियों की गणना में यह कनिष्ठिकाधीष्ठित है। संवत् 1631(1574ई.)में तुलसीदास ने अयोध्या में इसे लिखना आरंभ किया और इसके कुछ अंशों की रचना उन्होंने काशी में की। यह दोहा-चौपाई की प्रबंध पद्धति में रचित है। प्रसंगानुकूल कतिपय अन्य छंदों का प्रयोग भी किया गया है। इसकी भाषा अवधी है। यह सम्पूर्ण प्रबन्ध सात काण्डों में विभक्त है। राम-कथा इस महाकाव्य का उपजीव्य है। राम-कथा के विविध प्रसंगों के वर्णन और चित्रण में महाकवि तुलसीदास की तन्मयता अप्रतिम है। अपनी इस महान सृजनात्मक चेष्टा में उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के लगभग समस्त आसंगों को समसामायिक अपेक्षा के अनुरूप अतुलनीय अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने कथा के पारम्परिक स्वरूप को यथावत् न रखकर उसमें युगानुकूल अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। आचार्य शुक्ल ने रामचरितमानस का परिचय देते हुए इसकी असंख्य विशिष्टताओं को निम्नलिखित उपशीर्षकों में बाँधने की चेष्टा की है -

1. कथाकाव्य के सब अवयवों का उचित समीकरण
2. मार्मिक स्थलों की पहचान
3. प्रसंगानुकूल भाषा
4. श्रृंगार की शिष्ट मर्यादा के भीतर बहुत ही व्यंजक वर्णन

किसी परम्परित कथा-सूत्र के आधार पर रचनात्मक सूत्र के विस्तार का प्रयास सृजन-क्षेत्र की बेहद कठिन चुनौती है। यह चुनौती तब और कठिन हो जाती है जब कथा का यह परम्परित सूत्र धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्य-विधान का वाहक और लोक-स्मृति का अविच्छेद्य अंग बन चुका हो। तुलसीदास ने अपनी अद्वितीय कवि-प्रतिभा और एकनिष्ठ समर्पण के बल से अर्जित तन्मयता के बल पर इस चुनौती का सामना किया है। मानव की मूल मनोवृत्तियों में निहित कमजोरियों जैसे काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ आदि से संघर्ष करते हुए इनसे ऊपर उठने का प्रक्रम रामचरितमानस को सार्वदेशिक और सार्वकालिक महत्व देता है। विविध प्रसंगों के चित्रण में तुलसीदास ने बहुविध पात्रों के पारस्परिक व्यवहारों के माध्यम से जीवन में निहित श्रेष्ठता के छद्म और स्वभावगत जड़ता के ऐसे दृश्य सृजित किये हैं, जिन्हें देख कर पाठक का समग्र व्यक्तित्वांतरण सम्भव है। उनकी पंक्तियाँ वास्तविकता का एक ऐसा आईना हैं जो व्यक्ति और समाज के स्वभाव में निहित दोषों को बेहद धैर्य और संयम से दिखाती हुई उसे सुधरने-संवरने का रास्ता बताती हैं। वे इस समूची प्रक्रिया में इतनी नम्रता और आत्मीयता बरतते हैं कि पाठक को पता भी नहीं लगता कि कब वह परिष्कार की राह पर चल पड़ा है। यह महज संयोग नहीं कि तमाम विरोधों के बावजूद रामचरितमानस की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा हिन्दी-समाज के विविध वर्गों के बीच आज भी बनी हुई है।

'कवितावली' तुलसीदास की विलक्षण रचनात्मक प्रतिभा और उनके युग-बोध का पुष्ट प्रमाण है। ब्रजभाषा में लिखी गयी मुक्तक शैली की यह रचना कवित्त-सवैया पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण है। सम्पूर्ण रचना सात खण्डों में विभाजित है। इसके विभिन्न प्रसंगों में वर्णन की जगह चित्रण की प्रधानता है। महाकवि तुलसी के अचूक बिम्ब-विधान को इसके छन्दों में सर्वत्र देखा जा सकता है। इन बिम्बों की गत्यात्मक सजीवता इनकी खास विशेषता है।

राम कथा से सम्बद्ध छन्दों में लयात्मकता और शब्दों पर महाकवि के अप्रतिम अधिकार का परिचय मिलता है। कवितावली के उत्तरकाण्ड में कवि ने समसामयिक समाज और अपने जीवन के बारे में जो तथ्यात्मक चित्रण किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तःसाक्ष्य इस रचना के अद्वितीय महत्व का कारण है। इन प्रसंगों को जाने बिना तुलसी की कवि-दृष्टि का परिचय नहीं पाया जा सकता है।

'विनय पत्रिका' तुलसीदास की कवि-प्रतिभा का एक और उत्तम उदाहरण है। इसकी रचना प्रगीत पद्धति पर आधारित है। यह ब्रजभाषा में रचित आत्मनिवेदनपरक गीतों का संग्रह है। इसके नाम से प्रकट है कि इसमें तुलसी दास ने अपने मन के नितान्त निजी भावों को प्रभु राम के प्रति पत्र के माध्यम से निवेदित किया है। यह करुण निवेदन अपनी नितान्त आत्मपरकता में सार्वजनीन हित कामना से प्रेरित है; यही इसकी विलक्षणता का आधार है। इस कृति की रचनात्मक प्रौढ़ता इसे बेहद महत्वपूर्ण बनाती है। प्रबंधात्मक शिल्प की कतिपय अनिवार्य बाध्यताओं से मुक्त कवि-चेतना ने यहाँ भावों की स्वाधीन अभिव्यक्ति का सहज सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। ये गीत शास्त्रीय रागों में निबद्ध हैं। विनय पत्रिका के पदों का नाद-सौन्दर्य महाकवि की अन्य रचनाओं की अपेक्षा विशिष्ट है। हिन्दी साहित्य परम्परा के आत्मनिवेदनपरक प्रगीतों में इसे अत्यन्त उत्कृष्ट माना जाता है। इसमें संकलित अधिसंख्य पदों में गायक और श्रोता को भाव-विभोर कर देने की अचूक क्षमता है।

14.4 सगुण भक्ति धारा की रामभक्ति शाखा

14.4.1 भक्ति आंदोलन का परिप्रेक्ष्य (समय और समाज)

भक्ति आंदोलन भारतीय सांस्कृतिक विचार-व्यवहार की परम्परा के विकास की अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है। अपने प्रसार और प्रभाव में यह आंदोलन सम्पूर्ण भारत के अधिकांश भू-भागों और तत्कालीन भारतीय समाज के सभी स्तरों तक व्याप्त देखा जा सकता है। भक्ति आन्दोलन की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर शोध करने वाले इतिहासकारों में प्रमुख इरफान हबीब और रामशरण शर्मा ने इसे तत्कालीन उत्तर भारतीय समाज में उत्पादन के बदलते स्वरूप और निम्न वर्गों के लोगों के लिए नये शासकों द्वारा स्थापित व्यवस्था से उत्पन्न नवीन अवसरों का स्वाभाविक परिणाम माना है। दिल्ली सल्तनत की जड़ें जमने के बाद इस क्षेत्र में पारम्परिक आर्थिक सम्बन्धों के समीकरण बदलने लगे। अतः समाज के दबे हुए तबकों ने अवसर का लाभ लेकर अपनी मेहनत और कौशल के बल से उन्नति की। इस नवोन्नत वर्ग में सामाजिक प्रतिष्ठा पाने की आकांक्षा को भक्ति के दर्शन का वैचारिक आधार मिला। सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में इसी तरह के परिवर्तन दक्षिण भारत में बहुत पहले हो चुके थे। अतः दक्षिण में जन्मी भक्ति की धारा अनुकूल अवसर पाकर क्रमशः उत्तर भारत में प्रसरित हुई। इस प्रसंग पर विचार करने वाले अधिसंख्य विद्वानों ने यह देखा और दिखाया है, कि भक्ति-आन्दोलन से पहले भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता इसे एक ऐसे मोड़ पर ले आयी थी जहाँ विचार और व्यवहार के धरातल पर सर्वातिशायी और दूरगामी परिवर्तन बेहद जरुरी हो गया था। भक्ति-आन्दोलन ने इस महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति की। अपने उद्देश्यों में पूर्णतः सफल न होने पर भी इसने भारतीय जीवन और विचार-पद्धति को बहुत गहराई तक प्रभावित किया।

14.4.2 राम-भक्ति शाखा का दार्शनिक आधार (विशिष्टाद्वैत मत)

भक्ति आन्दोलन को दार्शनिक आधार देने वाली जिन चार महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रणालियों की चर्चा की जाती है, उनमें से एक का नाम विशिष्टाद्वैत मत है। भक्ति साहित्य की राममार्गी शाखा के दार्शनिक अधार मुख्यतः इसी विशिष्टाद्वैत में निहित हैं। इस मत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य कहे जाते हैं। रामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें विष्णु या नारायण की उपासना प्रचलित है। रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत मत शंकराचार्य के

अद्वैत सिद्धान्त से इस अर्थ में विशिष्ट है कि वे दृश्य जगत को शंकर की तरह भ्रम मात्र नहीं मानते। उन्होंने ब्रह्म, जीवात्माओं और भौतिक जगत को यथार्थ और परस्पर भिन्न माना है। विशिष्टाद्वैत का मतलब एक अपरिमित ब्रह्म का स्वयं अपने स्पष्ट भिन्न और परिमित (विशिष्ट) अंगों से एकाकार होना है। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत मत में ब्रह्म को किसी विशिष्ट गुण से रहित अथवा निर्गुण रूप में उपस्थापित किया गया है। जब कि रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत मत ब्रह्म को सर्वग्य, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी मानता है। साथ ही उसमें ज्ञान, शक्ति, कल्याण ,दीप्ति और दया आदि गुणों की स्थिति भी स्वीकार करता है। शंकर के मत के विपरीत रामानुज ब्रह्म के साथ जगत की सत्ता को भी यथार्थ मानते हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर के. दामोदरन ने लिखा है कि -''रामानुज ने भी सामन्तवाद की परिधि के भीतर ही अपने सिद्धान्तों का विकास किया। तो भी जाति-प्रथा के प्रति उनका दृष्टिकोण उतना अनमनीय और रूढ़ नहीं था, जितना शंकराचार्य का। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि भक्ति सभी जाति-भेदों से ऊपर है, और यह ईश्वर की आराधना में सब के लिए समानता के समर्थक हैं।'' वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रसंग में विशिष्टाद्वैत में निहित नमनीयता का कारण यह है कि रामानुज की परंपरा में वैदिक परम्परा तथा द्रविड़ परम्परा का सम्मिश्रण है। द्रविड़ परम्परा में बारह भक्त हुए हैं जिन्हें आलवार कहा जाता है। इन भक्तों में शठकोप सबसे प्रसिद्ध हैं जो शूद्र थे। इन आलवार संतों की प्रसिद्ध रचनाओं का संग्रह तमिलवेद के नाम से प्रसिद्ध है और इसे भी भक्ति-परंपरा में मूल वेदों की तरह ही प्रतिष्ठित माना गया है। रामानुज की शिक्षाओं ने भक्ति-आन्दोलन को सबल दार्शनिक आधार दिया; जिसे लेकर स्वामी रामानन्द ने राम भक्ति परम्परा की शुरुआत और प्रसार किया। भक्ति को जन-मन तक पहुँचाने के लिए रामानन्द जी ने वह प्रसिद्ध सूत्र दिया जो भक्ति की शक्ति को सर्वातिशायी बनाता है -'जात-पाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई'। रामानन्द ने भक्ति का द्वार समाज के हर वर्ग के लिए खोल दिया। यह मध्यकालीन सामाजिक जड़त्व के खिलाफ परिवर्तन की गम्भीर उद्घोषणा थी। रामानन्द के बारह शिष्य प्रसिद्ध हैं जिनमें अधिसंख्य शूद्र हैं। स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा में आगे तुलसीदास का आगमन हुआ। तुलसीदास की रचनाओं से प्राप्त अन्तःसाक्ष्य भी समाज में व्याप्त जातिवादी जड़ता के विरुद्ध उनके क्रोध और वितृष्णा का प्रबल प्रमाण देते हैं।

14.4.3 राम-भक्ति शाखा का स्वरूप

राम-भक्ति शाखा की स्थापना और उसके प्रभाव-क्षेत्र के अद्भुत विस्तार का श्रेय स्वामी रामानन्द को जाता है। राम-भक्ति का प्रचलन सगुण और निर्गुण दोनों भक्ति-धाराओं में है। रामानन्द इन दोनों परम्पराओं से जुड़े भक्तों के गुरु माने जाते हैं। रामानुज द्वारा प्रस्तावित प्रचारित भक्ति मत को वास्तविक अर्थ में सामान्य जन-सुलभ बनाने का काम स्वामी रामानंद ने किया। इनके दो ग्रंथ प्रामाणिक हैं - वैष्णव मताब्ज भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। पन्द्रहवीं सदी में इन्होंने उत्तर भारत में राम-भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। स्वामी रामानंद और इनके शिष्यों द्वारा निर्मित राम-भक्ति की इसी भाव-धारा से तुलसीदास ने प्रेरणा ग्रहण की। तुलसीदास की अतुलनीय सृजनात्मक प्रतिभा ने राम-भक्ति धारा की रचनात्मक सम्भावना को इसके सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। इसकी स्वाभाविक परिणति यह हुई कि परवर्ती कवियों की रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ इनके सामने टिक नहीं सकीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस परम्परा के जिन रचनाकारों को महत्वपूर्ण माना है उनमें स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम उल्लेखनीय हैं। नाभादास की रचना 'भक्तमाल' मध्यकाल के भक्त कवियों के बारे में सूचनात्मक संग्रह है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. तुलसीदास का जन्म..................वर्ष में हुआ है।
2. तुलसीदास की मृत्यु................वर्ष में हुई।
3. रामचरितमानस की भाषा................है।

4. विनय पत्रिका की भाषा.............है।

(ख) सत्य/असत्य बताइए –

1. तुलसीदास रामभक्ति शाखा के कवि है।
2. तुलसीदास निर्गुण काव्यधारा के कवि है।
3. तुलसीदास की 12 प्रमाणिक रचनाएँ मानी जाती है।
4. रामललानहछू तुलसीदास की रचना नहीं है।

14.5 चयनित पाठ

14.5.1 रामचरित मानस

(क) बालकाण्ड से चयनित अंश

चौपाई:- गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन।।१।।

अर्थ:- गुरु पद-रज (पैरों की धूल) कोमल और सुन्दर नयनामृत अंजन है। यह आँखों के दोष मिटाने वाला है। इस अंजन से अपने विवेक की आँखों को निर्मल करके मैं संसार के दुखों से मुक्ति देने वाले राम-चरित का वर्णन करता हूँ। भक्ति के प्रसंग में गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी - प्रस्तुत चौपाई में महाकवि तुलसी ने गुरु की अगाध महिमा के प्रति सम्मान प्रकट किया है। जीवन के विराट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वयं क्षमतावान होना ही यथेष्ट नहीं होता। आँखों के होने मात्र से दृश्य की वास्तविकता प्रकट नहीं हो जाती। इसके लिए विवेक सम्पन्न दृष्टि की विमलता बहुत आवश्यक है। इस चौपाई में महाकवि तुलसी ने देखने की वस्तविक प्रक्रिया और उसमें गुरु की महती भूमिका को स्पष्ट किया है।

चौपाई:- बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।।
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी।।२।।

अर्थ:- पहले इस धरती के देवता, उन ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ जो अज्ञान जनित समस्त भ्रमों का निवारण करने वाले हैं। मैं समस्त गुणों की खान संत-समाज को प्रेमपूर्वक अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ।

टिप्पणी -इस चौपाई में महाकवि तुलसीदास ने संत-समाज के महत्वपूर्ण सामाजिक प्रकार्य को सामने रखते हुए उसके प्रति अपनी अपरिमित श्रद्धा व्यक्त की है।

चौपाई:- साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।३।।

अर्थ:- सज्जनों का चरित कपास के चरित की तरह शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। जो दुःख सहकर भी दूसरों के दोषों को ढंकते हैं और इस प्रवृति के कारण जिन्हें दुनिया में यश मिला है, वन्दनीय हैं।

टिप्पणी -ध्यान देने योग्य है कि सज्जनों की चरित्रिक विशेषता बताते हुए तुलसीदास को कपास के उस फल की याद आती है जो अत्यन्त शुष्क, स्वादहीन और रुई के तंतुओं से भरा होता है। चुने जाने से लेकर तुनने, धुनने, कातने, बुनने और सीने-पीरोने की लम्बी और पीड़ा दायक प्रक्रिया से गुजरते हुए भी वह सुई के द्वारा बने छेद को भरकर

कपड़े का स्वरूप सही और सुन्दर बनाये रखने में अपनी अद्वितीय भूमिका अदा करता है। ठीक उसी तरह सज्जन व्यक्ति भी जीवनगत अनेक कष्टों से गुजरते हुए दूसरे के दोषों को समाज में प्रकट होने से रोकते हैं। यही कारण है कि सद्गुणों से सम्पूरित सज्जनों का यह व्यक्तित्व वन्दनीय और यशस्वी है।

चौपाई:- मुद मंगलमय संत समाजू । जो जगजंगम तीरथराजू।।
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा।।४।।

अर्थ:- संत-समाज आनन्द और कल्याण से भरा है। यह इस जगत में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। इस संत-समाज रूपी तीर्थराज प्रयाग में राम भक्ति की गंगाधारा बहती है और इस कथा में निहित ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती की धारा है।

चौपाई:- बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी।।
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी ।।५।।

अर्थ:- इस प्रयाग की यमुना कलयुग के मल का हरण करने वाली कर्मों के विधि-निषेध की कथा है। इसके साथ भगवान विष्णु और शंकर जी की कथाएँ त्रिवेणी के रूप में न्यस्त हैं, जो सुनते ही सब प्रकार का आनन्द और कल्याण प्रदान करनेवाली हैं।

चौपाई:- बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा ।।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।।६।।

अर्थ:- निज धर्म में अटल विश्वास इस तीर्थराज का अक्षयवट है। सुकर्म ही इस तीर्थराज का समाज (परिकर) है। यह तीर्थराज सबों के लिए सब देशों और कालों में सुलभ है, और इसका आदर सहित सेवन, क्लेषों का शमन करता है।

चौपाई - अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।७।।

अर्थ- यह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है। यह तत्काल फल देता है और इसका प्रभाव बिल्कुल प्रकट है।

दोहा:- सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।।२।।

अर्थ:- जो इस संत-समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्नता पूर्वक सुनते और समझते हैं तथा प्रेम पूर्वक राम भक्ति धारा में गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर लेते हैं।

(ख) अयोध्याकाण्ड से चयनित अंश

छंद:- श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।।

अर्थ:- प्रस्तुत पंक्तियों में महर्षि वाल्मिकि द्वारा श्रीराम की वन्दना का प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। वे कहते हैं - हे राम! आप वेद की रक्षा करने वाले जगत्पति हैं और जानकी आपकी माया हैं, जो आपके निर्देश पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। हजार मस्तकों वाले, सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को अपने फन पर धारण करने वाले समस्त चराचर के स्वामी शेषनाग ही लक्ष्मण हैं। देवताओं के हित के लिए आप राजा का शरीर धारण कर दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने चले हैं।

सोरठा:-राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।१२६।।

अर्थ:- हे राम! आपका स्वरूप, वाणी और बुद्धि की शक्ति से परे है। यह अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर नेति-नेति कह कर इसका वर्णन करते हैं।

चौपाई:- जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हार। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।१।।

अर्थ:- यह जगत दृश्य है और तुम उसको देखने वाले हो। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को नचाने वाले आप ही हो। जब वे भी तुम्हारे मर्म को नहीं जानते तो और कौन जान सकता है।

चौपाई:- सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।२।।

अर्थ:- केवल वही आपको जानता है जिसे आप बता देते हो और आपको जानते ही वह आपका ही होकर रह जाता है। भक्त के हृदय को शीतल करने वाले आपकी कृपा से ही आपका भक्त आपको जान पाता है।

चौपाई:- चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।३।।

अर्थ:- आपकी देह चिदानन्दमय है। उत्पत्ति, नाश, वृद्धि और क्षय जैसे विकारों से यह शरीर रहित है। इस रहस्य को केवल अधिकारी ही जानते हैं। आपने देवताओं और संतों का कार्य के लिए मानव शरीर धारण किया है और प्रकृति से निर्मित देह वाले साधारण राजाओं की तरह वचन और व्यवहार अपनाया है।

चौपाई:- राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।।४।।

अर्थ:- हे राम! आपके चरित्र को देख और सुन कर मूर्ख लोग तो मोह में पर जाते हैं और ज्ञानी जन सुखी हुआ करते हैं। आप जो भी कुछ करते कहते हैं, वह सब सत्य है, क्योंकि स्वांग जैसा भरे, नाच भी वैसा ही होना चाहिए। इस समय मनुष्य रूप में होने के कारण आपका मानवोचित व्यवहार करना ही ठीक है।

दोहा:- पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ।।१२७।।

अर्थ:- मुझसे आपने पूछा कि कहाँ रहूँ, किन्तु मुझे आपसे पूछते हुए संकोच होता है कि आप जहाँ न हो वह स्थान हमें बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान बताऊँ।

14.5.2 कवितावली

(क) बालकाण्ड से चयनित अंश

सवैया:- अवधेस के द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से।।
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन - जातक - से।
सजनी ससि में समसील उभै नवलील सरोरुह - से बिकसे।।

अर्थ:- (अयोध्या में बसने वाली महिलाओं में कोई एक अपनी सखि से कहती है) मैं प्रातःकाल अयोध्यापति दशरथ के द्वार पर गई। महाराज पुत्र को गोद में लेकर बाहर आये। मैं उस चिन्ताओं से मुक्त करने वाले बालक को देखकर ठगी-सी रह गई। उसे देख कर जो मोहित न हो उन्हें धिक्कार है। उस बालक के अंजन से संवारे हुए नैन खंजन पक्षी के सुन्दर बच्चे की आँखों की तरह थे। हे सखि! उन्हें देख कर ऐसा लगता था मानो चन्द्रमा में दो एक जैसे सद्यःप्रस्फुटित (ताजा) नीलकमल खिले हों। इन पंक्तियों की विशेषता यह है कि इनमें दृश्य और उसके प्रभाव के समेकित सायुज्य को अभिव्यक्ति दी गई है।

(ख) अयोध्याकाण्ड से चयनित अंश

सवैया:-साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं जटा, मुनिबेषु कियो है।।
संग लिएँ बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूपु दियो है।
पायन तौ पनहीं न, पयादेंहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है।।

अर्थ:- स्वाभाविक रूप से सुन्दर, सांवले और गोरे इन दोनों बालकों ने मनोहरता में कामदेव को भी जीत लिया है। ये धनुष-बाण लिये और तरकस कसे हुए हैं, इनके सिर पर जटाएँ शोभित हैं और इन्होंने मुनियों का-सा वेष बना रखा है। ये चन्द्रमुखी दुल्हन को अपने साथ लिये हैं, जिसने रति को अपना थोड़ा-सा रूप दे रखा है। (इन्हें देखकर) हृदय सकुचाता है कि इनके पैरों में जूते भी नहीं हैं, ये पैदल कैसे चलेंगे ?

सवैया:-रानी मैं जानी अयानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहिं कान कियो है।।
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोगु, इन्हें किमि कै बनबासु दियो है।।

अर्थ:- मैंने जान लिया कि रानी महामूर्ख है, उसका हृदय वज्र और पत्थर से भी कठोर है। राजा को भी कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहा, जिन्होंने स्त्री के कहे हुए पर कान दिया। अरे! इनकी मूर्ति ऐसी मनोहारिणी है, भला इन लोगों का वियोग होने पर इनके प्रिय लोग कैसे जीते होंगे ? हे सखि! ये तो आँखों में रखने योग्य हैं, इन्हें वनवास क्यों दिया गया है ?

सवैया:-सीस जटा, उर-बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौहैं।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं।।
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछत ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे-से सखि! रावरे को हैं।।

अर्थः- सीता से गाँव की स्त्रियाँ पूछती हैं - 'जिनके सिरपर जटाएँ हैं, वक्षःस्थल और भुजाएँ विशाल हैं, नेत्र अरुणवर्ण हैं, भौंहें तिरछी हैं, जो धनुष-बाण और तरकस धारण किये वन के मार्ग में बड़े भले जान पड़ते हैं। स्वभाव से ही आदरपूर्वक बार-बार तुम्हारी ओर देखकर जो हमारा मन मोह लेते हैं, बताओ तो हे सखि! वे साँवले-से कुँवर आपके कौन होते हैं ?।।

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली।।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं।।

गाँव की स्त्रियों के अमृत-से सने हुए सुन्दर वचनों को सुनकर जानकी जान गयीं कि ये सब बड़ी चतुरा हैं। अतः नेत्रों को तिरछा कर उन्हें सैन से ही समझाकर मुसकराकर चल दीं। महाकवि तुलसी कहते हैं कि उस समय लोचन के लाभ की तरह राम के रूप् को देखती हुई वे सब सखियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो सूर्य के उदय से प्रेमरूपी तालाब में कमलों की मनोहर कलियाँ खिल गयी हैं।

14.5.3 विनयपत्रिका (चयनित अंश एवं अर्थ) –

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं।।
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं।।
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।।

अर्थः- अब तक नष्ट हुआ परन्तु अब नष्ट नहीं होऊँगा। श्रीराम की कृपा से संसार रूपी रात्री बीत चुकी है। मैं अब जाग गया हूँ। अब फिर से माया का बिछौना नहीं बिछाऊँगा। मुझे राम-नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणी प्राप्त हो गई है। अब इसे अपने हृदय रूपी हाथों से कभी गिरने नहीं दूँगा। श्रीराम के पवित्र और सुन्दर श्याम रूप की कसौटी पर मैं अपने हृदय रूपी सोने को कसूँगा। दूसरे के वश में जान कर मेरी इन्द्रियों ने मेरी बहुत हँसी उड़ायी है। अब अपने वश में होकर मैं फिर से हँसी का पात्र नहीं बनूँगा। यह मेरा प्रण (प्रतिज्ञा) है कि मैं अपने मन रूपी भौंरे को रघुपति के चरण कमलों में लगाये रखूँगा।

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे।।
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।।

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।।

अर्थ:- हे केशव क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता, हे हरि, आपकी इस रचना की विचित्रता को देखकर मन-ही-मन समझकर चुप रहना ही उचित है। इस संसार रूपी चित्र को अव्यक्त चित्रकार (परमात्मा) ने शून्य (माया) की दीवार पर, बिना रंग के (मात्र संकल्प से) बना दिया है। धोने से यह मिटता भी नहीं और इसके नष्ट हो जाने का भय भी नहीं जाता। इसे देखकर दुःख ही होता है। मृग-मरीचिका में जो जल दिखाई देता है, उसमें एक भयानक मगर रहता है। उस मगर का मुँह नहीं है तो भी जल की लालसा में वहाँ जाने वालों को वह खा लेता है। ठीक उसी तरह यह संसार, सूर्य की किरणों में जल के समान भ्रम पूर्ण है। इस भ्रमात्मक संसार में सुख के पीछे दौड़ने वालों को भी बिना मुख का मगर अर्थात् निराकार काल खा जाता है। इस संसार को कोई सत्य कहता है, कोई मिथ्या कहता है और कोई सत्य और मिथ्या के मेल से बना हुआ मानता है। तुलसीदास का मत यह है कि जो इन तीनों भ्रमों से मुक्त हो जाता है वही अपने असली स्वरूप को पहचानता है।,

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुखरोयो ।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ।।
करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो।।
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ।।

अर्थ:- मेरे इस मूर्ख मन ने मुझे बहुत छकाया (धोखा दिया) है। महाकवि तुलसी कहते हैं - हे करूणामय! सुनये, इसी के चलते मैं पुनर्वार जगत में जन्म लेकर दुःख से रोता फिरा। शीतल और मधुर अमृत सरीखे सहज सुख के अत्यन्त निकट होने पर भी मैंने उसे बहुत दूर मानकर खो दिया। मोह में भ्रमित होकर मुझ मूर्ख ने पानी मथकर घी निकालना चाहा। यद्यपि मुझे यह पता था कि कर्म कीच की तरह है फिर भी सब कुछ जानते हुए भी मैंने मल से ही मल को धोना चाहा। मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि प्यासा होने पर भी गंगा की धारा छोड़कर आकाश निचोड़ता फिरता हूँ। सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए दुःख रूपी विषयों में भटकता हूँ। हे स्वामी अब आप मुझ पर कृपा करें। मैंने अपना एक भी दोष आप से नहीं छिपाया है। सच कहूँ तो बिस्तर बिछाते-बिछाते ही सारी रात (जीवन) बीत गई। हे स्वामी! कभी नींद भर सो नहीं पाया।

14.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि –

- तुलसीदास हिंदी भक्तिकाल सगुण धारा के रामभक्ति शाखा के श्रेष्ठ कवि है।
- तुलसीदास रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत को मानने वाले कवि है।

- तुलसीदास की 12 प्रमाणिक रचनाएँ हैं जिनमें रामचरित मानस एंव विनय पत्रिका अपनी काव्यात्मक औदात्य की दृष्टि से श्रेष्ठ रचनाएँ है।
- तुलसीदास का काव्य वर्ण्य–वस्तु एवं शिल्प संरचना की दृष्टि से हिंदी का श्रेष्ठ काव्य है।

14.7 शब्दावली

भक्ति - ईश्वर विषयक रति

सगुण - परम सत्ता का वह स्वरूप जो गुण सहित हो

निर्गुण - परम सत्ता का वह स्वरूप जो गुणों से परे हो

ब्रह्म - परम सत्ता

माया - ब्रह्म की शक्ति का वह अंश जो उसकी प्रेरणा से समस्त सांसारिक सत्ताओं का संचालन और नियमन करती है।

जीव - प्राणियों में मौजूद चेतन तत्व, परम सत्ता से वियुक्त उसका अंश

अद्वैत - आदि शंकराचार्य द्वारा प्रस्थापित दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें ब्रह्म और जीव को दूसरा (अपर) नहीं कहा गया है और जगत को मिथ्या बताया गया है।

विशिष्टाद्वैत - रामानुजाचार्य द्वारा प्रस्थापित दार्शनिक सिद्धान्त।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(क) 1- 1532
2- 1623
3- अवधी
4- ब्रजभाषा

(ख)1- सत्य
2- असत्य
3- सत्य
4- असत्य

14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नोट्स ऑन तुलसीदास: जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1833 ई.)
2. श्री गोस्वामी तुलसीदास जी: शिवनन्दन सहाय (1916 ई.)
3. गोस्वामी तुलसीदास: श्याम सुन्दर दास (1913)
4. हिन्दी साहित्य इतिहास: रामचन्द्र शुक्ल (1923)
5. राम कथा का विकास: डा. कामिल बुल्के (1950)
6. तुलसी और उनका काल: रामनरेश त्रिपाठी(1951
7. तुलसी: संपादक - उदयभानु सिंह (1976)
8. लोकवादी तुलसी दास: विश्वनाथ त्रिपाठी (1974)

9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना: रामविलास शर्मा (1993)
10. भारतीय दर्शन की रुपरेखा: एम. हरियन्ना (1965)
11. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण: संगमलाल पाण्डेय (1976)
12. भारतीय चिन्तन परम्परा: के दामोदरन (1979)
13. अनभै साँचा: मैनेजर पाण्डेय (2002)

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर तुलसी के कवि-व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दें।
2. तुलसीदास की रचनाओं के महत्व पर प्रकाश डालें।
3. तुलसी की काव्य-भाषा की विशेषताओं का निरूपण करें।
4. तुलसी की पहुँच मानव-मन के सभी भावों तक है। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? तुलसी-साहित्य की अद्वितीय लोकप्रियता के कारणों को स्पष्ट करें।
5. विशिष्टाद्वैत मत की मूल स्थापनाओं पर प्रकाश डालें।
6. निम्नलिखित काव्यांशों की सप्रसंग व्याख्या करें -

क. सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।

ख. सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली।।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं।।

ग. मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुखरोयो ।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ।।
करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो।।
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ।।